राष्ट्रीय एकता
के
सांस्कृतिक सूत्र

राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2



राष्ट्रीय एकता के सांस्कृतिक सूत्र

नगेन्द्रकुमार सक्सेना

प्रकाशक
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार 2
मुद्रक
मोहन प्रिण्टर्स
गोधों का रास्ता
जयपुर
कम्पोजिंग
जनरल कम्पोजिंग एजेन्सी
जयपुर-3

सहयोगी लेखक
कन्हैयालाल चारण
हरीमोहन प्रधान
श्रीनन्दन चतुर्वेदी
मोहनलाल त्रिपाठी
डा० बृजलाल उपाध्याय
श्रीमती ममता सक्सेना
सुश्री सर्वेशकुमारी प्रधान
सुश्री राजेशकुमारी प्रधान

संस्करण
1988

मूल्य
45.00

सम्मति

राजस्थान के भूतपूर्व शिक्षाधिकारी श्री जगत्कुमार सक्सेना की प्रेरणा से रचित तथा श्री हरिमोहन प्रधान और श्री कन्हैयालाल चारण के द्वारा समायोजित एवं सम्पादित "राष्ट्रीय एकता के सांस्कृतिक सूत्र" नामक ग्रन्थ भारत की सांस्कृतिक एकता का एक सुन्दर एवं सजीव चित्र है। भारत की एकता के धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक सूत्र और जन जीवन के प्रेरक सूत्र इन पाँच सूत्रों से गुम्फित, एकता की यह पचरंगी डोरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों के हृदयों की एकता की ग्रन्थि में बाँधने में सहायक होती है। वैदिक पृथिवी सूक्त से लेकर बंकिम, रवीन्द्र, भारती, कुरूप, प्रसाद, निराला तक अनेक कवियों द्वारा रचित राष्ट्र गीतों तथा भारत के धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव के सजीव परिचय से युक्त भारत की सांस्कृतिक एकता की यह सजीव प्रदर्शिनी भारतीय नागरिकों के मन में एकता की भावना जाग्रत कर उसे सुदृढ़ बनायेगी। श्रद्धा से प्रेरित और श्रम से सम्पादित भाव प्रवण शिक्षकों का यह उद्योग राष्ट्रीय एकता के संचार में बहुत योग दे सकेगा। इस सुन्दर और उपयोगी संकलन के लिये लेखक सम्पादक और प्रेरक बधाई के पात्र हैं।

डॉ० रामानन्द तिवारी
अध्यक्ष
दर्शन विभाग
राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर

सम्मति

श्री नगेन्द्र कुमार सक्सेना ने राजस्थान के शिक्षा विभाग में निष्ठा और मनोयोग से दीर्घ काल तक सेवा की है। इस अवधि में उन्होंने अपने सहयोगियों को भी शिक्षा के उन सृजनात्मक सिद्धान्तों से प्रेरित किया है, कि जिनके व्यवहार और प्रयोग से एक समूची नई पीढ़ी की मानसिकता जागृत होती है। प्रस्तुत कृति के सहसम्पादक द्वय श्री सक्सेना के उन्हीं सहयोगियों में से हैं। समर्थ लेखकों के जिस वर्ग ने इस संग्रह में अंशदान किया है वह भी उसी टीम के सदस्य हैं।

विभिन्न प्रदेशों, जातियों, भाषाओं और सम्प्रदायों में विभक्त दिखने वाले हमारे देश में छिपी हुई सांस्कृतिक एकता को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की अपेक्षा है। समाज को वही दिव्य दृष्टि अथवा ज्ञान चक्षु प्रदान करने का प्रयास प्रस्तुत संग्रह में है।

बाह्य बहुलता की चकाचौंध से जिनकी दृष्टि धुँधली हो गई है उनको देश की भावात्मक एकता का भान कराने के लिए ऐसे चिन्तकों की आवश्यकता है जिन्होंने देश के दर्शन, इतिहास, भूगोल और साहित्य का संवेदनशीलता और अपनत्व के साथ अध्ययन किया हो—

'जग की कविताई के धोखे रहैं, या प्रवीनन की मति जात थकी।
समुझै कविता घन आनन्द की (जिन) हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥

प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत कृति के सम्पादकों ने हमारे प्रशस्त वाङ्मय से देश की भावात्मक एकता को पुष्ट करने वाले सूत्र बटोरे हैं और उनको एकत्र करके प्रस्तुत किया है। साथ ही सक्षम लेखकों के प्रतिष्ठित और प्रेरक निबन्ध भी इसमें सम्मिलित किए हैं।

भावना और ज्ञान सम्पदा दोनों की दृष्टि से यह एक अच्छा प्रयास है, जिसका मैं स्वागत करता हूँ।

विष्णुदत्त शर्मा
भूतपूर्व अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर

पुस्तक के सम्बन्ध में

कोटा नगर (राजस्थान) के महात्मा गांधी उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधान के पद पर कार्य करते हुए भारत की भावात्मक एकता और गौरवमयी संस्कृति से विद्यार्थियों को अवगत कराने की प्रेरणा हुई और एक प्रायोजना के रूप में कार्य हाथ में लिया। प्रायोजना का पांच वर्ष निरन्तर क्रियान्वय हुआ जिसमें शिक्षक समुदाय के कतिपय उत्साही सहयोगियों ने स्तवनीय कार्य किया। प्रायोजना के अन्तर्गत सभी प्रदेश और भाषा के संत साहित्यकार, महापुरुष एवं सांस्कृतिक महत्त्व के भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा कलात्मक पक्षों को प्रगट करने के साथ बहुभाषी संगीत सम्मेलन, काव्य-संगोष्ठी, व्याख्यान माला आदि कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनी संयोजन के माध्यम से 'भारत की भावात्मक एकता के सांस्कृतिक सूत्रों' को लिपिबद्ध करने का संकल्प किया। शिक्षक बन्धुओं को अध्ययन सामग्री दी गई—लगभग साठ हजार पृष्ठों के साहित्य का अध्ययन करने का परिणाम है—ये लेख जो इस पुस्तक में संकलित है। लेखमाला से तथा उनके आयामों से स्पष्ट हो जाता है कि संभवतया किसी अन्य एक पुस्तक में भारत के अतीत की विविध पक्षीय जानकारी तथा संस्कृति का गौरव अंकित नहीं मिलेगा जितना इस पुस्तक में है। इस दृष्टि से पुस्तक विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, भारत को समझने के इच्छुक प्रत्येक पाठक के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रायोजना पर कार्य करने हेतु N C E R T से चार वर्ष निरन्तर आर्थिक अनुदान मिलता रहा है। प्रायोजना की मूलतः प्रेरणा मिली है श्री समरीराज बोर्डिया (तत्कालीन अध्यक्ष माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान) से जिनके प्रति प्रथम आभार व्यक्त करना मेरा अनिवार्य कर्तव्य है। विद्यालय के सहयोगी शिक्षकगण तथा मुख्यतया लेखकवृन्द के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। सम्पादक द्वय श्री हरिमोहन प्रधान तथा श्री कन्हैयालाल चारण के अथक परिश्रम ने इस पुस्तक के कलेवर को सँजोया है जिसे बृहत् होने के कारण संक्षिप्त करने के लिए मुझे अपेक्षित काट छाँट करना पड़ा है तथापि सम्पादक द्वय मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

नई शिक्षा नीति में राष्ट्रीय अखंडता और एकता के संदेश नई पीढ़ी को देने की बात स्वीकारी गई है तथा यह भी अनुभव किया गया है कि शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रस्तुत पुस्तक माध्यमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में स्थान पाने की क्षमता कहाँ तक रखती है, यह विचार का विषय है।

—नगेन्द्र कुमार सक्सेना

आमुख

"माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्या" अथर्ववेद ।

किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसमें निवास करने वाले चरित्रवान नागरिकों पर निर्भर है । आज के बालक कल के नवयुवक और भविष्य के नागरिक बनते हैं । सद्‌शिक्षा और सुसंस्कृत समारोह इस दृष्टि से विद्यार्थियों में चरित्र की वृद्धि कर राष्ट्र निर्माण में अपना महत्व योगदान देते हैं । राष्ट्रीय चरित्र को उज्ज्वल एवं समुन्नत बनाने में शिक्षकों का बहुत बड़ा हाथ होता है । ऐसे ही शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं से राष्ट्रोन्नति की कामना करते हुए पाश्चात्य मनीषि जान एडम्स ने स्पष्ट कहा है "अब हमारे विद्यालय केवल ज्ञान की दूकान नहीं है और न शिक्षक केवल समाचार देने वाले शिक्षक हैं' 'समाज उनसे अधिक की आशा करता है । उस अधिक की उपलब्धि के सत्प्रयास में प्रबुद्ध शिक्षक पूर्णतः जागरूक रहता है ।

दुःख है कि आज भारत विघटन की ओर बढ़ रहा है । भारतीय जन मानस में उग्र राष्ट्रीयता से बढ़कर प्रादेशिकता, जातीयता और धार्मिक साम्प्रदायिकता के विषाक्त कीटाणुओं ने विशेष रूप से घर कर लिया है । उनसे उत्पन्न इस विघटनकारी रोग ने स्पृश्य रोगों से भी कहीं अधिक भयावह और संस्कृति विनाशक तत्वों को सीमातीत आश्रय एवं प्रश्रय प्रदान किया है । यदि इस देश की यही परिस्थितियाँ रहीं तो इसका भविष्य अंधकारपूर्ण और अनिश्चित है । इस दृष्टि से सम्पूर्ण राष्ट्र को समृद्ध, सुगठित एवं सांस्कृतिक एकता के सुदृढ़ सूत्र में ग्रथित करने हेतु राष्ट्रीय भावात्मक एकता की नितान्त आवश्यकता है ।

यह तभी संभव है जब भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' पूत भावना से अभिभूत हो । वह "माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्या" । अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि

का पुत्र है। अथर्ववेद की उस दिव्य वाणी के ज्योतिर्मय साकार रूप के मधुर प्रसाद में 'श्रद्धा सविश्वासमयसदायत' की यजयन्ती को अपने साथ लेकर भारत अग्रसर होने का दृढ़ संकल्प लिए हो। उसके प्रसुप्त मन में एक पवित्र भाव का संचार करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसे अपनी मातृ भूमि के प्रति श्रद्धा और प्रेम हो। वह उसके गरिमामय इतिवृत्त से उसकी सांस्कृतिक थाती एवं भौगोलिक परिसीमाओं से पूर्ण परिचित हो।

इस पुस्तक के संपादन में हमारा एक ही लक्ष्य रहा है कि पाठक के मानस पटल पर अपनी मातृभूमि भारत का एक महिमामय, स्वर्णोज्ज्वल और दिव्य चित्र साकार हो सके। उसे अनुभव हो जाय कि विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत जैसे विशाल देश की संस्कृति एक है। किसी प्रदेश विशेष के महापुरुष, तीर्थ और ऐतिहासिक स्थल आदि उस प्रदेश के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश के हैं। काश्मीर से कन्या कुमारी तक तथा असम से अफगानिस्तान तक सारे देश के अन्तराल में आदिकाल से आज तक एक सांस्कृतिक एकता विद्यमान है।

भारत की सांस्कृतिक एकता के सम्बन्ध में वायुपुराणकार ने तो स्पष्ट ही उद्घोषित किया है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संतति॥

अर्थात पृथ्वी का वह भू भाग जो समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में है, भारतवर्ष कहलाता है और उसकी सन्तानों को भारतीय कहते हैं।

क्रम



प्रारम्भिक सूत्र

राष्ट्र-गीत

☐ विश्वकवि श्री रवीन्द्र

जन गण मन अधिनायक जय हे ।
भारत भाग्य विधाता ।।
पंजाब सिंधु गुजरात मराठा द्राविड उत्कल बंग ।
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधि तरंग ।।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय गाथा ।
जन गण मंगल दायक जय हे ।
भारत भाग्य विधाता ।
जय हे जय हे जय हे,
जय जय जय जय हे ।

वैदिक राष्ट्र-गीत

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठा
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ (यजुर्वेद स० २२/२२)

(अनुवाद)

भारतवर्ष हमारा प्यारा अखिल विश्व से न्यारा ।
सब साधन से रहे समुन्नत, भगवन् देश हमारा ।
हों ब्राह्मण विद्वान राष्ट्र में ब्रह्म तेज व्रतधारी ।
महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य प्रहारी ।
गाएँ भी अति मधुर दुग्ध की रहें बहाती धारा ।
सब साधन से रहे समुन्नत भगवन् देश हमारा ॥1॥
भारत में बलवान वृषभ हों, बोझ उठाएँ भारी ।
अश्व आशुगामी हों दुर्गम पथ में विचरणकारी ।
जिनकी गति अवलोक लजा कर है समीर भी हारा ।
सब साधन से रहे, समुन्नत भगवन् देश हमारा ॥2॥
महिलायें हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी ।
रथारूढ भारत वीरों की करें विजय अगवानी ।
जिसकी गुण गाथा से गुंजित दिग दिगन्त हो सारा ।
सब साधन से रहे समुन्नत, भगवन्, देश हमारा ॥3॥

यज्ञ निरत भारत में भू हों, शूर सुकृत अवतारी।
युवक यहाँ के सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी।
जो होंगे इस धन्य राष्ट्र के भावी सुदृढ़ सहारा।
सब साधन से रहे समुन्नत, भगवन् देश हमारा ॥4॥

समय समय पर आवश्यकतावश रस घन बरसायें।
अन्नौषध में लगें प्रचुर फल और स्वयं पक जायें।
योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा।
सब साधन से रहे समुन्नत, भगवन्, देश हमारा ॥5॥

—'राम'

(कल्याण के हिन्दू संस्कृति अंक से साभार)

वन्दे मातरम् !

☐ श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी

वन्दे मातरम् !

सुजला सुफला मलयज शीतला । शस्य श्यामला मातरम् ।
शुभ्रज्योत्स्ना पुलकित यामिनी फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम् ।
सुहासिनी सुमधुर भाषिणी सुखदा वरदा मातरम् ।
वन्दे मातरम् ॥1॥

त्रिंश कोटिकण्ठ कल कल निनाद कराले
द्विंत्रिंशकोटि भुजधृ तखर कर वाले केवल मा ! तुमि अबल ।
बहुबल धारिणी नमामि तारिणी रिपु दल वारिणी मातरम् ।
वन्द मातरम् ॥2॥

तुमि विद्या, तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म, त्वं हि प्राणा शरीरे ।
बाहुते तुमि मा ! शक्ति, हृदये तुमि मा ! भक्ति ।
तोमारई प्रतिमा गडि मंदिरे मंदिरे मातरम् ।
वन्दे मातरम् ॥3॥

त्वं हि दुर्गा दश प्रहरण धारिणी, कमला कमलदल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वाम् ।
नमामि कमला अमला अतुला सुजला सुफला मातरम् ।
वन्दे मातरम् ॥4॥

श्यामला सरला सुस्मिता भूषिता धरणी भरणी मातरम् ॥
वन्द मातरम् ॥5॥

जन्म-भूमि मेरी ।

वन्दूँ मैं ग्रमल वमल,
चिर सेवित चरण युगल
शोभामय शान्ति निलय पाप ताप हारी,
मुक्तबन्ध, घनानन्द, मुद मगलकारी ।
वधिर विश्व चकित मौन सुन भरव वाणी ।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥
मुकुट शुभ्र हिमागर
हृदय बीच विमलहार
पच सिन्धु ब्रह्मपुन रवितनया गगा
विन्ध्य विपिन राजे घनघरी युगल जगा ।।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भरव वाणी ।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥
त्रिदश कोटि नर समाज,
मधुर कण्ठ मुखर ग्राज !
चपल चरण मग नाच तारागण सूय चन्द्र ।
चूम चरण ताल मार गरज जलधि मधुर मद्र ।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भरव वाणी ।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥

☐ महाकवि निराला

मधुमय देश 'भारत'

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये समझ नीड निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते रहते जब जग कर रजनी भर तारा।।

□ श्री जयशंकर प्रसाद

तमिल भाषी राष्ट्र गीत

भारत समुदायम वालकवे वालम वालक
भारत मुदायम वालपक जय जय जय
मुप्पतु कोटि जनगलिन सघ मुलुमक्कुम पोतु उडम
ओप्पिलाद समुदायम उलगतुक्काक्रु पुदुम वालक
मानि रूणवे मनितर परिक्कुम वलक्कम इनियुंडो।
मानितर नोह मानितर पकु मवाक्क इनियुंडो। पुलमिन।
वालक्के यिनियुंडो नम्मिलंद वालक्क इनियुंडा वानक ।

[भारतीय सघ की जय हो! जय हो! यह भारतीय सघ ३० करोड लोगों की सम्पत्ति है। भारत अद्वितीय देश है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिये एक नूतन वस्तु दृष्टिगत होगा। मानव द्वारा मानव का भोजन छीनने का कार्य क्या भविष्य में भी होता रहेगा। एक मानव के दुःख को क्या दूसरा देखता रहेगा। नहीं, कदापि नहीं होगा। भविष्य में ऐसा नहीं होगा। हम यह नियम बनायेंगे और उसका पालन करेंगे कि यदि एक भी भूखा रहा तो हम ऐसे विश्व को नष्ट कर देंगे। हम सब भारतवासी एक हैं। एक वर्ण और एक देश के हैं। हम सब समान हैं। हमारा एकसा महत्त्व है। हम भारतीय इस देश के शासक हैं।]

□ सुब्रह्मण्यम भारती

मातृभूमि की स्वतन्त्रता

हे भारत माता ! तुम धन्यवाद दो ईश्वर की दया को ।
अहिंसा की तलवार के माध्यम से,
हमने अपनी लम्बी यात्रा पूरी करली है ।
यद्यपि हम कमजोर से दिखते हैं और शरीर
से खून की धारा बह निकली है ।
देशों की वह देवी जो कल हिकारत से देख रही थी ।
आज आश्चर्य चकित होकर प्यार से आलिंगन कर रही है ।
हे मां ! तुम पवित्र स्वतन्त्रता के
सुन्दर और प्रभासित प्रभात में पहुँच गयी हो ।
(मलयालम कविता का हिंदी अनुवाद)

□ श्री गोविन्दशंकर 'कुरूप'

पृथ्वी सूक्त

[अथर्ववेद के 12वें काण्ड के पृथ्वी सूक्त से कुछ अंश (मंत्र) यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इन मंत्रों में वैदिक ऋषि ने मातृ भूमि के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया है। [सम्पादक]

(1) सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं
लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥1॥

'ऋतु सत्य बृहत् तप, उग्र ब्रह्म, यज्ञ उत्तम
वसुधा के धारक हैं आधार अनुत्तम।
वह भूत भविष्यत् की पालक, सुख दाता
दे हमको विस्तृत ठौर मेदिनी माता ॥'

(2) असंबाधं मध्यतो मानवानां
यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति
पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥2॥

'उन्नत प्रदेश, उत्तुंग शिखर अति सुन्दर
नीची वसुंधरा नीचे बहते निर्झर।
वे हरे भरे मैदान मनोरम समतल,
मानव के सम्मुख सावकाश अगणित थल।
जिस पर शोभित है, जो भारत की धरती,
बहु शक्ति भरी ओषधि धारण करती।
वह भूमि हमारे लिये परम विस्तृत हो,
उसके आराधन से हम सबका हित हो।

(3) यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥3॥
"पुण्यार्थ पूर्वज न या जहाँ सँवारा,
जिस पर देवा न असुरों को संहारा ।
जो गौ, अश्वों विहगों की आश्रयदाता,
ऐश्वर्य तेज दे हमको यह भू माता ॥"
(4) यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां
मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्ये-
नावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं
बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥4॥
"जो प्रथम जलधि के जल में जिसका आसन,
जिस पर मनीषियों का माया से शासन ।
परम व्योम में निहित शुचि हृदय जिसका,
उर सत्य समावृत और अमृतमय जिसका ॥
वह भूमि दीप्ति दे, बल दे, शक्ति सहारा ।
उद्दीप्त, सबल हो उत्तम राष्ट्र हमारा ॥
(5) गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो
ऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतो हतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥5॥
"ये गिरि पर्वत हिमवत, गहन वन तेरे
हे मातृभूमि ! हों मोद निकेतन मेरे ।
पिंगल श्यामल अरुणाभ अनूप अचंचल
है हरिपालित बहुरूप धरा का अंचल ।

अविजित, अक्षत, आघात, रहित नित होकर,
मैं करूँ यहाँ अधिवास त्रास सब खोकर।

(6) योऽस्मो द्वेषत् पृथिवि य पृतन्याद्
यो भिदासा मनसा यो वधेन।
त नो भूमे रंधय पूवकृत्वरि ॥6॥

"मा वसुधे ! जो लाग जगत मे रखते हम लोगों से विद्वेष,
जो चढ आते सैन्य साज कर देने के हित हमको क्लेश।
जो मन से भी अहित चाहते, वध करने को है तैयार,
रिपु सहारिणी ! पहले ही तू करदे उन सबका सहार।

(7) महत् सधस्य महती बमूविथ
महान वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महास्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम।
सानो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव।
सद्शि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥7॥

"तू महती, तू अखिल विश्व का वसुधे ! महानिवास स्थान।
वेग प्रगति, हलचल कम्पन है तेरे अद्भुत और महान।
मातृभूमि ! तेरी रक्षा म सावधान रहते भगवान्।
ऐसी महिमामयी जननि ! तू कर अपनी करुणा का दान।
हम बना प्रिय रुचिर स्वण सम, सबके नयनो मे छविमान।
कोई द्वेप न माने हमसे, हमका परम सुहृद निज जान।

(8) भूम्या देवेभ्यो ददति यज्ञ ह्यमर कृतम्।
भूम्या मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्या।
सा नो भूमि प्राणमायुदधातु
जरदष्टि मा पृथिवी कृणोतु ॥8॥

"पृथ्वी पर ही नर अमरो को देते सस्कृत यज्ञ हविष्य,
जीवन पाते अन्न सलिल से यही मनुज ले भव्य भविष्य।
भूमि हमारी आयु बढाये, भूमि हमे दे जीवन प्रान
वृद्ध अवस्था तक जीने को करे हम वह शक्ति प्रदान"।

(9) यस्ते ग न्ध पृथिवि सवभूव
य त्रिभ्रत्योषधया यमाप ।
य ग न्धर्वा श्रप्सरमश्च भेजिरे तेन
मा सुरभि कृणु मा नो द्विक्षत वश्चन् ।।9।।

"श्रो मेरी माता वसुन्धरे ! है तुझमे जो व्यापक गध,
श्रौषधियाँ, जलराशि जिम है धारण करती निष्प्रतिब ध ।
जिसका सेवन करत है, गन्धव श्रौर श्रप्सरा श्रशेष,
उसमे कर सौरभित हम तू, कोई करे न हमसे द्वेष ।।"

(10) शिला भूमिरश्मा पासु सा
भूमि सघृता घृता ।
तस्य हिरण्यवक्षसे
पृथिव्या श्रकर नम ।।10।।

"भूमि शिला है भूमि धूल है, वह प्रस्तर गिरि शल श्रपार,
सब रूपो मे परिणत भू यह टिकी धम के दृढ श्राधार ।
है सुवर्ण की खान मनोहर जिसका वक्ष स्थल श्रभिराम
उस पृथ्वी देवी को हम सब सादर ह कर रह प्रणाम ।।

(11) यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवी विश्वधायस धृतामच्छावदामसि ।।11।।
'श्रचल खडे सब श्रोर जहा पर विविध वनस्पति, वृक्ष महान्,
हम उस विश्वम्भर धरा के करते गुण गौरव का गान ।।"

(12) ग्रीष्मस्त भूमे वर्षाणि
शरद्धेमन्त हायनी
रहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।।12।।
"गर्मी वर्षा शरद हिमानी शिशिर श्रौर मोहक मधुमास,
भू देवी ! तरे हित विभुने छ ऋतुश्रो का किया विकास ।
दिवस निशा, युग पक्ष मास ऋतु श्रयन युगल, श्रभिनव नव वर्ष,
करें मनारथ पूर्ण हमारे, देवें सतत उत्कर्ष ।।"

(13) यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते
अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमि पृथिवी वृतावृता सा नो ।
दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥13॥
"जिस वसुंधरा पर जब होता परम मनोहर प्रातःकाल,
मिलता श्यामरंग रजनी के संग दिवस दूनहू सा लाल ।
वर्षा की शत् शत् धारा से आवृत हो वह भूमि महान,
हम सबको प्रिय धाम धाम में भद्र भावना से दे स्थान ॥"
(14) द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥14॥
"स्वर्ग, भूमि औ अन्तरिक्ष ने दिया हमें विस्तृत मैदान ।
अनल, सूर्य, जल विश्वदेवों ने है की सद्बुद्धि प्रदान ॥"
(15) उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥15॥
"मातृभूमि ! उत्संगरूप जो तेरे प्रकटित दिव्य प्रदेश,
रोग रहित हों हम सबके हित, क्षय भय का हो वहाँ न लेश ।
होवें लम्बी आयु हमारी, सावधान हम जग रहें,
तुझ पर सब कुछ बलि देने के शुभ उद्यम में लगे रहें ॥"
(16) भूमे मातर्नि धेहि मा
भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे
श्रिया मा धेहि भूत्याम् ॥16॥
"स्थापित कर, हे मातृभूमि ! तू मुझे भद्र भावों के साथ,
सबने ! स्वर्गीय भूति की प्राप्ति करा तू कर सनाथ ।
पार्थिव सुख सम्पत्ति राशि में, करुणामयि ! दे मुझको स्थान
और साथ ही, जननि ! मुझे कर भागवती विभूति का दान ।'
(कल्याण के हिन्दू संस्कृति अंक से साभार)

भारतीय संस्कृति की देन 'मौलिक एकता'

इतिहास साक्षी है कि हिन्द महासागर की अगाध गहराइयों, हिमालय के उत्तुंग हिमाच्छिन्न शिखरों तथा पूर्व और पश्चिम की दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं के बीच अवस्थित भारत देश विस्तृत भू भाग होकर भी एक देश, एक भावना एक संस्कृति एवं एक भाषा का परिचायक रहा है। हमारे विचारों तथा व्यवहारों को भारतीय संस्कृति के अविच्छिन्न स्रोत ने इस प्रकार सींचा है कि विविधता में अखण्डता अनेकता में एकता ऐसे विशाल वटवृक्ष की भाँति एकरूपा बनी रही जिसकी शाखाएँ फल कर वसुधा से जीवन ग्रहण करती है परन्तु मूल रूप में एक ही विशाल तने से संबद्ध रह कर उसे सबल बनाती है। उन शाखाओं का कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता। वे अपने आप में स्वतन्त्र वृक्ष नहीं बनतीं। एक ही वृक्ष की सघन छाया उनको अपने आँचल में आश्रय देती है। स्थूल दृष्टि से प्रत्यक्ष दर्शन उसे एक वृक्ष न कह कर कुंज की संज्ञा दे सकते है परन्तु विवेकशील सूक्ष्म दृष्टि से वास्तविकता ओझल नहीं होती और उसकी अनेकता में एकता निस्सन्दिग्ध स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति एक ऐसा विशाल वटवृक्ष है जो काश्मीर से कन्या कुमारी तथा असम से अफगानिस्तान तक एक ही भावात्मक एकता का उद्घोष करता है।

राजनैतिक विवादों की संकीर्णता ने भारत की एकता को सदैव चुनौती दी है। स्वार्थों के सीमित दायरे जिस प्रकार विघटनकारी प्रवृत्तियाँ पनपा रहे हैं वह कोई नई बात नहीं है। भौगोलिक समृद्धि तथा स्वस्थ जल वायु के कारण 'सोने की चिड़िया' के पंख अनेक बाह्याक्रान्ता समय समय पर काटते रहे है परन्तु इस धरती की यह विशेषता रही है कि जो यहाँ आया, वह यहीं का होकर रह गया। प्रथम सत्ता के लिये संघर्ष हुए, फिर विचार टकराए तत्पश्चात् सांस्कृतिक ऊर्मियों का प्रवाह घुल मिलकर आदान

प्रदान करता हुआ एक विशाल नद के रूप में स्वर में आगे बढ़ता गया। संस्कृति का यह नद केवल मात्र आर्य संस्कृति का स्रोत नहीं है। हमारी संस्कृति को आर्य संस्कृति कहना इतिहास के सत्य को छिपाना है यह संस्कृति भारतीय संस्कृति है जिसमें आर्यों के अतिरिक्त अनेक प्रजातियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सबसे पुरानी प्रजाति प्रोटो आस्ट्रोलायड है। अस्त्र शस्त्र निर्माण, देवी देवताओं की पूजा, पान सुपारी तथा सिन्दूर का प्रयोग, पुनर्जन्म, पौराणिक कहानियाँ, पृथ्वी तथा ब्राह्मणों का जन्म, नाग एवं बन्दरों की पत्थर की मूर्तियाँ बना कर पूजा इसी जाति की देन है। गंगा शब्द इसी जाति ने हमें दिया है। उत्तरी नेपाल में भाषाएँ इसी प्रजाति से प्रभावित है। जाति व्यवस्था तथा जाति में विवाह प्रथा को भी इसी भूमध्यसागरीय प्रजाति ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है। भारत में यह जाति "पूर्व द्रविड" के नाम से सम्बोधित की जाती है। पूजा पाठ में सुगन्धों का प्रयोग प्रसाद चढ़ाना, भक्तिमय गीतों का गायन मूर्तियों के सम्मुख नृत्य इस प्रजाति की देन है। परिवहन, घरों की संरचना, ईंटों का प्रयोग, रंगीन मिट्टी के बर्तन तथा नगर निर्माण कला जो सिंधु घाटी सभ्यता में मिलती है इसी प्रजाति के विकास का प्रतीक है। निग्रिटो प्रजाति के प्रभाव में बरगद पेड़ की पूजा सन्तान प्राप्ति की कामना से प्रचलित हुई है। मंगोल प्रजाति ने तन्त्रवाद, चाय, सीढ़ीदार खेती, शीत शिकार आदि का उपयोग भारतीय संस्कृति को सिखाया। आर्यों की देन सर्वोपरि रही। जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्होंने सांस्कृतिक व्यवस्था को स्थिरता दी तथा परवर्ती प्रभावों को ग्रहण करते चले गये। भारतीय संस्कृति का स्रोत विभिन्नता का संश्लेषण है तथापि उसमें एकरूपता के मौलिक तत्वों का संरक्षण मिला है। अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है।

यूनानी शक, हूण, सिथियन अरब, ईरानी, पारसी, अफगान, मुगल तथा अंग्रेजी संस्कृतियों के प्रभाव भारतीय संस्कृति में आत्मसात होते गए। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उदार तथा समन्वयपरक रह कर उसने व्यापकता ग्रहण की है, देश और काल की संकीर्णताओं से ऊपर

उठकर उसने विशालता स्वीकार की है। उसने नवीन विचारों के लिए अपने द्वार कभी बन्द नहीं किए। उसने यह नहीं कहा कि मेरी सीमाओं से बाहर सब कुछ अमान्य और अस्वीकार्य है। उसकी आत्मा वही शाश्वत है, उसके मूलभूत तत्व भारतीय हैं जो बिखरे हुए विचारों को एक सूत्र में आबद्ध कर "भारतीय संस्कृति" की मौलिक एकता एवं अमरता सिद्ध करते हैं। यह तत्व है "धर्म की प्रधानता"। संसार की अन्य संस्कृतियों का स्रोत युग विशेष अथवा व्यक्ति विशेष की देन रहा है जो शाश्वत नहीं बन सकती क्योंकि युग धर्म बदलते रहते हैं। भारतीय संस्कृति युग अथवा व्यक्ति विशेष की देन नहीं है। उसका प्रवाह सभ्यता के आदिकाल से आज तक गतिवान् रहा है। उसमें जीव, प्रकृति तथा ब्रह्म के चिंतन सम्बन्धी विचार बिखरे हुए हैं, उसका आधार धर्म है जिसका अर्थ है "धारण करने योग्य"। जो युग के अनुकूल हुआ उसे भारतीय संस्कृति ने भी स्वीकार किया। इसीलिये भारतीय संस्कृति शाश्वत है, अमर है। अमरता का आवश्यक गुण होता है सत्यता। असत्य स्थायी नहीं हो सकता। सत्य सदैव एक होगा। अतः भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता में संदेह करना दुराग्रह मात्र है।

भारत के शासकों, राजनीतिज्ञों, संतों, साहित्यकारों ने प्रादेशिक भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों के स्वप्न सजाए हैं। उनमें सत्ता की लोलुपता नहीं वरन् असत्य और अंधकार को हटा कर सत्य तथा संस्कृति के प्रकाश का विकीर्ण करने की उत्कंठा रही है। राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम लंका विजित करके सुदूर दक्षिण तक अयोध्या का साम्राज्य स्थापित कर सकते थे परन्तु उन्होंने लंका विभीषण को तथा किष्किन्धापुरी सुग्रीव को ही दी। उनकी विजय राक्षसों के तामसी व्यवहार पर देवत्व के सत्संकल्प की विजय थी, जिसने आर्य संस्कृति का द्रविड़ संस्कृति से समन्वय का अवसर दिया और "भारतीय संस्कृति" की एकरूपता स्थापित की। केरल में जन्म लेकर बालक शंकर ने जगद्गुरु शंकराचार्य के रूप में दक्षिण भारत को उत्तर भारत के विरुद्ध सांस्कृतिक तथा राजनैतिक मोर्चे बनाने को नहीं उकसाया वरन् बौद्ध मठों में घुसी हुई अनैतिकता एवं बाह्य आक्रमणों से क्षीण हुई धर्म की भावना का पुनर्जागरण का शंखनाद किया और देश के सुदूर चारों कोनों में बदरी-

नाथ, रामेश्वरम् जगन्नाथपुरी तथा द्वारिका धार्मिक मानपीठ के रूप में मठों की स्थापना करके एक ऐसी सशक्त सामाजिक व्यवस्था दी जिसने विभिन्न प्रदेशों के बहुभाषी भारतीयों को परस्पर संपर्क बनाए रखकर सांस्कृतिक एकता विशृंखलित न होने देने का एक अमोघ अस्त्र प्रदान किया। जगद्गुरू द्वारा सम्पन्न सांस्कृतिक एकता हेतु यह महत्वपूर्ण व्यवस्था उस समय तक शाश्वत रहेगी जब तक पृथ्वी अपनी धुरी पर टिकी हुई है, चन्द्र और सूर्य प्रकाश दे रहे है। वह महान आत्मा धन्य है। कौटिल्य (चाणक्य) ने चन्द्रगुप्त मौर्य के माध्यम से शक्तिशाली मगध राज्य इसलिए स्थापित किया कि वह भारत को एक ऐसा शक्तिशाली राष्ट्र देखना चाहता था जिसकी ओर कोई विदेशी आँख न उठा सके। सिकन्दर तथा सेल्युकस के आक्रमणों की विभी षिका उसके नेत्रों के सामने रुद्र ताडव करती रहती थी। चन्द्रगुप्त विक्रमा दित्य की दक्षिण विजय यात्रा क्षत्रप तथा शकों के आक्रमणों से बिखरी हुई शक्ति सगठित कर सम्पूर्ण राष्ट्र को एक शक्तिशाली राजनैतिक सूत्र में बाँधने के लिए थी।

मध्यकाल में बाह्य आक्रमणों तथा राजपूत राज्यों की परस्पर स्पर्धा के कारण देश जर्जर हुआ। राजनैतिक संगठन तथा धर्म का प्रकाश क्षीण हुआ तो अनुकूल अवसर आने पर आशा की उत्तर भारत को दक्षिण से प्रकाश मिला। रामानुज, वल्लभाचार्य रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, निवार्काचार्य आदि संतों ने देश व्यापी जागरण का निनाद किया। रामकृष्ण का सबल लेकर सगुण भक्ति के राग से घर घर अलख जगाया तथा 'भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता को खण्डित नहीं होने दिया। जायसी ने पद्मावत के माध्यम से सिंहल द्वीप तथा भारतीय जन जीवन को एक सूत्र में पिरोया। सूर, तुलसी संत तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु नरसी मेहता, संत ज्ञानेश्वर की अमर वाणी में भारतीय संस्कृति की अखण्डता भली प्रकार उद्घाटित है। संतों तथा साहित्यकारों ने क्षेत्रीय भावना को कभी नहीं पनपाया, साम्प्रदा यिक वातावरण को कभी नहीं उभारा। प्रादेशिक आचार विचार तथा व्यव हार की विविधता में भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता के दर्शन इनकी वाणी में मिलते हैं।

अंग्रेजी तराजू तथा कूटनीतिज्ञों ने जब भारतीय नरेशों को राजनीति के झगड़ों में पराजित किया तब भी हैदरअली, टीपू, नाना फड़नवीस, महादाजी सिंधिया, महाराजा रणजीतसिंह आदि दूरद्रष्टा राजनीतिक स्वातन्त्र्य के साथ राष्ट्रव्यापी संगठन और एकता के स्वप्न देखते रहे। समय ने साथ नहीं दिया और हमें राजनीतिक के साथ सांस्कृतिक पराभव मिला। इस संक्रान्ति काल में स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, बंकिमचंद्र चटर्जी, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि अनेक मनीषियों द्वारा हमारी अखण्डता, सांस्कृतिक एकता तथा राजनैतिक स्वातन्त्र्य के लिए अथक परिश्रम, त्याग और बलिदान का परिचय दिया गया। इसके परिणामस्वरूप आज भारत विश्व का सबसे बड़ा गणतंत्र है। दुर्भाग्य की बात है कि संकीर्ण स्वार्थ पृथकतावादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं तथापि भारतीय संस्कृति के मूल रूप में व्याप्त एकता के सूत्र समाप्त नहीं होंगे।

हिमालय की कन्दराओं तथा विन्ध्याचल की उपत्यकाओं में चिन्तन करने वाले भारतीय ऋषियों की दृष्टि "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "सर्वभूतहित रता" की पोषक रही है। उन्होंने उत्तर और दक्षिण अथवा पूर्व और पश्चिम की भाषा में कभी नहीं सोचा। पंजाब और हरियाणा, असम और नागालैण्ड आंध्र तथा तेलंगना, तमिलनाडु और विदर्भ की संकीर्ण गलियों में वे कभी नहीं भटके। उन्होंने बद्रीनाथ, पशुपतिनाथ के समकक्ष ही रामेश्वरम् का महत्व स्वीकार किया। जगन्नाथपुरी को द्वारिका तथा सोमनाथ की भाँति तीर्थ स्थानों में महत्व दिया। गंगा की भाँति गोदावरी को भी पवित्र और पाप नाशक माना। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी तथा नासिक में प्रति तीसरे वर्ष कुम्भ मेले की व्यवस्था की जिससे देश भर के परिव्राजक घूमते फिरते परस्पर मिलते रहे और देशव्यापी सामाजिक सम्पर्क बनाते रहे। मानसरोवर झील पर समाधिस्थ भगवान कैलाशपति को प्रसन्न करने के लिए पार्वती जी से कन्याकुमारी पर तपस्या कराई। इस देश में बंगला वासी योगिराज अरविन्द को मानसिक शान्ति पांडिचेरी आश्रम में मिली तो तमिलनाडु के स्वामी शिवानन्द ने ऋषिकेश में आकर काली कमली वाले की शरण में आत्मा का प्रकाश प्राप्त किया।

भारतीय स्थापत्य कला की आत्मा भी संस्कृति की पोषक रही है। उसमें धर्म की प्रधानता है जिसके अनुपम उदाहरण उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा समूचे भारत में बिखरे पड़े हैं। भुवनेश्वर, कोणार्क, मीनाक्षी, मदुराई, आबू देलवाड़ा आदि सर्वत्र मन्दिरों के निर्माण में संस्कृति के तत्वों की एकरूपता है। तोरण, कलात्मक स्तम्भ, बारहदरी, सभा भवन, गुम्बद, कलश सभी स्थानों पर नयनाभिराम दृश्य उपस्थित करते हैं। देवताओं की दृष्टि से भी प्रादेशिक विभाजन नहीं मिलता। उत्तर भारत के राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर बाहुबली पार्श्वनाथ दक्षिण के इष्टदेव हैं। दक्षिणी जातियों के शिव, सर्प, गरुड़ आदि उत्तर में सर्वत्र पूज्य हैं। बंगाल की दुर्गा तथा सरस्वती समूचे भारत की भावनाओं पर अधिकार रखती हैं। आर्यों के इन्द्र, वरुण, सूर्य भारत के कोने कोने में वंदनीय हैं। उपासना पद्धति की इतनी व्यापकता विश्व में अन्यत्र नहीं मिलती। धार्मिक स्वतन्त्रता का यह रूप अनन्य उदाहरण है कि पीपल, बड़ आदि वृक्षों, पशु पक्षियों तथा अनेकानेक उपास्यों का भक्तजन रुचि अनुसार श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं। पूजा विधि की इस विविधता में लक्ष्य की एकता निहित है। सभी अनन्त मोक्ष अर्थात पुनर्जन्म तथा वासनाओं से मुक्ति पाकर सच्चिदानन्द में विलीन होकर परमानन्द पाने के आकांक्षी हैं। सम्पूर्ण भारत की धार्मिक भावनाएँ एक ही दशा में उन्मुख हैं। उनका माध्यम स्थापत्य कला के चिताकर्षक मन्दिर हैं जहाँ आराध्य का दिन भर के व्यापारों में साथ रखने की भावना से (जिससे कोई अनैतिक कार्य सम्पन्न न हो) भैरवी राग में ध्रुपद के स्वरों से जगाया जाता है। स्थापत्य के साथ चित्रकला, संगीत तथा नृत्य का भी देशव्यापी आचरण धार्मिक भावनाओं के उद्दीपन के लिए व्यवहृत हुआ है और सिद्ध करता है कि भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता शंका का विषय नहीं है।

त्रिवर्षीय कुम्भ मेला की भाँति अनेक तीर्थों पर लगने वाले मेले वस्तुतः देशव्यापी सामाजिक सम्पर्क बनाए रखने के माध्यम रहे हैं। इन मेलों में साधुवर्ग तथा अन्य सभी वर्गों के व्यक्ति देश के कोने कोने से इकट्ठे होकर मिलते रहते हैं। परस्पर आचरण और सम्पर्क ने प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त साधु समाज के द्वारा एक देशव्यापी भाषा बनाए रखी, जिसने हमारी सांस्कृतिक एकता को कभी खण्डित नहीं होने दिया। भौगोलिक विस्तार के

फारण प्रादेशिक बोलियों का होना स्वाभाविक है। उन बोलियों का व्याकरण सम्मत संस्कृत स्वरूप साहित्य के रूप में सुरक्षित है जो सभ्यता की प्रगति का द्योतक है। तथापि इससे देशव्यापी सम्पर्क भाषा बने रहने में कभी व्याघात नहीं पहुँचा। भारतीय संस्कृति ने सामाजिक जीवन के तत्वों को तीर्थों पर लगाए जाने वाले मेलों की व्यवस्था करके इस प्रकार पुनः मिला रखा है कि सम्पूर्ण देश में खड़ी बोली का रूप प्रचलित रहा जो सम्पर्क भाषा बनी रही। आज भाषा के नाम पर विवाद हमारे राजनैतिक स्वार्थों तथा अदूरदर्शिता के परिचायक है। भाषा संघर्षों से नहीं आवश्यकता से विकसित होती है। राजनीति के दबाव से भाषा का गला न घोटकर स्वतः विकास की स्थिति में हमारी संस्कृति की सामाजिक विशेषताएँ देश की सम्पर्क भाषा स्वयं निर्धारित कर लेंगी।

विदेशी कूटनीति के प्रभाव हमारी एकता को चुनौती दे रहे हैं। स्वातन्त्र्य लाभ के साथ पाकिस्तान का पृथक निर्माण इसी का परिणाम है। क्षेत्रीय भावनाएँ तथा भाषा के नाम पर संकीर्णता उभर रही है। बोलियों की भाँति उत्तर और दक्षिण भारत अलग अलग भाषा में बोलते हुए सुन पड़ते हैं। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है। क्षुद्र स्वार्थों ने दूरदर्शिता समाप्त कर दी है। उत्तर भारत विदेशी संस्कृतियों के आक्रमणों से जब जब पद दलित हुआ है, दक्षिण से प्रकाश किरण आई है। जिस प्रकार हिमालय पर्वत उत्तर में हमारी राजनैतिक सुरक्षा का सजग प्रहरी रहा है उसी प्रकार दक्षिण भारत भारतीय संस्कृति की सुरक्षा का आधार बना है। भारतीय संस्कृति की अनगिनत धरोहर दक्षिण भारत में ही सुरक्षित है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति को समझने के लिए दक्षिण जन जीवन तथा मन्दिरों का दिग्दर्शन आवश्यक है। वही दक्षिण यदि न्याय अन्याय का दृष्टिकोण लेकर पृथक्करण और विरोध के स्वर में बोलता है तो आश्चर्य है। हमारी भावात्मक एकता के सांस्कृतिक आधार अनगिनती हैं। बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी और मद्रासी बनकर हम अपने पैरों पर स्वयं ही आरा चलाएँगे। हम सब भारतीय हैं, एक हैं यही भावना भुवन में हमारा जयघोष कर सकेगी।

1

भावात्मक एकता के स्वर उत्तर से दक्षिण तक

उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण भारत म जितनी विविधता ऊपर स दिखती है उतनी ही एकता तनिक गहराई तक उसकी सस्कृति, सभ्यता और साहित्य म उतरते हो अनायास मिल जाती है।

इस पुरातन राष्ट्र की धरती पर न जान कितनी जातिया इतिहास के किस पुराकाल मे किस प्रकार आईं, पली और इसके जन जीवन म घुलमिल गइ, कहना कठिन है। प्राप्त इतिहास ता बहुत थोडा बता पाता है पर जो कुछ उसम है उमका मात्र इस राष्ट्र की हवा, पानी और सास्कृतिक धरोहर की उस पाचन शक्ति का पर्याप्त प्रमाण है जिसन समन्वय का महामन्त्र दकर सबको समरूप कर अपना लिया। जा भी आया, इस धरती का अपना बन गया। डा० रामधारीसिंह दिनकर न सस्कृति के चार अध्याय म उचित कहा कि भारत वसुधरा की शाश्वत उवरा शक्ति उन भावनात्मक बीजो का सतत् सृजन करती रही जिनम एकता के विशाल वट वृक्ष समाहित थे।" इसलिये यहाँ नीग्रो, आष्ट्रिक द्रविड आय मगाल, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण और तुक सभी अपना अलग अस्तित्व भूल कर समय के प्रभाव स पच गये। (अध्याय 1 पृष्ठ 38)

एकता क स्वर वदिक साहित्य म मिलत हैं। यही एकता का भाव अश्वमेध यज्ञ के पीछे रहा ह। अगस्त्य ऋषि की दक्षिण विजय इसी प्रयास की कडी थी और रामायण, महाभारत, पुराण, मेघदूत व रामचरित मानस

भी इसी भावात्मक एकता के स्वरों की साधनाएँ हैं । वैदिक 'रुद्र' का द्रविणों के शिव से समन्वित होकर उत्तर से दक्षिण तक पूज्य महादेव बनवाना इसी एकता की कहानी है ।

मूर्त आधार नश्वर हुआ करते हैं किन्तु भावना के सूक्ष्म आधार तोड़े नहीं टूट पाते । वाल्मीकि ने इस तथ्य को पहचाना था तभी तो उनके राम ने उत्तर भारत के साकेत (अयोध्या) से चलकर दक्षिण के जन स्थान (तुलसी द्वारा वर्णित पंचवटी) को अपना निवास बनाया । फिर दक्षिण के निवासियों वानरों (वानर दूसरे नर या वे मनुष्य) आदि से सम्पर्क स्थापित कर समन्वय का आधार रखा । कहावत प्रसिद्ध है, एकता में बल है । जब उत्तर दक्षिण के बीच एकता स्थापित हुई तभी समुद्र पर सेतु बाँधा जा सका और वह विदेशी आततायी, अपने युग का सर्वाधिक प्रबल विस्तारवादी राक्षस सम्राट रावण परास्त किया जा सका । कहना होगा राम स्वयं ही उत्तर से दक्षिण के बीच कल्पों तक जीवित रहने वाले सेतुबन्ध बन गये ।

भावात्मक एकता के स्वरों का इसी धरती पर सदा सदा से सतत् सृजन होता रहा है । वैदिक विश्वास तथा उनकी क्रिया प्रतिक्रिया में जितने धर्म उपजे सभी ने एकता को बल दिया । तक्षशिला से चल कर जैनों के बाहुबली दक्षिण में जाकर स्थापित हुए । कपिलवस्तु से चले बुद्ध का व्यक्तित्व कितनी ही मूर्तियों के रूप में कृष्णा नदी के किनारे (मुहाने के निकट) आंध्र प्रदेश की अमरावती तक और उससे भी नीचे दक्षिण तक पहुँच गया । बौद्धों की कथाएँ जन जन की निधि बन गई और व्यक्ति व्यक्ति के भावनात्मक तन्तुओं को छू गई ।

एकता के स्वर जो साहित्य की धारा में जागे थे, पुराणों में अधिक मूर्त रूप लेकर मुखरित हुए । वायु पुराण में रचयिता ने कहा है कि 'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् । वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।'

अर्थात्—उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्र तक विस्तीर्ण प्रदेश भारत है जिसकी सन्तति भारती अर्थात् ज्ञान में रत रहने वाली है ।

]

बौद्धिक विचारक सूक्ष्म आधार पर टिक सकते हैं किंतु जन सामान्य तो स्थूल मूर्त आधार चाहता है। मन की गहराई में छिपे इस रहस्य को पौराणिक जानते थे इसलिए उन्होंने एकता के स्वर को भारत के भूगोल से समन्वित कर देश की मिट्टी के कण कण में भर दिया।

गंगा च जमुना चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधं कुरु॥

उपर्युक्त श्लोक में पौराणिकों ने गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती नर्मदा, सिन्धु, कावेरी आदि सभी के जलों को समान रूप से पवित्र मान कर उनकी अर्चना की है। पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण भारत को एकता की भावात्मक कड़ी में जोड़ने का जितना बड़ा कार्य इस प्रकार के श्लोकों ने किया वह क्या सहज विस्मृत हो सकेगा। नदियों की भाँति ही पौराणिकों ने पुरियों का भी स्मरण किया—

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया, सप्तैता मोक्षदायिका॥"

अर्थात्—"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारावती सातों ही नगरियाँ मोक्ष देने वाली विख्यात हैं।

काश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक विस्तीर्ण यह भारत राष्ट्र भावात्मक एकता की असंख्य कड़ियों से जुड़ा है। जहाँ प्रत्येक सम्प्रदाय में तीर्थयात्रा का महात्म्य है। सूर्य के बारह मन्दिर, गणपति के बारह पुण्य स्थान, शैवों के अठारह ज्योतिर्लिंग, शाक्तों के इक्यावन शक्ति क्षेत्र तथा वैष्णवों के अगणित तीर्थ क्षेत्र सम्पूर्ण भारत में बिखरे पड़े हैं। जितनी श्रद्धा से शैव और शाक्त रामेश्वरम् के दर्शन को जाते हैं उतने ही भक्तिभाव से वैष्णव जन गंगोत्री का जल लाकर शिवलिंग पर चढ़ाते हैं।

साहित्यिक, दार्शनिक और राजनैतिक प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक काल में भारत की राष्ट्रीय एकता बल पाती रही है। महर्षि वाल्मीकि और व्यास की परम्परा को कालिदास ने अपने बुद्धि कौशल से पुनरुज्जीवित किया।

उनका मेघदूत शृंगार काव्य दीखता है लेकिन अपने अन्तर में एकता के कितने सरल स्रोत का समेट है। हिमाचल की अलकापुरी का निर्वासित यक्ष दक्षिण के रामगिरि की पहाड़ी पर अवधि काटता है। यक्ष को आषाढ़ का प्रथम मेघ रामगिरि के शिखर से अटका देख घर की याद आती है और मेघ को सम्बोधित कर वह अपना सन्देश कहने लगता है। मेघ को अलकापुरी का रास्ता बताता हुआ यक्ष सारे भारत का सरस चित्र धर देता है। यक्ष की कल्पना म मेघ नमदा पर उड़ता है। चमर्णवती पर झुकता है, उज्जयनी पहुँच कर उसके वैभव को निहारता और पुरज को मुड़ जाता है, काशी होता हुआ वह गन्तव्य पर पहुँचता है। लगता है कालिदास शृंगार नहीं लिख रहे व किसी विरही यक्ष की व्यथा नहीं कहते, उसने किसी को निर्वासित नहीं किया, उत्तर से दक्षिण तक एक सेतु को बाँधा है, भावात्मक एकता के उस राजमार्ग को बनाया है जिसका ताना बाना सूक्ष्म भावनाओं से बनता है।

कालिदास ने कलम उठाकर हृदय को छुआ था, आचार्य शकर ने बौद्धिक समन्वय किया लगता है। उनके चारा तीर्थ देश के चारो कोनो पर खड़े हुए भावात्मक एकता का सस्वर मन्त्र जाप कर रहे हैं। भारत की भावात्मक एकता क सुदृढ सूत्र दशको या शतको म नहीं, कई सहस्राब्दियो म विकसित हुए है।

भारत राष्ट्र की भावात्मक एकता का सुन्दर चित्र कवि गुरु रवीन्द्र ठाकुर की वाणी मे कितना सहज उतरा है

हे मोर चित्त, पुण्यतीर्थ जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानेवर सागर तीरे।
केह नाहि जान, कार आह्वान कत मानुषेर धारा।
दुर्बार स्रोत एलो, को था हुत, समुद्रे हलो हारा।
हे थाय आय हेथा अनार्य मोगल एक देहे हलो लीन।
रण धारा बहि जय गान गाहि, उन्माद कलरवे।
भेदी मरू पथ, गिरि पर्वत मारा ऐसे छिने सबें।

हारा मोर माझे सवाई विराजे केहो है दूर।
आमार शोणिते रमेछे ध्वनित तरि विचित्र सूर॥

अर्थात् भारत देश महा मानवता का पारावार है। ओ मेरे हृदय! इस पवित्र तीर्थ में श्रद्धा से अपनी आँखें खोलो। किसी को भी ज्ञात नहीं कि किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धारायें वेग से बहती हुई यहाँ-वहाँ से आईं और इस महा समुद्र में मिलकर खो गई। यहाँ आर्य हैं यहाँ अनार्य हैं, यहाँ द्रविड़ और चीन वंश के लोग हैं।

शक, चीन, पठान और मंगोल, न जाने कितनी जातियों के लोग इस देश में आये और सबके सब एक ही शरीर में समाकर एक हो गये। समय समय पर जो लोग रण की धारा बहाते हुए एवं उन्माद और उत्साह में विजय के गीत गाते हुए रेगिस्तान को पार कर एवं पर्वतों को लाँघ कर मेरे इस देश में आये थे उनमें से किसी का भी अब अलग अस्तित्व नहीं है। मेरे रक्त में सबका स्वर ध्वनित हो रहा है। (ऐई मानवेर सागर तीरे। संस्कृति के चार अध्याय पृ० 3)

भारत राष्ट्र का दक्षिण उत्तर से और उत्तर दक्षिण से युगों युगों से कुछ लेता आया है। दक्षिण से चली विट्ठल, वल्लभाचार्य और रामानुजाचार्य की भक्ति परम्परा उत्तर भारत में नवलता की भाँति सघन होकर छाई। बंगाल के विवेकानन्द को कन्याकुमारी की अन्तिम चट्टान पर भारत जनता का आर्तनाद सुन पड़ा और बंगाल के अरविन्द घोष की ज्योति पाण्डिचेरी के पुनीत आश्रम से प्रदीप्त हुई है। रवि, बंकिम, शरद्, पडेरकर, कालेलकर, सातवलेकर गिरधारी शर्मा चतुर्वेदी, पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, राधाकृष्णन, निराला, प्रसाद पंत, महादेवी वर्मा, अज्ञेय आदि का साहित्य देश के कोने कोने में व्याप्त हो चुका है।

भावात्मक एकता का शिशु सहृदयता के पालने में पलता है, सांस्कृतिक आदान प्रदान के आहार द्वारा पुष्ट होता है। सहिष्णुता उसे नया जीवन देती है और त्याग दीर्घायु देता है। 1962 के चीनी आक्रमण और 1965

के पाकिस्तानी आक्रमण पर भारत की भावात्मक एकता ने अपना समग्र स्वरूप दर्शाया था किन्तु फिर भी भाषायी और प्रान्तीय विवाद यह बताते है कि हमारी भावात्मक एकता का सरोवर काई की परत से जहाँ तहाँ दब गया है। नीचे का जल तो आज भी दपण सा स्वच्छ है। हर देश भाई को हम अपना कहना होगा। भाषा भाषा के बीच सहिष्णुता लानी होगी। उत्तर से दक्षिण व दक्षिण से उत्तर को सास्कृतिक व साहित्यिक सद्भावना मण्डल भेजने होगे। जब उत्तर के सुख दु ख से दक्षिण और दक्षिण की पीडा मे उत्तर का अन्त करण पसीजेगा, भावात्मक एकता के स्वर पुनर्जीवित होगे। भावात्मक एकता का सरोवर तब स्वच्छ होगा, काई की परत तब से उस पर उतर जाएगी।

□□

राष्ट्रीय भावात्मक एकता के मंगलमय प्रतीक भगवान गणेश

"जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥"

भारतीय संस्कृति में वर्णित देवपरिवार में मंगलमूर्ति भगवान गणेश का स्थान सबसे ऊँचा है। विनायक गणेश ऋद्धि सिद्धि के देवता हैं। भारत के लोगों का विचार है कि गणेशजी जीवन में आने वाले समस्त विघ्नों का नाश कर सफलता, सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य प्रदान करने वाले देवता हैं। इस कारण इस देश के लोग विशेषकर हिन्दू जीवन के प्रत्येक शुभ काम में सर्वप्रथम उनका स्मरण और पूजन करते हैं।

गणेश जी का जन्म

भगवान् गणेश शंकर पार्वती के पुत्र हैं। इनके जन्म के बारे में अनेक प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कथा मिलती है कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को माता पार्वती को पुण्यकव्रत के प्रभाव से भगवान् श्रीकृष्ण ही बालक गणेश के रूप में प्राप्त हुए थे। शिवपुराण में एक दूसरी कथा है कि एक बार माता पार्वती स्नान कर रही थीं। उस समय उन्होंने अपने उबटन के मैल से एक सुन्दर मूर्ति बनाकर उसमें प्राण का संचार किया। उस सुन्दर बालक से मां ने कहा कि जब तक मैं स्नान करूँ तुम द्वार पर बैठे रहो और किसी को भी अन्दर मत आने देना। पार्वती जी स्नान करने लगीं।

थोड़ी देर बाद शिवजी बाहर से लौटे और अन्दर जाने लगे। बालक ने उन्हें अन्दर जाने से रोका। दोनों ही एक दूसरे को नहीं जानते थे। काफी

दर तक अन्दर जाने के लिये दोनों में बहस होती रही। अन्त में शिवजी ने नाराज होकर बालक का सिर काट डाला और अन्दर चले गये। पार्वतीजी को बालक के मारे जाने का बहुत दुःख हुआ। उन्हें दुखी देखकर भगवान् शिव ने हाथी के नवजात शिशु का सिर काटकर मृत बालक के धड़ से जोड़ दिया। बालक जीवित हो गया और गजानन कहलाया।

सर्व पूज्य गणेश

एक बार देवताओं में विवाद हुआ कि देवताओं में सबसे पहले किसकी पूजा की जाय। तय हुआ कि जो पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आयेगा वही सर्वपूज्य होगा। सब देवता अपने अपने वाहनों पर बैठकर परिक्रमा के लिये रवाना हो गये। गणेशजी का वाहन था छोटा चूहा। बेचारा कितना दौड़ता और फिर गणेशजी का शरीर भारी भरकम था। उन्होंने माता पिता को एक स्थान पर बिठाकर उनकी परिक्रमा कर ली। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि माता पिता पृथ्वी तो क्या ब्रह्माण्ड के प्रतीक हैं।

ब्रह्माजी ने व्यवस्था दे दी कि गणेशजी सर्वप्रथम रहे। यह उनकी बुद्धि का ही चमत्कार है। इसी कारण वे देवताओं में प्रथम पूज्य हुए।

कोई भी शुभ कार्य किया जाय तो उसमें गणेशजी के पूजन से सफलता मिलती है। कहते हैं कि स्वयं भगवान शंकर ने त्रिपुरा राक्षस का वध करने से पहले गणेश पूजन किया था। इसी प्रकार वृत्रासुर का वध करने के लिये इन्द्र ने भी गणेश पूजन किया था।

राष्ट्रीय एकता के प्रतीक गणेश

भारत जैसे विशाल देश में अनेक धर्म व सैकड़ों सम्प्रदाय हैं। विशाल हिन्दू समुदाय में शिव भक्त, देवी भक्त और विष्णु के उपासक युगों से अपने अपने देवता को श्रेष्ठ बताने के लिये तर्क करते रहे किन्तु भगवान् गणेश भारत में एक ऐसे देवता हैं जिनके बारे में काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा आसाम से लेकर सप्तसिन्धु तक कहीं कोई लड़ाई झगड़ा नहीं है। सारे देश के लोग उन्हें किसी न किसी रूप में अपना देवता मानते हैं। जैन और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों ने भी गणेश जी को अपना पूज्य देवता स्वीकार किया है।

राष्ट्रीय लेखक गणेश

प्राचीन भारत की संस्कृति व सभ्यता के अटूट खजाने तथा विशालकाय ग्रन्थ महाभारत का लेखन गणेश जी ने पूरा किया था। महर्षि वेदव्यास जी संस्कृत में श्लोक बोलते जाते थे और गणेश जी शीघ्रता से लिखते जाते थे। इस प्रकार शार्टहैण्ड सीखने वाले क्लास के छात्रों के लिए तो गणेशजी एक आदर्श हैं।

गणपति का वैज्ञानिक स्वरूप

प्राचीन युग में यूनान तथा रोम की भाँति भारत भी गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति का जनक रहा है। आर्य सभ्यता के ग्राम राज्य कालान्तर में नगर राज्यों में परिवर्धित हुए और उत्तर वैदिक काल तक साम्राज्यों की स्थापना का दौर चल पड़ा। फिर भी मौर्य साम्राज्य की स्थापना से पूर्व तक भारत में अनेक गणराज्य थे। इन गणराज्यों के स्वामी 'गणपति' कहलाते थे। गणपति अर्थात् 'राज्य में शासन का प्रधान' सम्पूर्ण गणराज्य के लिये पूज्य, श्रद्धास्पद तथा मांगलिक कार्यों में प्रथम निमन्त्रण का पात्र माना जाता था। राज्य के गणों (नागरिकों) में से सबसे बुद्धिमान, शान्त गम्भीर, व्यवहारकुशल तथा गुत्थियों को सुलझा सकने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति 'गणपति' का पद पाता था। व्यक्ति अपने गुणों से पूज्य बनता है, शक्ति के प्रभाव से नहीं। 'गणपति' पूज्य बन गये क्योंकि गणराज्यों की व्यवस्था सँभालने के लिये प्रायः गुण अपेक्षित है। समय की गति ने गणराज्यों को समाप्त कर दिया, परन्तु भारत की संस्कृति ने किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं वरन् अच्छे शासक में अपेक्षित गुणों को याद रखने के लिये प्रतीक रूप में 'गणपति' की पूजा को एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाना प्रारम्भ कर दिया।

भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान रही है। उसके जीवन में धार्मिक आस्था के रूप में सामाजिक तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं का सम्मिश्रण है। 'गणपति पूजा' को भी इसी प्रकार का मिला जुला रूप मिला। पौराणिक गाथाओं के अनुसार गणपति अर्थात गणेश पार्वती नन्दन हैं, शिवकुमार हैं। इनके हाथी जैसे सिर के लिये भी पौराणिक गाथा जुड़ गई है। मान लीजिए

यह सत्य ही है परन्तु ऐसे सिर को विशाल उदर वाले धड़ पर धारण करके गणेश चूहे जैसे वाहन से जैसे काम चला सके—यह बुद्धि किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं कर पाती। फिर हाथी जैसे सिर को भोजन के लिये मोटे मोटे रोट चाहिये, छोटे छोटे मोदक (लड्डू) नहीं। स्पष्ट है कि गणेश का प्रत्यक्षदर्शी स्वरूप वास्तविक रूप नहीं है। वस्तुतः यह एक सच्चे और अच्छे गणपति के स्वरूप का प्रतीक है जो हमें उन गुणों की याद दिलाता है जिसके कारण गणपति पूज्य बन गये।

गणेश अर्थात गणों का 'ईश' गणपति का पर्याय ही है। उसका बड़ा सिर विशाल बुद्धि का सूचक है। हाथी के सिर की लम्बी नाक अच्छी घ्राण शक्ति का परिचय देता है। गणपति को राज्य शासन की समस्याओं का पूर्व परिचय जान लेना आवश्यक ही है। यदि उसमें यह क्षमता नहीं है, तो वह अच्छा शासक नहीं बन सकता। विशाल सिर पर छोटी आँख गणपति के लिये पैनी दृष्टि रखने की ओर सकेत करती है। बड़ा और मोटा उदर यह प्रकट करता है कि गणपति को गम्भीर होना चाहिये। सबकी सुने और अपने मन में रक्खे। पंखे जैसे बड़े बड़े कानों से सूप के गुण की भाँति अनावश्यक तथ्य छोड़ दे और सार मात्र ग्रहण करे। गणेश का वाहन चूहा भी बड़े काम का है। उन ऐसे हाथियों से क्या काम जो भारी शरीर होने के कारण राजा पुरु की हार का कारण बन गये। गणपति को तो अपना वाहन (आश्रय जासूस) ऐसा चाहिये जो अपने तीखे दांतों से सभी प्रकार के जालों (समस्याओं) को काटने की क्षमता रखता हो। गणपति में स्वयं यह गुण बड़ा आवश्यक है कि छोटे छोटे साधनों से भी बड़े बड़े काम निकाल सके। चूहा प्लेग फैलाने का कारण भी है। प्लेग रोग तथा बुराइयों का द्योतक है। चूहे पर सवार गणपति वही सार्थक है जो रोग तथा बुराइयों को दाब कर रख सके, राज्य में उन्हें उभरने न दे। इन अर्थों में चूहा गणपति के लिये बड़ा सार्थक वाहन है। गणेश का मोदकप्रिय भी होना ही चाहिये। मोदक अर्थात मिठास मृदु भावों का प्रयोग करने और प्रसार करने वाले ही गणपति होने योग्य है तभी तो वे मुदमंगल दाता बन सकते है। इस प्रकार गणपति के लिए महाकवि तुलसीदास की यह उक्ति अक्षरशः सार्थक है—

"गाइए गणपति जगवंदन।
शंकर सुवन भवानी के नंदन॥
सिद्धि सदन गजवदन विनायक।
कृपासिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद मंगल दाता।
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता॥

'गण' शब्द श्लेषार्थी है। अंक विद्या को गणित की संज्ञा दी जाती है। जो अंक विद्या का स्वामी है गणिताचार्य है वह गणपति है। साहित्य क्षेत्र में गण उन वर्णों का पर्याय हैं, जो काव्य जगत का आधार है। गण नौ माने गये हैं य, म, त, र, ज, भ, न, स और ल। जो साहित्यिक इस गण विद्या का स्वामी है, वह श्रेष्ठ कवि है, सृष्टा है, उसकी सूझ अपार है। क्योंकि 'जहाँ न पहुँचे रवि तहाँ पहुँचे कवि'। विज्ञान शास्त्र में नक्षत्रों की गति का भी गणना का आधार चाहिये। जो व्यक्ति ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञाता है, ग्रह, उपग्रह आदि के विषय में गणना करता है उसे भी गणपति की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार गणपति गणिताचार्य, काव्याचार्य, ज्योतिषाचार्य का रूप है और इन सबकी समाज में पूजा का संकेत देता है। गणेश चतुर्थी के दिन गुरुओं का अभिभावकों से सम्पर्क तथा अभिभावकों द्वारा उनका सम्मान हमारे सांस्कृतिक जीवन की एक सुंदर परम्परा है।

गणपति उत्सव का राष्ट्रीय स्वरूप

भारतीय जीवन विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय का परिणाम है। इसमें अनेकता होते हुए भी मौलिक एकता है और एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण है जिसमें अनेकानेक स्रोतों को एकरूप बना देने वाले सागर की भांति शोषण की शक्ति है। भारतीय दर्शन किसी पैगम्बर विचारक या धर्म प्रवर्तक की देन नहीं है। इसका विकास सभ्यता के साथ जीवन की आवश्यकताओं में हुआ है। इसीलिए इसमें व्यावहारिक जीवन में बहुरूपता है। जहाँ निराकार की उपासना हठयोग समाधि और चिंतन का महत्वपूर्ण स्थान है, वहाँ विभिन्न रूपों में साकार भावना ने शक्ति शील और सौंदर्य के आलम्बन के रूप में अनेकानेक देवी देवताओं की पूजा को मान्यता दी है। जीवन यापन

ये य स्वरूप किसी समाज या सभ्यता के प्राण स्वरूप होते हैं, उसकी संस्कृति के द्योतक हैं।

भारतीय समाज संस्कृति के इस स्वरूप को वर्ष भर ऋतु अनुकूल त्योहार या पर्व के रूप में उल्लासपूर्वक मनाकर जीवित रखे हुए है। यदि पर्व मनाने की परम्परा न अपनाई गई होती, तो भारतीय संस्कृति का स्वरूप अतीत के गर्भ में विलीन हो चुका होता। पर्व हमारे सामाजिक जीवन में इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि जाति, वर्ण, वर्ग तथा प्रदेश की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर हम इन्हें देश व्यापी महत्व देते हैं। राजनैतिक प्रघात भारतीय संस्कृति की अमरता पर आँच नहीं ला सके क्योंकि पर्वों पर प्रगटित हर्षोल्लास व मर्यादित श्रम ने प्राचीनता की धरोहर को नष्ट होने से बचा लिया। प्रत्येक पर्व हमारे इतिहास का एक गौरवमय पृष्ठ है। अनेक महत्वपूर्ण कृत्य अथवा स्मरणीय गाथाएँ उसके साथ गुंथी हुई हैं। पर्वों को मनाकर हम उन स्मृतियों को सम्य जीवन में प्रेरणा के स्रोत बनाये रखते हैं। व्यवहार में कतिपय आडम्बर एवं मनाने की प्रक्रिया के साथ अवश्य जुड़ गये हैं तथापि मूल में निहित वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय भावना निश्चय ही अपना महत्व रखती है।

गणेश चतुर्थी हमारे देश का एक राष्ट्रीय पर्व है—यह सर्वदेशीय है। उत्तर भारत में गणेश चतुर्थी पर गणेश पूजन बालकों से कराया जाता है। कहीं कहीं झाँकियाँ भी सजाई जाती हैं। महाराष्ट्र में गणेशजी की विशाल मूर्तियाँ बनाई जाती हैं जो जुलूस निकाल कर समुद्र में अथवा तालाबों में बहाई जाती हैं। मराठा इतिहासकार श्री राजवाड़े के अनुसार गणेश उत्सव शातवाहन, राष्ट्रकूट और चालुक्यवंशी राजाओं द्वारा सार्वजनिक रूप से मनाया जाता था। रामभक्त समर्थगुरु रामदास की प्रेरणा से शिवाजी महाराज भी गणेशजी के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। उनके प्रत्येक किले के मुख्य द्वार पर सुन्दर प्रतिमाएँ विघ्न व संकट दूर करने के लिये स्थापित की गई थीं। पेशवाओं के काल में गणेशजी का बड़ा आदर था। अदालतों में न्यायाधीश के उच्चासन के पीछे गणेश प्रतिमा रखी रहती थी। अंग्रेजी शासनकाल में लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सव को राष्ट्रीय स्वरूप दिया।

]

मैसूर राज्य म नवयुवक झालर घण्टे बजाते हुये गणेश मूर्ति को तालाब मे बहाने के लिये ले जाते है। आन्ध्र राज्य म भी यह उत्सव खूब धूमधाम से मनाया जाता है तमिलनाडु म गणेश पूजा के दूसरे दिन छात्र मिट्टी की मूर्ति को समुद्र मे या तालाब म डुबोने स पहले गणेश प्रतिमा की तोद म चिपकाई हुई चवन्नी निकालकर ले लेते हैं। सम्पूर्ण दक्षिण भारत म छात्र इस दिन नये वस्त्र पहनते हैं। इस प्रकार सारे भारत मे गणेश चतुर्थी पर घर-घर गणेशजी का पूजन व उत्सव किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय एकता के देवता

भगवान् गणेश की कृपा से भारत म ही नही बल्कि विदेशो स भी भारत की एकता स्थापित की जा सकती है। गणेशजी भारत के ही नही अन्तर्राष्ट्रीय जगत के आराध्य देवता हैं। पडौसी देश नेपाल क लोग गणेशजी को 'हैरम्ब विनायक' के नाम मे पूजते है। बर्मा व स्याम (थाईलण्ड) के देशो म गणेशजी की काँसे की मूर्तिया की बडी प्रतिष्ठा है। कम्बोडिया म गणेशजी के खडे हुए स्वरूप की मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। जावा क शिव मन्दिरो म गणेश मूर्ति का भी पूजन होता है। चीनी अधिकार स पहले तिब्बत म गणेशजी 'सोरददाग' के नाम स लामाओ द्वारा पूज्य थे। पूर्वी देशो म आज भी जापान मे गणेशजी की उपासना सबसे अधिक की जाती है। जापान के टोकियो और अनक नगरो मे बौद्धो द्वारा बनवाए हुए गणेशजी क कई मन्दिर है।

गणेशजी भारत के राष्ट्रीय देवता हैं

उपयुक्त वर्णन स यह सिद्ध हो जाता है कि गणेशजी सच्चे अर्थो म भारत के राष्ट्रीय देवता है। यदि भारत की ओर स प्रयत्न किया जाय तो राजदूत की भाँति गणेशजी भारत की ओर स अन्तर्राष्ट्रीय देवता बनकर सारे ससार को एकता क स्नेह सूत्र म बाँधने का कार्य भी सफलता स कर सकते है।

साँस्कृतिक एकता के आधार 'शिव'

शिव ऋग्वेद स लकर आज तक भारतीय सस्कृति के स्रोत बन हुए हैं। ऐसा कहा जाता है कि मोहनजोन्डो और हडप्पा के उत्खनन मे प्राप्त सामग्री म जा शिवलिंग प्राप्त हुए हैं उसके आधार पर इतिहासविदो का यह मत है कि उस काल म शिव पूजा अनार्यों म प्रचलित थी।

सिन्धुघाटी की लिपि पढने से यह सिद्ध हो गया है कि यह सभ्यता वैदिक सभ्यता से भिन्न नही है। उसम शिव और देवी उपासना क सूत्र मिलत है। अन्वेषण स यह भी पता लगा है कि उपनिषद् व ब्राह्मण काल की उपासना एव विचार ही सिन्धुघाटी की सभ्यता म मिलत है। अत यह कहना अनुचित नही है कि जो शिव व शक्ति, जगतपिता और जगन्म्बा तथा सोम और उमा की जोडी हम सिन्धु सभ्यता म मिलती है वह ऋग्वेद स प्राप्त हुई है। इस प्रकार शिव तत्त्व सभी रूपो म व्याप्त है। बौद्ध देवी प्रज्ञापारमिता भगवान बुद्ध और महावीर तथा राधाकृष्ण की जोडी म भी हम उसी एक शिव को देखत है।

ईसा से सदियो पूर्व शक्ति सगम तन्त्र म यम, प्रस्थ वरुण प्रस्थ और रुद्र प्रस्थ का वर्णन प्राप्य है। इनम यम प्रस्थ ही परवर्ती काल मे स धव प्रदेश कहलान लगा। इसकी सीमाएँ व्यापक थी। यह ब्रह्मा स लकर पश्चिम मे अरब देश तक विस्तृत था। उस समय अरब क मक्का शहर म मक्केश्वर शिव पीठ स्थापित था जो आज भी वहा 'सगे अस्मद' क नाम स प्रसिद्ध है।

शिव और शक्ति के पीठ सम्पूर्ण भारत म व्याप्त है। बिलोचिस्तान (पाकिस्तान) म हिंगलाज, उत्तर म नेपाल म पशुपतिनाथ, काश्मीर मे

अमरनाथ, दक्षिण भारत मे कन्याकुमारी, आसाम म शिव भक्ति के लिग और पीठ हैं। इस प्रकार भारत जगम्बा और जगतपिता की पीठा स युक्त अर्थात् सारा भारत ही शिव शक्तिमय है। ऐसा पुराणो मे वर्णन है कि दक्ष यज्ञ की मृत देह को कधे पर लादे हुए शिव सारे भारत म घूमते फिरे। सती के शरीर के अग सारे भारत म एक एक करके गिरते रहे। यह वर्णन ऐतिहासिक नही है। यह प्रतीकात्मक वर्णन ह। इसके आधार पर शिव की शक्ति सारे भारतीय भूखण्ड म विद्यमान है जो प्रतीकात्मक भावना के माध्यम से शिव शक्ति की व्यापकता का बोध कराती है। आज सम्पूर्ण भारत म ५१ शक्तिपीठ स्थापित ह।

ऋग्वद मे एक मन्त्र है जिसम शकर की शक्ति पार्वती स अपन भाव व्यक्त करती है कि मैं राष्ट्र म सबको एक सूत्र म मिलाने वाली हूँ। यज्ञ कर्त्ताओ की प्रवृत्ति म भी म ही हूँ। सब देवता मेरे द्वारा ही कार्यरत है। यह जगतजननी जिस हम उमा के नाम से पुकारते हैं उसी ब्रह्म (शिव या ग्राम) की शक्ति है। जहाँ उमा की शक्ति समाहित होती है, वही ग्राम है। यह शिव शक्ति का जोडा सृष्टि के प्रत्येक व्यक्ति म मौजूद है।

हमन भारत म पूजा की दृष्टि से ईश्वरीय शक्ति के अनेक चित्र बनाये हैं और व सभी अलग अलग महिमा सूचक हैं। इनम शिवलिंग की कल्पना आदि कल्पना है। यह लिंग ज्योति का प्रतीक है। अत यह ज्योतिर्लिंग शिव की शक्ति का प्रतीक है। इस पर हम नित्य जल चढाते है। उपनिषदा मे ज्योतिर्लिंग को अग्नि का प्रतीक माना गया है। अग्नि के कई स्वरूप हैं। जठराग्नि भी उनमे स एक है। मानव शरीर देवताओ की अयोध्या है। इसमे बुराइयाँ बढन पर रावण का राज्य स्थापित हो जाता है। राम भी कही दूर नही ह। वे आत्मा म है। जिस अजेय अयोध्या का कभी कभी रावण अपन अधिकार म कर लता है, उस य राम पराजित कर देत हैं। एक अग्नि और ह जिस हम आत्मा के नाम से पुकारत हैं। यह आत्मा ही शिव है। वेदी पर जलती हुई अग्नि शिखा का प्रतीक है यह शिवलिंग। आर्यों ने इसी अग्नि शिखा को और वेदी को पत्थर और मिट्टी का रूप दिया और इस प्रकार शिवलिंग म शिव शक्ति की प्रतीक के रूप म पूजा होन लगी।

हम नटराज की मूर्ति अथवा चित्र को देखते हैं। यह संहारक शिव का प्रतीक है। गणेश उसी शिव की एक विशेष शक्ति हैं। ये विघ्नेश्वर कहलाते हैं। ये राष्ट्र की उस शक्ति के प्रतीक हैं जो राष्ट्र पर आने वाले विघ्न पर नियन्त्रण करती है। इसी प्रकार कार्तिकेय है, जो दक्षिण भारत मे सुब्रह्मण्यम के नाम से भी जाने जाते हैं। इनका एक नाम स्कन्ध भी है। इनके ६ सिर हैं। देवताओं के सेनानी हैं। ये सब कथाएँ ऐतिहासिक वस्तु न होकर प्रतीक कथाएँ है।

जो ईश्वर की सत्ता को नही मानते है वे भी प्रतीक से पूजा करते हैं, जैसे साम्यवादी देश करते है। उनका एक राष्ट्रीय झण्डा है, जो लाल कपडे का है। उस पर हंसिया व हथौड़ा बना हुआ है। वे उस झण्डे की इज्जत करते हैं। उसके सम्मान की रक्षा के लिये वे जान की बाजी लगा देते हैं। हमारा भी राष्ट्रीय झण्डा है जिसके लिये हम जान देते है। यह झण्डा प्रतीक है। यह जिस आदर्श को व्यक्त कर रहा है, उसके प्रति हम श्रद्धा करते है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द से अलवर नरेश ने यह प्रश्न किया कि क्या ईश्वर की मूर्ति हो सकती है। तब स्वामीजी ने दरबार मे उपस्थित राज्य के प्रधानमन्त्री से अलवर महाराज के चित्र को देखकर पूछा कि यह चित्र किसका है, प्रधानमन्त्री ने उत्तर दिया कि यह हमारे महाराज का चित्र है। यह सुनकर स्वामीजी ने महाराज के उस भव्य चित्र पर थूक दिया। दरबार मे नियुक्त मन्त्रियो ने तलवारें म्यान से बाहर निकाल ली। उस समय स्वामी जी ने कहा कि ऐसी क्या बात हो गई जो सब नाराज है। यह तो कपडे और रंग का खेल है। इस पर इतना मोह क्या ? यह सुनते ही अलवर नरेश ने स्वामी जी के पैर पकड लिये और कहा कि महाराज मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया।

उक्त घटना के संदर्भ मे हम देखें कि ये मूर्तियाँ जिस शक्ति की महिमा को प्रकट करती हैं वे हमारे लिये श्रद्धा और प्रेरणा के स्रोत हैं। जिस प्रकार राष्ट्र अपने झण्डे के सम्मान के लिये प्राण त्यागने को तैयार रहता है क्योंकि वे उस राष्ट्र की शक्ति के प्रतीक है और वह शक्ति सारे राष्ट्र मे व्याप्त ही है।

उसी प्रकार विश्व की महान् शक्ति चाहे वह मक्का में 'सग अस्मद' हो रोम में 'माँ मरियम' और उसके वट के रूप में हो या हिंदुओं के 'शिव' के रूप में हो सबमें यह एक ही ज्योति जगमगा रही है और यह सम्पूर्ण शक्ति शिव सत्ता ही है।

किसी समय यह शिव रात्रि का पर्व हमारा राष्ट्रीय पर्व था। यदि हम इसे ठीक से समझ सकें तो आज भी यह राष्ट्रीय पर्व है। इसका संदेश सार्वभौम है। आज लोग किसी धर्म के हों, चाहे वे किसी मत मतांतर को मानें, हमारे सबके भीतर एक आदि मानव विराजमान है, जो आत्मा का साक्षात्कार कराने वाला है। देश देशान्तर की पृथकता भाषा की विभिन्नता उसे छू नहीं सकती। उसी अखण्डता की ओर यह शिवरात्रि संकेत करती है। इसी को अथर्ववेद में भरताग्नि कहा गया है।

शक्ति का कन्या रूप जिसे ईश कहते हैं और जो प्रत्यक्ष ज्ञान, इच्छा व क्रिया की समन्वित शक्ति के रूप में स्थित है, वही महाशक्ति 'जगदम्बा' है। वह महाशक्ति ही हमारे अन्दर कार्यरत है। जहाँ यह शक्ति है वहाँ शक्तिमान रहता है। इन्द्र, अग्नि और सूर्य की पूजा के बाद ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा होने लगी। ये विचित्र कथाएँ पुराणों की दार्शनिक कथाएँ हैं। यह प्रतीकवाद ही पुराणों की अमूल्य निधि है और विश्व के लिये भी मूल्यवान है।

शिवरात्रि के अवसर पर हम एकलिंग, त्रिमूर्ति या पंचमुखी शिव किसी का भी पूजें, सर्वत्र एक ही तत्त्व विद्यमान है। उसमें कोई भिन्नता नहीं है। राम व कृष्ण की कथा में भी यही वर्णन है। सब कथाओं में एक ही संकेत है कि हमारा आध्यात्मिक जीवन ही इस मानव जीवन का आधार है। यही सुख का मूल है।

महर्षि व्यासजी के अनुसार मनुष्य से श्रेष्ठ इस दुनिया में और कोई नहीं है। सत्य उसकी आत्मा में निहित है। इसी से तुलसी ने कहा था कि "बड़े भाग मानुस तन पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थनि गावा"। असत्य को छोड़ कर सत्य को ग्रहण करो। छोटे सत्य को ग्रहण कर महाकाल सत्य (शिव) को ग्रहण करो।

शिवलिंग पर अर्पित किये जाने वाले बेलपत्र के तीन पत्ते इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं। ऐसे प्रतीक बेलपत्र को हम उस महाकाल को समर्पित करते हैं। इस समर्पण के पश्चात् हमारा स्वयं का कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इसके परे जो शक्ति है, वह पराशक्ति कहलाती है। इस प्रकार हम अपने को उस महाशक्ति के आश्रय पर छोड़ देते हैं।

साधारणतः सामान्य रात्रियां में सोते हैं, किन्तु शिवरात्रि का रात्रि जागरण उस महाशक्ति से जोड़ने का प्रयत्न है। शिव के ध्यान की उस लीन अवस्था में हम नारायण की वंशी सुनाई देती है। वैकुण्ठेश्वर के दर्शन होते हैं। इस पर्व की परिपाटी में मनाते मनाते जब प्रतीक शिव पूजा के माध्यम से हम उस जाग्रत शिव को प्राप्त कर सकेंगे, तभी हमारा जीवन सफल होगा।

यह महाकाल की रात्रि का जागरण, उस सत्य के माध्यम से उस अकाल पुरुष अर्थात् महाकाल शिव की प्राप्ति का आध्यात्मिक मार्ग है। यह अभूतपूर्व देन, हमारे प्राचीन ऋषियों की है, जिसमें उन्होंने राष्ट्रीय एकता की ही कल्पना नहीं की है वरन् इस कल्पना से भी आगे बढ़कर उस विश्वात्मा मान कर विश्व एकता की कल्पना की है, जो आज से हजारों वर्ष पहले से हमें राष्ट्रीय आत्मा को एक मानने की प्रेरणा देती आई है। भारतीय दर्शन द्वारा प्रदत्त यही निर्मल भाव जिसमें एक ही शक्ति की झलक है अनेकता के बीच एकता का दिग्दर्शन कराकर हमें आत्मोन्नति की प्रेरणा देती है।

□□

भारत की आध्यात्मिक प्रतिभाएँ

स्वतन्त्रता की शुभ वेला में स्वाधीन सूर्य की अभी हम अर्चना कर भी नहीं पाये थे कि भाषावाद जातिवाद और सम्प्रदायवाद की काली घटाओं ने देश के नभ को आच्छन्न कर डाला। आंध्र, नागालैण्ड, पंजाबी सूबा विदर्भ और कर्नाटक निर्माण के नारों ने देश की एकता पर चतुर्दिक आक्रमण कर नव प्राप्त स्वतन्त्रता के कलेवर को कचोटना प्रारम्भ कर दिया। आज इस विघटनवाद के युग में एकता की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

यह विघटन की प्रवृत्ति भारत में आज की नहीं है। जब जब भी देश की एकता स्थापित हुई, तभी यह विघटनकारी तत्त्व अपना सिर उठाते रहे हैं। इन्हें नष्ट करने के लिए समय समय पर राष्ट्र भक्त, राजनतिज्ञ और समाज सुधारकों ने ही प्रयत्न नहीं किये अपितु संसार त्यागी विरक्त साधु जीवन अपनाकर विचरने वाले सन्तों महन्तों और साधु वर्ग ने भी इस हेतु स्तुत्य प्रयास किया है।

ऐसे प्रातःस्मरणीय सन्तों के कुछ चरित्रों का इस लेख में संकलन किया जा रहा है कि हम आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता 'भावात्मक एकता' के संदर्भ में कुछ प्राप्त हो सके।

महर्षि वशिष्ठ

वशिष्ठ की उत्पत्ति मित्रावरुण से मानी गई। जब ब्रह्माजी ने इनसे सूर्यवंश का पुरोहित बनने को कहा तब इन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि एक ब्राह्मण के लिये पुरोहित पद की कोई श्रेष्ठता एवं महत्ता नहीं थी। किन्तु ब्रह्मा जी के यह कहने पर कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

इसी वंश में आगे चलकर प्रकट होंगे तुम उनके गुरु का गौरवशाली पद पाकर कृतार्थ हो जाओगे—वशिष्ठ ने वह पद स्वीकार कर लिया। ये पहले पूरे सूर्यवंश के पुरोहित थे, किन्तु निमि से विवाद हो जाने के कारण, सूर्यवंश की दूसरी शाखाओं का पुरोहित कर्म इन्होंने छोड़ दिया और अयोध्या के समीप जाकर रहने लगे। वे केवल इक्ष्वाकु वंश का ही पौरोहित्य करते थे। जब कभी अकाल पड़ता, तब अपने तपोबल से वृष्टि करके प्रजा की रक्षा करते। भागीरथ जब तपस्या करते हुए गंगाजी को लाने में निराश हो गये तब वशिष्ठ जी ने उन्हें प्रोत्साहित किया और मन्त्र बताया। महाराज दिलीप के कोई सन्तान नहीं थी तब सन्तान के लिये नंदिनी गौ की सेवा बताकर राजा का मनोरथ पूरा किया।

ये पहले ऋषि हैं जिनके बारे में हमको उचित जानकारी मिलती है। वशिष्ठ एक उपाधि रही। वह उस व्यक्ति को मिलती थी जो उस गद्दी पर बैठता था। प्राचीन साहित्य में हमको कई वशिष्ठों के नाम मिलते हैं, जैसे देवरात, मैत्रावरुण, आपव और श्रेष्ठभाज आदि। वशिष्ठ अपने समय के सबसे अच्छे ब्रह्मज्ञानी, विद्वान, स्मृति तथा धर्मशास्त्र के रचने वाले हुए हैं लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि वे बहुत ही सहिष्णु और क्षमाशील थे। इसीलिये उन्हें ब्रह्मर्षि की उपाधि मिली। महाराज दशरथ के पुरोहित के रूप में उन्होंने केवल राजकुमारों को ही शिक्षा नहीं दी, बल्कि उनके राज्य संचालन में भी पूर्ण योग दिया। ये इसलिये भी प्रसिद्ध थे कि इनका विश्वामित्र से बैर था। महाराज दशरथ के समय जो वशिष्ठ थे उनका विश्वामित्र से बैर नहीं था लेकिन इससे पहले जो वशिष्ठ थे उनका विश्वामित्र से घोर युद्ध हुआ। इस वशिष्ठ ऋषि का नाम देवरात था और विश्वामित्र एक प्रसिद्ध राजा थे। एक बार विश्वामित्र जी सेना के साथ वशिष्ठ जी के अतिथि हुए। वशिष्ठजी ने अपनी कामधेनु गौ के प्रभाव से राजा का तथा सेना का अनेक प्रकार के भोजन से सत्कार किया। गौ का प्रभाव देखकर विश्वामित्र उस लेने को उद्यत हो गये। इन्होंने बल प्रयोग करके गाय को ले जाना चाहा लेकिन गाय के शरीर से अनेक योद्धा उत्पन्न हुए और उन्होंने विश्वामित्र की सेना को मार डाला।

बार बार पराजित होने पर उन्होंने तपस्या करके शंकरजी से युद्ध के लिए दिव्यास्त्र प्राप्त किया, किन्तु महर्षि वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सम्मुख उन्हें पराजित होना पड़ा। यद्यपि इनके सौ पुत्रों को मार डाला गया था, पर इसका इनके हृदय में विश्वामित्र के प्रति कोई रोष नहीं था। एक दिन इन्होंने वशिष्ठ जी को रात्रि में छिपकर मारने का निश्चय किया। वे छिपकर आश्रम में पहुँचे। उन्होंने सुना कि एकान्त में वशिष्ठ जी अपनी पत्नी से कह रहे हैं। "इस सुन्दर चाँदनी रात में तप करके भगवान को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न तो विश्वामित्र जैसे बड़भागी ही कर सकते हैं।" शत्रु की एकान्त में प्रशंसा करने वाले महापुरुष से द्वेष करने के लिए उनका बड़ा दुःख हुआ। वे शस्त्र फेंककर महर्षि के चरणों में गिर पड़े। वशिष्ठ जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और ब्रह्मर्षि स्वीकार किया। वशिष्ठ जी ने योगवशिष्ठ जैसे ज्ञान के मूतरूप ग्रन्थ का श्रीराम को उपदेश दिया। वशिष्ठ संहिता के द्वारा कर्म का महत्त्व एवं उपाचरण का आदर्श लोक में स्थापित किया। उन्होंने भगवान् श्रीराम को शिष्य रूप में पाकर अपने पुरोहित पद को धन्य माना। श्रीराम की इच्छा में अपनी इच्छा को उन्होंने एक कर दिया था। आज भी विश्व कल्याण के लिये वशिष्ठ जी सप्तर्षियों में स्थित हैं।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र

विश्वामित्रजी कुशिक वंश के महाराज गाधि के पुत्र थे। इसी वंश के कारण उन्हें कौशिक कहा जाता है। जिस समय वे राज्य कर रहे थे, उस समय एक बार सेना के साथ विचरण करते हुए महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जा पहुँचे। वशिष्ठ जी के पास कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय थी। उसकी कृपा से वशिष्ठ जी ने पूरी सेना के साथ राजा को नाना प्रकार के भोजन खिलाये। उसका प्रभाव देखकर राजा ने उसे लेना चाहा जब महर्षि ने स्वेच्छा से देना अस्वीकार कर दिया, तब वे बलात् उसे ले जाने लगे, किन्तु वशिष्ठ जी की अनुमति से कामधेनु ने अपने शरीर से लाखों सैनिक प्रकट करके इनकी सेना को पराजित कर दिया। इन्होंने तप करके शंकरजी

गे दिव्यास्त्र प्राप्त किया पर वह भी महर्षि का पराजित नही कर सका। वे समझ गए, "क्षत्रिय स ब्राह्मण का बल उत्तम होता है।"

कोई कितना ही विद्वान, बुद्धिमान, तपस्वी क्यो न हो, यदि काम, क्रोध, लोभ मे स एक के वश भी हो जाता है, तो उसकी विद्या, बुद्धि, तप का कोई अर्थ नही। य तीनो विकार बुद्धि का मोह म डाल देत हैं और बुद्धिभ्रम मे जीव का सवनाश हो जाता है। विश्वामित्र जसा महान तप कदाचित ही किसी ने किया हो, किन्तु अनक बार काम, क्रोध या लोभ न उनके बडे कष्ट स उपार्जित तप का नाश कर दिया। इन्द्र की भेजी हुई मेनका अप्सरा ने एक बार उन्हे प्रलुब्ध कर दिया। दूसरी बार राजा त्रिशकु वशिष्ठ जी का शाप होने पर भी इनके पास सशरीर स्वग जाने के लिए आया। विश्वामित्रजी ने उसे यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया। उस यज्ञ म दूसर सभी ऋषि आये लेकिन वशिष्ठ जी के पुत्र म स कोई भी नही आया। क्रोध म उन्होन वशिष्ठ के सभी पुत्रो का मार डाला, अपने तपोबल स त्रिशकु को सदेह स्वग भेज दिया और जब देवताओ न उसे नीचे ढकेल दिया, तब मध्य म ही वह रुका रहे यह व्यवस्था विश्वामित्र न अपन तपोबल स कर दी। तपस्या के प्रभाव से वे इतने समथ हो गये कि दूसरी सृष्टि करने लगे। अनेको नवीन प्राणि शरीर जो सृष्टि म नही थ, बनाय। भगवान् ब्रह्मा न उनको ब्राह्मणत्व प्रदान किया और महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मर्षि स्वीकार किया।

काम क्रोध और लोभ के कारण अनेक बार विघ्न पडन स विश्वामित्र जी न इन तीनो विकारो की नाशक शक्ति को पहचान लिया था। उन्होने भगवान का आश्रय लेकर इन तीनो का छोड दिया था। इन्होने वद मन्त्रो की रचना की है। गायत्री मन्त्र जो मन्त्रो म सबस पवित्र माना गया है इन्ही का रचा हुआ है। विश्वामित्र किसी एक व्यक्ति का नाम नही था बल्कि यह उपाधि ही थी। प्राचीन इतिहास मे कई विश्वामित्र प्रसिद्ध हुए है। एक वे थे जो रामचन्द्र जी को राजा दशरथ से माग कर राक्षसो का नाश करवाने के लिए ले गये थे। राम लक्ष्मण को उन्होने युद्ध विद्या सिखाई

थी फिर राजा जनक के पास ले गए थे। वहाँ राम का सीता से विवाह हुआ था।

एक विश्वामित्र वे थे जिनकी पुत्री शकुन्तला थी। शकुन्तला का विवाह राजा दुष्यन्त से हुआ था। उनके पुत्र का नाम भरत था। इन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा ऐसा माना जाता है। एक और विश्वामित्र थे जिन्होंने राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा ली थी। वे बड़े क्रोधी थे। शायद यही विश्वामित्र थे, जिन्होंने राजा त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने की कोशिश की थी। कहा जाता है कि एक बार धर्म उनकी परीक्षा लेने आये। उन्होंने भोजन माँगा और फिर स्नान करने के लिए चल पड़े। विश्वामित्र सौ वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करते रहे और भोजन लिये खड़े रहे तब धर्म प्रसन्न हुए और उन्हें ब्रह्मर्षि का पद दिया। इस तपस्वी के जीवन से प्रेरणा मिलती है कि क्रोध को जीते बिना मनुष्य ऊँचा नहीं उठ सकता। क्रोध को जीतने के लिये घोर तप करना पड़ता है। एक क्षत्रिय राजा ने यहीं घोर तप करके ब्रह्मर्षि का पद पाया था। मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता, लेकिन उसके लिए घोर प्रयत्न की आवश्यकता है। इसलिए वे सप्तर्षियों में स्थान पा सके।

महर्षि अत्रि

प्राचीन युग में आजकल की तरह महाविद्यालय नहीं थे और ऋषि लोग वनों में आश्रम बनाकर रहते थे। ये ऋषि शिक्षा भी देते थे, पढ़ते थे और खोज भी करते थे। इसके अतिरिक्त संसार के लिए रीति रिवाज, विधि विधान भी बनाते थे। राजा लोग उनकी सलाह से शासन का कार्य संचालन करते थे।

एक बार राजा और प्रजा में झगड़ा हो गया, राजा ने कहा कि प्रजा पर मेरा शासन है और प्रजा ने राजा से कहा कि तुम मनमानी नहीं कर सकते, हमारी सलाह लेकर ही राजकाज चला सकते हो। अत्रि ऋषि ने भी प्रजा का समर्थन किया, इसलिये राजा ने उनको बंदीगृह में डाल दिया। उनको तरह तरह की यातनाएँ दी गई। श्री रामचन्द्र जी वनवास गये थे,

तब राम ऋषि के आश्रम में ही ठहरे थे। उनकी पत्नी का नाम अनुसूइया था। दोनों ने ही बड़े स्नेह से राम सीता और लक्ष्मण का स्वागत किया था।

अत्रि केवल शास्त्र विद्या ही नहीं जानते थे अपितु उन्हें विज्ञान से भी बड़ा प्रेम था। कहते हैं पहले उन्होंने ही पता लगाया था कि सूर्य और चन्द्र ग्रहण किस प्रकार होता है। तारों की विद्या में इनकी अपार रुचि थी। इस प्रकार ये महर्षि ज्ञान, विज्ञान, दर्शन आदि के उच्चकोटि के विद्वान थे।

भगवान वेदव्यास

प्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थ भागवत में वर्णन है कि कलियुग में जब शास्त्रीय ज्ञान का लोप हो जावेगा, समाज में पापों का भार बढ़ जावेगा, तब महर्षि कृष्ण द्वैपायन के रूप में भगवान अवतार लेंगे और देश में लुप्त शास्त्रीय ज्ञान को पुनः सुलभ करायेंगे।

महर्षि वेदव्यास का जन्म द्वीप में हुआ था इससे वे द्वैपायन कहलाये। शरीर का वर्ण श्याम था। अतः 'कृष्ण द्वैपायन' कहे जाते हैं। उन्होंने ही वेदों का शास्त्रीय विभाजन किया था। इसी से वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध हुये। व्यासजी प्रकट होते ही माता से अनुमति लेकर वन में तपस्या करने चले गये थे। हिमालय की गोदी में बदरीवन में आश्रम बनाकर तपस्या में रत हो गये। वहीं इन्होंने वेद को चार भागों में बाँटा, जिससे अलग अलग मन्त्र कर्म कराने वालों के लिये मन्त्रों के उपयोग की सुविधा हो गयी। भगवान वेदव्यास ने वेदों के पठन पाठन का अधिकार स्त्रियों, शूद्रों एवं अन्य सभी के लिये घोषित किया। इससे पूर्व यह अधिकार केवल द्विजाति तक ही सीमित था। भगवान व्यास का यह कदम सामाजिक एकता की दृष्टि से बड़ा क्रांतिकारी था। उन्होंने धर्म के सभी अंगों में व्याप्त लाखों आख्यानों का संकलन किया और उनको नितान्त सरल और आकर्षक ढंग से महाभारत में आलेख किया। धर्म और ज्ञान को सर्वसाधारण के लिये उपलब्ध कराने के लिये महाभारत की रचना वेद व्यास का महान् राष्ट्रीय कार्य था। महा

भारत वेदव्याम का अ तर्राष्ट्रीय ग्र थ ह । मगार मे सभी धम म एमा ज्ञान नही है, जो महाभारत मे निहित न हो । वद व्यास ज्ञान के अन त समुद्र माने जाते ह । वे उच्चकोटि के आचाय, विद्वान् और कवि थे ।

वतमान वज्ञानिक युग के किसी भी क्षेत्र मे आज तक जो प्रगति हुई है तथा भविष्य म सम्भावित ह उसकी परिकल्पनायें वदव्यास पहले ही कर चुके थे । वे त्रिकालदर्शी थे । महाविश्व एव ब्रह्माण्ड के बारे म हो रही नवीन खोजो के बारे मे वे पहले ही सकेत कर चुके थे । वे ऐस महापुरुप थ जिनम अन त का ज्ञान और जगत की सस्कृति व्याप्त थी । श्री व्यास सारे ससार के परमगुरु थे । प्राणी मात्र को अज्ञान के अँधेरे से निकालकर ज्ञान के प्रकाश मे लाये और उ ह परमाथ के माग पर अग्रसर किया । उ होने अनादि ज्ञान का सकलन कर पुराणो की पुन रचना की । पुराणो म सकलित ज्ञान मानव मात्र के लिये जीवनोपयोगी है । विश्व के लिये पुराण वेदव्यास की महान् देन है ।

इतना सब कर चुकने पर भी व चिंतित थे । वे अपन किये को मात्र सद्धातिक मानत थे । वे अपन काय को अधूरा मानकर उदास रहते थे । वे एसा व्यवहारिक काम भी कर लना चाहते थे, जिससे प्राणी मात्र धम का आचरण कर, सुगमता से मोक्ष की प्राप्ति कर सके । वदव्यास ने नारद के परामश से श्रीमदभागवत का उपदेश अठारह हजार श्लोको म व्यक्त किया । उ होने बताया कि जीव मात्र का कल्याण इसी मे है कि वह सत्य की खोज और भगवान मे चित्त को लगा दे । उ होन भगवान की विभिन्न लीलाओ को पुराणो मे इस सरस एव सरल ढग से व्यक्त किया है कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनसे लाभ उठा सकें ।

अ त मे यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जगत की सस्कृति ने आज तक ऐसी दिव्य आध्यात्मिक विभूति का उत्पन्न नही किया जिसको भगवान् वेदव्यास की कोटि मे प्रशस्त किया जा सके । उ ह सच्चे अर्थो मे राष्ट्रीय भावात्मक एकता के अग्रदूत और विश्व सस्कृति का आचाय माना जाना चाहिये ।

तीर्थंकर महावीर

मगध साम्राज्य के अधीन विहार प्रदेश के कुण्ड ग्राम म चत्र सुदी तरस क दिन ई० पू० ५९९ म महावीर का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। इनके पिता वशाली गणराज्य के शासक थ। राजपुत्र होत हुए भी महावीर का मन सासारिक बातो एव सुख भोगो म नही लगता था। वे एक ओर शात मीठे और गम्भीर थ तो दूसरी ओर निडर। व हर समय ससार के बारे म चिन्तनरत रहत थ। व ससार को दु खो का घर समझते थे। और प्राणी मात्र को दु खो म छुटकारा दिलान के उपाय सोचा करते थ। इसकी खोज क लिय उन्होन बारह वष तक निजन वन म रहकर तपस्या की। एक दिन उनको अचानक एक अन्तज्योति का आभास हुआ। उस दिन महावीर ऋजुकूला नाम की नदी के तट पर स्थित जृम्भक गाँव म थे जो आजकल जुमई क्षेत्र कहलाता है। महावीर का यह आभास कवल्य' की प्राप्ति कहलाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद उन्हान अपना पहला उपदेश राजगृह तथा पावापुर म मगध की जनता को दिया।

बौद्ध ग्रन्थ भी महावीर को सवदर्शी सवज्ञ और सब क्लशो के मुक्त (निग्र थ) मानत ह। धमतीथ का प्रवतन करन के कारण वे तीथकर कहलाय। उन्होन अपने जीवन काल मे दो महान् काय किय। उनका पहला काम स्वतन्त्रता समानता और भाईचारे पर आधारित था। उन्हान मानव मे भ्रातृत्व की भावना भर कर देश म एक एसे आध्यात्मिक गणराज्य की स्थापना की जिसकी सीमा परिधि मे विश्व क प्राणी मात्र आ गये। दूसरा उनका महान् काय जीवन क परमपुरुषाथ की प्राप्ति अथात् मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना था। इन दो महान् कार्यो का प्रयोग करने के लिय उन्होने जन श्रमण सघ प्रतिष्ठित किये, जिनम साधु साध्विया और सद्गृहस्थ पति पत्नी कठोर जीवन की साधना करते थे। श्रमण सघो म किसी के साथ कोई भेद भाव नाम मात्र भी न था। वे अहिंसा को परम शस्त्र मानत थ और कहते थ कि ससार मे एक स एक बढकर शस्त्र है किन्तु अशस्त्र (अहिंसा) स बढ

पर न कोई शस्त्र है, न होगा। उन्होंने आचार के पांच व्रतों का उपदेश दिया, जिसमें अहिंसा को प्रमुख कहा। उनका कथन है कि जिसे तुम मारना चाहते हो वह भी तुम्हारे जैसा ही सुख दुख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जिस पर शासन करना और दास बनाना चाहते हो, वह भी तुम्हारे जैसा ही प्राणी है। उन्होंने संयम को सच्चा जीवन माना। वे मानते थे कि केवल ज्ञान के द्वारा ही सुख तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है।

महात्मा बुद्ध

संसार को अहिंसा और जीव दया का उपदेश देने वाले महावीर स्वामी के बाद महात्मा बुद्ध दूसरे महापुरुष थे। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। पिता शुद्धोधन कपिलवस्तु के राजा थे। माता का नाम मायादेवी था। माया देवी के गर्भ से नेपाल के लुम्बिनी नामक स्थान में सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्म से सातवें दिन माता मायादेवी संसार से चल बसी। शिशु सिद्धार्थ का पालन विमाता गौमती देवी ने किया।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कथन के अनुसार सिद्धार्थ में महानता के लक्षण बचपन से ही प्रकट होने लगे थे। एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि सिद्धार्थ या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा या एक महान् आध्यात्मिक विभूति। ज्योतिषी की वाणी का दूसरा विकल्प सत्य सिद्ध हुआ। वे संसार से विरक्त महान योगी बने। सिद्धार्थ के पिता शुद्धोधन उन्हें सम्राट बनाने के अभिलाषी थे। उन्होंने राजकुमार को संसार के दुर्लभ लुभावने आमोद प्रमोद प्रसाधनों के बीच विशेष सज्जित महल में रखा। परम सुन्दरी यशोधरा (गोपा) से विवाह भी कर दिया। यशोधरा ने एक पुत्ररत्न को भी जन्म दिया। इसका नाम राहुल था।

इतना सब होते हुए भी सिद्धार्थ की सांसारिक सुखों के प्रति उदासीनता निरन्तर बढ़ती चली जा रही थी। एक घटना ने उनको घर छोड़ने के लिये विवश कर दिया। कहा जाता है कि पिता की अनुमति पाकर वे नगर भ्रमण के लिये निकले। भ्रमणकाल में उन्होंने एक रोगी एक जर्जरित वृद्ध और एक शव को देखा। एक न एक दिन सभी को इन

अवस्थाओं में गुजरना ही होगा—इस विचार से सिद्धार्थ को संसार दुःखों का भरा सागर सा दृष्टिगत होने लगा। उनकी आत्मा प्राणी मात्र को संसार के दुःखों से छुटकारा दिलाने के लिये छटपटाने लगी। एक दिन मध्यरात्रि में राजकुमार सिद्धार्थ सर्वस्व छोड़कर महल से निकल पड़े।

लगातार कई वर्षों तक साधना में रत रहे। अनेक आश्रमों में गये। भूख और प्यास से फूलसा शरीर सुखा कर काँटे सा बना दिया। एक दिन उन्होंने समझा कि आगे शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है। उस दिन गौतम बोधिवृक्ष के नीचे आसन लगाये बैठे थे कि सुजाता ने उनके सामने पायस का पात्र रक्खा। उसे ग्रहण कर गौतम को एक अपूर्व 'बोध' हुआ। उसी दिन से गौतम 'गौतम बुद्ध' हो गये। उन्हें संसार को दुःखों से छुटकारा दिलाने का उपाय मिल गया। वह उपाय था निर्वाण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। महात्मा बुद्ध ने ज्ञान के तत्त्व का उपदेश देना आरम्भ किया उनके ज्ञान तत्त्व को चार आर्य सत्य कहा जाता है। वे चार सत्य ये हैं—

(१) संसार का सब कुछ क्षणभंगुर है और दुःख रूप है।

(२) संसार के क्षणभंगुर इन पदार्थों की तृष्णा ही दुःखों का कारण है।

(३) तृष्णा के साथ साथ उन क्षणिक पदार्थों के नाश होने पर ही दुःखों का नाश होता है।

(४) हृदय से अहंभाव और राग द्वेष की निवृत्ति होने पर निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। निर्वाण की प्राप्ति ही दुःखों से छुटकारे का एक मात्र साधन है।

महात्मा बुद्ध ने निर्वाण की प्राप्ति के लिये अष्टांग मार्ग को साधन बताया। वे आठ मार्ग हैं—(१) सत्य पर विश्वास (२) वाणी में नम्रता (३) उच्च लक्ष्य (४) सदाचरण, (५) सद्वृत्ति, (६) सद्गुणों में स्थिति, (७) बुद्धि का सदुपयोग, (८) सद्ज्ञान।

महात्मा बुद्ध ने मानव मात्र के कल्याण के लिये अनवरत पैंतालीस वर्षों तक धर्म प्रचार किया। अस्सी वर्ष की अवस्था में ई० सन् ५३५ वर्ष

]

पूर्व गोरखपुर के निकट कुशीनगर म भगवान बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया। उनके शरीर की भस्म के लिय सम्पूर्ण भारत से प्रबल माँग उठ खडी हुई। अन्त मे इस भस्मी को आठ भागो मे विभाजित कर देश के आठ स्थानो मे स्थापित किया गया और उस पर स्मारक बनवाय गय। आगे जाकर बौद्ध धम देश का राजधम बन गया। अशाक प्रभृति सम्राटा ने देश के बाहर विदेशो म भी बुद्ध के उपदेशा का प्रचार कराया। धीरे धीरे बुद्ध का सन्देश लका (सिंहल) यवद्वीप (जावा) सुवर्णद्वीप, (सुमात्रा) चीन और जापान तक पहुँच गया। आज भी इन दशो म भारत की यह आध्यात्मिक धराहर मूर्तिया एव ग्रन्थो के रूप मे विद्यमान है।

जगद्गुरु भगवान शकराचार्य

आठवी सदी के प्रारम्भ म गौरवशाली भारत पतनो मुख हाता जा रहा था। देशी व विदेशी लुटेरे तथा मक्टो अम सम्प्रदाय मानव जाति पर अत्याचार करन लग गय थ। देश म विघटन की प्रवृत्तिया का बोलबाला था तथा दश मकट की स्थिति म था। देश का एक सूत्र म पिराने की अत्याधिक आवश्यकता थी। एसे समय म केरल म बालक शकर का जन्म हुआ, जिसने भारतीय सस्कृति का एकता के सूत्र म बाधने का दुष्कर काय किया। इनका जन्म केरल प्रदेश के पर्णा नदी के तटवर्ती कलादी नामक ग्राम म हुआ था। य माता का आदेश पाकर आठ वष का उम्र म ही घर स निकल पडे और अल्पकाल म ही बडे यागी महात्मा सिद्ध हा गय।

वे वेदान्त के श्रेष्ठ विद्वान गाविन्द भगवत्पाद के पास बदरीनाथ की ओर बढ रहे थे। रास्ते मे मसूर के वनो स गुजरत समय भीषण तापहरी की गर्मी से त्राण पान हतु एक तालाब के किनारे ठहरे। उस समय एक छाटा सा मढक तालाब स बाहर आया ही था कि एक काला साँप फन फलाकर उस छोटे से मढक का ढककर बठ गया। शकर यह दृश्य अवलोकन कर रह थे। साँप न मढक का भोज्य हाने पर भी [illegible] यह घटना पास ही बठे एक तपस्वी को सुनाई। [illegible] क्या है? यह स्थान श्रृगी ऋषि का आश्रम है, इसलिये यहा के प्राणी

स्वीकार कर त्याग पर नियंत्रण करते हैं। तपस्वी की बात से निराकार शंकर के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि भूमि की प्रतिष्ठा से हिन्दू प्राणियों में एकता की भावना इस देश का जन सामान्य कर सकता है तो स्वयं जाति की एकता, भूमि की प्रतिष्ठा के द्वारा क्या नहीं स्थापित की जाती। इस समय हिमालय से निःसृत जल का गमन उतरा शंकर की आँखों में साक्षात घूम गया।

भारत की भूमि पर एकता की भावना जगाकर और मतमतान्तरों का एक समन्वयात्मक रूप स्थापित करने का कार्य शंकर ने शुरू कर दिया। इसी कारण उन्होंने भारत का पदल भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। इसी समय वे अपने लिये पहले से ही धार्मिक पृष्ठभूमि तैयार करने वाले महापण्डित कुमारिल से मिलने के लिए प्रयाग की ओर चल पड़े। जिस समय शंकर दुर्गम पथ पार करते हुए प्रयाग पहुँचे, कुमारिल त्रिवेणी संगम पर तुषानल में आधे जल चुके थे। शंकर की आँखों में आँसुओं की झड़ी लग गई, शंकर ने आचार्य कुमारिल के सामने बढ़ते हुए उनसे इच्छा मृत्यु का कारण पूछा। कुमारिल ने कहा 'मानसिक रूप से पूर्ण निर्दोष रहकर भी, बौद्धगुरु के निरादर व ईश्वर के खण्डन के दोष के कारण जल रहा हूँ। मैंने ऐसा लोगों में पुरुषार्थ पर भरोसा रखने और देश में एक ही दर्शन की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से किया है। अब शंकर! तुम इस काम को आगे बढ़ाना। मेरा शिष्य मण्डन मिश्र तुम्हारी सहायता करेगा।' शंकर उस विद्वान् के चिताग्नि को प्रणाम कर देश की एकता को संगठित करने के लिये आगे बढ़ गये।

शंकर ने देश के चारों कोनों पर मठ स्थापित कर अपने प्रतिनिधियों को 'महानुशासन' का उपदेश देकर उनमें प्रतिष्ठित कर दिया। उत्तर में बदरीनाथ में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में रामेश्वर में शृंगेरी मठ, पश्चिम में द्वारिका में शारदा मठ तथा पूर्व में जगन्नाथपुरी का गोवर्धनमठ आचार्य की प्रतिभा के साकार स्तम्भ हैं। कहते हैं कि एक दिन भगवान विश्वनाथ ने इनको एक चाण्डाल के रूप में दर्शन दिये और इनके पहिचानने और प्रणाम करने पर *ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने और धर्म प्रचार करने का आदेश दिया*

था। तीर्थों की पुन प्रतिष्ठा के अतिरिक्त शकर ने उपनिषद के ब्रह्मवाद (अद्वतवाद) के नवीनीकरण से सारे देश को एक ही दर्शन दिया और उसी पर आधारित आचार संहिता भी दी। आचार्य ने अनेको मंदिर बनवाये तथा कुमार्ग का खण्डन करके धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया। इस प्रकार एक बार फिर से बिखरे हुए सूत्रों को एकत्र करके देश को एक सूत्र में बाँध दिया।

उदेरोलाल (सिन्ध के वरुण देवता)

आजादी से पूर्व सिंध भारत का सीमा प्रदेश होने से यहाँ प्राय विदेशी आक्रमण होते रहते थे। दसवीं सदी में यहां साम्प्रदायिकता बढ चली थी। ठटा नगर का नवाब हिन्दू परिवारों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने पर तुला था। आवागमन के साधन न होने से लोग नदियों में नावों से आते जाते थे। इससे जल देवता पर उनकी श्रद्धा थी। अत्याचारों की इस बेला में यह स्वाभाविक था कि संगठित होकर अत्याचार से लोहा लिया जाय। इस समय नसरपुर रियासत के राजा रावल थे। सभी संगठित राजाओं ने रावलसिंह के वीर पुत्र उदयचन्द्र को सेनापति बनाया। इधर अत्याचारों से पीडित जनता धर्म और प्राणों की रक्षा हेतु वरुणदेव की आराधना करने लगी। उदयचन्द्र ने अत्याचारी ठटा नगर के नवाब को युद्ध के लिए ललकारा। नवाब घबरा कर संधि के लिये तयार हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में कभी हिन्दू जनता पर अत्याचार नही करेगा। नवाब उदयचन्द्र के मुख मण्डल की कांति देखकर उनके चरणों में गिर गया। वह उन्हे पीर मानने लगा। इसका प्रभाव मुस्लिम जनता पर भी पडा। इस प्रकार उदयचन्द्र हिन्दू मुसलमान दोनों की एकता के प्रतीक बन गये। आगे चलकर उदेरोलाल कहलाये। जल में समाधि लेने के कारण उन्हे वरुण देवता कहा जाता है।

गुरु नानक

भारत की संत परम्परा में गुरुनानक का स्थान बहुत ऊँचा है। वे सिक्ख सम्प्रदाय के प्रथम गुरु थे। आध्यात्मिक दृष्टि से गुरुनानक ऐसे

महापुरुष हुए हैं जिनका आदर भारत के सभी धर्मों के द्वारा किया जाता है।

गुरु नानक का जन्म सन् १४६६ ई० म पजाब के तलवडी नामक ग्राम म हुआ था। यह ग्राम अब पाकिस्तान म स्थित है और ननकाना साहब कहलाता है। आपके पिता का नाम कालू एव माता का नाम तृप्ता था। बचपन स ही इनके मुख मण्डल पर एक ईश्वरीय ज्योति के दशन होते थे। उन्होंने ऊँच नीच और जाति पाँति के भेदभाव को मिटाकर सबको यह अनुभव कराया कि सभी ईश्वर की सन्तान हैं और ईश्वर की दृष्टि म सब समान हैं।

गुरुनानक वदिक एकेश्वरवाद क समथक थे। उनके शिष्य हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। गुरु नानक न जीवन भर बडे ही सरल और स्वाभाविक ढग स जनता को उपदेशों के द्वारा सन्माग पर लाने का प्रयत्न किया।

नानक उदार दृष्टिकोण क व्यक्ति थ। गुरु स अधिक गुरुपद की महत्ता को उन्होंने स्थापित करने की अपने अनुयायियों को प्रेरणा दी। सिक्ख मत की स्थापना कर हिन्दू धम को सुरक्षा एव अभय प्रदान किया। व देश की एकता के साधक थ साथ ही देश की सस्कृति और दशन की रक्षा करने वाले धम गुरु भी थ। व ससार को दुखों का अपार समुद्र मानत थ। इन दुखों स प्राणियों का छुटकारा दिलान क लिये गुरुनानक युग की आवश्यकता बनकर ससार म प्रकट हुय थ। उन्होंने स्वय कहा है—

"सुरति शब्द भवसागर तरिय
नानक नाम बखाए।"

समर्थगुरु रामदास

राष्ट्र पुरुष शिवाजी के गुरु एव मागदशक के रूप म समथगुरू रामदास का नाम भला कौन नहीं जानता। महाराष्ट्र के सूर्याजी पन्त और

उनकी धर्मपत्नी रेणुका देवी धर्म प्राण दम्पत्ति थे। इनके दो पुत्ररत्न पैदा हुए। प्रथम पुत्र का नाम गंगाधर था जो कि नौ वर्ष की अवस्था में ही महान् हनुमान भक्त की श्रेणी में आ गये थे। वे आगे जाकर 'रामी रामदास' के नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरे पुत्र का नाम नारायण था। वे बचपन से ही राम के परमभक्त थे। ऐसी मान्यता है कि उन्हें आठ वर्ष की अवस्था में ही भगवान् राम के दर्शन हो गये थे। श्रीराम ने ही उनको स्वयं रामभक्ति की दीक्षा दी और इनका नाम रामदास रखा। इन्होंने अनेक कठिन और चमत्कार पूर्ण कार्य किये। असम्भव कार्यों को भी अपनी अद्भुत शक्ति से सफल बनाने की सामर्थ्य के कारण वे समर्थ रामदास कहे जाने लगे।

महाराष्ट्र में विवाह के समय 'सावधान' शब्द कहने की प्रथा है। रामदास के विवाह के समय ब्राह्मण ने ज्यों ही 'सावधान' शब्द कहा रामदास इसे सुनते ही सावधान हो गये और बारह वर्ष की अवस्था में विवाह मण्डप छोड़कर भाग गये। इसके बाद बारह वर्ष तक उनका कहीं भी पता न चला। वे पैदल पंचवटी चले गये। गोदावरी और नन्दिनी नदियों के संगम पर टाकली नामक स्थान में एक गुफा के भीतर आसन लगा बारह वर्षों तक तपस्या करते रहे।

तपस्या करने के बाद उन्होंने तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की। बद्रीनाथ से रामेश्वर और द्वारिका से जगन्नाथपुरी और गंगासागर के बीच अनेक तीर्थों की यात्रा की। जहां भी गये, मठों की स्थापना की। ग्यारह स्थानों में उन्होंने मारुति प्रतिष्ठा की।

बारह वर्षों तक तीर्थ यात्रा करने के बाद उन्होंने गोदावरी की परिक्रमा प्रारम्भ की। बीच में ही अपनी माता के पुत्र वियोग के कष्टों को सुनकर चौबीस वर्षों बाद अपनी माता से आकर मिले। अपनी माता से ही आज्ञा पाकर पुनः गोदावरी की परिक्रमा पूरी की। इसके बाद माहुली में रहने लगे। यहाँ गुरु रामदास से मिलने भारत के महान् सन्त, महात्मा, योगी और फकीर आते थे। सन्त श्री तुकाराम भी यहां गुरु समर्थ से मिले थे। उस समय देश को एकता के सूत्र में बांधने वाले पांच महापुरुष 'दास

पचायतन यह जात थ गुरु समथ उनम एक थ। शेष चार के नाम हैं जय राम स्वामी रगनाथ स्वामी ग्रान द स्वामी ग्रौर कशव स्वामी।

माहुली म स्वामी रामदास चाफल के निकट रहन लग। यहीं शिवाजी न उनक दशन किय ग्रौर उनका ग्रपना गुरु मान लिया। चाफल स ग्राकर गुरु समथ परली नामक स्थान पर रहने लगे जो ग्राजकल सज्जनगढ कहलाता ह। यहीं शिवाजी उनके दशनो को बार बार ग्राया करत थे। एक बार स्वामी समथ पदल सतारे के राजद्वार पर पहुँच गय। शिवाजी न उसी समय एक पत्र पर यह लिखकर गुरु की झोली म डाल दिया— 'ग्राज तक मन जो कुछ ग्रजित किया ह सब स्वामी के चरणो म ग्रपित है।' इसक दूसरे ही दिन स शिवाजी सचमुच झोली लकर गुरु क पीछ मांगन चल पड। उस समय समय गुरु ने शिवाजी स कहा   शिवा! साधु इस कागज का क्या करेगा? तू शासन कर, पीडितो की रक्षा कर राज्य तून मुझे द दिया ग्रब मेरी ग्रोर स तू इसका सचालन कर। गुरु क इस ग्रादश का पाकर शिवाजी न महा राष्ट्र का राष्ट्र ध्वज गरिक घोषित किया ग्रौर राज्य मुद्रा म गुरु समथ का प्रतीक ग्रकित हुग्रा।

सम्वत् १७३८ की माघ कृष्णा नवमी को गुरु समथ न ग्रपनी सम्पूण मण्डली को कुछ महत्वपूण बात समझायी। इसके बाद राम की मूर्ति क सामन ग्रासन लगाया। इक्कीस बार हर का उच्चारण करन के बाद ज्योंही बाईसवी बारी म राम शब्द मुख स उच्चारित किया, उनक मुख स एक ग्रपूव ज्योति निकली ग्रौर व भगवान म लीन हो गय।

श्री समय क जीवन म ग्रनक चमत्कार हुए। उ होन ग्रनक ग्र था की भी रचना की। इनम दासबोध' प्रमुख है। उ होन देश की एकता क लिय सम्पूण देश म मठ स्थापित किय। गुरु समय की सगठन शक्ति ग्रपूव थी। वह देश की एक महान् ग्राध्यात्मिक प्रतिभा थी। वे सदा सासारिक बातो म निलिप्त रह ग्रौर सदा देश की ग्रखण्डता ग्रौर एकता के लिय चितन रत थी। व ग्रत्याचार ग्रौर ग्र याय क घोर विरोधी थे। उनका उद्देश्य सम्पूण देश म भाई चारे की स्वस्थ परम्परा स्थापित करना रहा।

ऋषि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द का नाम भला कौन नही जानता। वे वदिक सत्य की ज्योति मान जाते है। भारत म १८५७ की क्रान्ति क असफल हो जान के बाद देश की दशा शोचनीय हो गयी थी। उन्होंने निरन्तर २० वर्षो तक राष्ट्र की सस्कृति की रक्षा एव उद्धार के लिये अनवरत प्रयत्न किया। सबसे पहले उन्होने ही स्वराज्य शब्द का उद्घोष किया था। सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था, स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषो म से थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निमाण किया। जन जन के कल्याण और देश की उन्नति के लिये उन्होंने समाधि और ब्रह्मानन्द को छोडकर जजरित देश के नवनिमाण का काम अपने हाथ म लिया था। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने भारतीय सस्कृति के उद्धार और देश की एकता के लिये हिन्दी को अपनाया। उन दिनो हिन्दी व सस्कृत मृत भाषाएँ मानी जाने लगी थी। महर्षि ने उन्हे वदिक सजीवनी देकर नवजीवन दिया।

जब स्वामी दयानन्द देश भ्रमण के लिये निकले तो उन्हे जगह जगह कुरीतियो, कुप्रथाओ और अन्ध विश्वासो मे लोहा लेना पडा। वे कहते थे कि रूढिया और अन्ध विश्वासो म फँसकर हम अपना ही सवस्व नाश कर रह हैं। उन्होंने एक भाषण मे कहा था—'मेरा उद्देश्य सबको आपस मे इस तरह मिलाना है जसे जुडे हुये हाथ। भ काल से लेकर ब्राह्मण तक मे राष्ट्रीयता की ज्योति जगाना चाहता हूँ। मेरा खण्डन सवहित और सुधार के लिये है।"

वे स्त्रियो एव शूद्रो के मसीहा थे। शिक्षा क्षेत्र मे उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का समथन किया। उन्होने विधान किया कि बालक २५ वष तक और कन्या १६ वष तक गुरुकुल मे रहकर शिक्षा प्राप्त करे। व वेद-वेदागो की शिक्षा के साथ साथ राज विद्या शिल्प गणित ज्योतिष, भूगोल, चिकित्सा आदि व्यावहारिक एव वज्ञानिक विषयो क अध्ययन पर बल देते थ।

ऋषि ने एक बार अपने अन्तर की तीव्र इच्छा को इन शब्दो म प्रगट किया था 'मैं सब सत्य का प्रसार कर सबको ऐक्य मत से द्वेष छुडा, आपस

म दृढ प्रीति युक्त राग के गजने गवा। गुरु नाम पट्टावा रे लिय मरा प्रयत्न और अभिप्राय है। कवि र य ॥ पूर्ण है जिनके द्वारा वे ममार म शाति, प्रेम और विश्व बन्धुत्व की भावना भरना चाहत थ—

(१) सवत्र सत्य का प्रमार होना चाहिय। (२) मनुष्य मात्र की विचारधारा एक होनी चाहिय। (३) किमी भी मनुष्य को किसी स द्वेप नहीं करना चाहिये। (४) सभी को आपस म अत्यन्त प्रेम स रहना चाहिय। (५) सभी मनुष्य के सुख के लिय प्रयत्नशील रह।

ये चाहत थे कि सवत्र सत्य का प्रसार हो। द्वेष भावना का त्याग कर सभी पारस्परिक प्रेम भावना से जीवन जीएँ। व सचमुच महान आध्यात्मिक प्रतिभा सम्पन्न महर्षि थे।

स्वामी रामकृष्ण परमहस

बगाल प्रात के हुगली जिले मे एक छोटा सा गाँव 'कामारपुर' है। इसी गाँव म १८ फरवरी सन् १८३६ का एक बालक गदाधर का जन्म हुआ। यही बालक आगे जाकर भारत की दिव्य आध्यात्मिक विभूति स्वामी रामकृष्ण परमहस के रूप म प्रसिद्ध हुए।

गदाधर के पिता का नाम खुदीराम चट्टोपाध्याय था। वे जाति से ब्राह्मण थे। घर म गरीबी थी किन्तु ईश्वर के प्रति अगाध निष्ठा थी। पिता का जीवन नितान्त सादा था। सादगी का प्रभाव पुत्र पर भी पडा। धम के प्रति निष्ठा भी उन्ह अपन पिता स ही मिली। उनके पिता का स्वगवास उस समय हुआ जबकि उनकी अवस्था मात्र सात वप ही थी। पिता की मृत्यु के बाद दस वप का कठिन जीवन बिताने के बाद व अपन बडे भाई के बुलान पर कलकत्ता चले गये। उस समय गदाधर की अवस्था सत्तरह वप की थी। कुछ समय के बाद गदाधर भाई क स्थान पर रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मदिर के पुजारी नियुक्त हो गये। पूजा म उन्होने अपन आपको मा काली के चरणा म अर्पित कर दिया। मा काली के भाव म इतन तन्मय रहन लगे कि सामान्य लोग इनका पागल पुजारी समझन लग थ। वे घण्टो

माँ भगवती की आराधना में बैठे रहते और भगवती के दर्शनों के लिए तड़पते रहते थे। भला माँ अपने पुत्र की पुकार कैसे न सुनती। एक दिन अर्द्ध रात्रि को जगदम्बा ने गदाधर को प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिये और उसी दिन से गदाधर रामकृष्ण परमहंस के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

गदाधर का विवाह बचपन में ही हो गया था। बंगालियों में बाल-विवाह की प्रथा आज भी है। अतः इनका बाल विवाह भी स्वाभाविक था। जिस समय इनकी पत्नी घर में आई, उस समय वे वीतराग परमहंस बन चुके थे। वे अपनी पत्नी को भी जगदम्बा का ही रूप समझने लगे। अब स्वामी रामकृष्ण का वैराग्य निरन्तर बढ़ता जा रहा था। उस समय उन्हें ऐसा मार्गदर्शन आवश्यक था जो इनको सच्चे आध्यात्म की शिक्षा देकर दीक्षित करता। एक संध्या को अचानक एक वृद्धा संन्यासिनी ने स्वयं आकर परमहंस को पुत्र के समान स्नेह दिया और अनेक तान्त्रिक साधनाओं में पारंगत कराया। आगे जाकर तोतापुरी नाम के एक वेदान्ती महात्मा से साधना प्राप्त की। इस प्रकार अनेक साधनाओं और सिद्धियों से अपने जीवन को पूर्ण पाकर भी वे सम्पूर्ण मानव समाज में त्याग, वैराग्य और पराशक्ति के अमृततुल्य उपदेश देकर मानव मात्र का कल्याण चाहते थे। स्वामी जी के व्यक्तित्व में महान आकर्षण था। उनके दर्शन और उपदेश सुनकर नास्तिक लोग परम आस्तिक बन जाते थे। तर्कशील व्यक्ति उनके सामने श्रद्धा से नत हो जाते थे। इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि उन्होंने नरेन्द्र (विवेकानन्द) जैसे नास्तिक व्यक्तित्व को देश ही नहीं अपितु विश्व की आध्यात्मिक विभूति विवेकानन्द के रूप में बदल दिया।

स्वामी रामकृष्ण के जीवन का अधिकांश भाग भगवती की आराधना और समाधि अवस्थाओं में बीता। अंतिम तीस वर्षों में उन्होंने एकता और ज्ञान के प्रसार हेतु तीर्थों की यात्राएँ कीं। भारत में वे जहाँ भी गये वहाँ अपनी सरल और अमृतमयी वाणी से उपदेश दिये। उनके उपदेशों में लोक सुधार की भावना थी। वे सम्पूर्ण देश को आध्यात्मिक एकता के ऐसे सूत्र में बाँधना चाहते थे जो राष्ट्रीय भावात्मक एकता का एक शाश्वत बंधन

हो। वे ऐसे प्रकाश पुंज थे जिन्होंने देश को आध्यात्मिक प्रकाश से प्रकाशित किया।

स्वदेश की यह दिव्य ज्योति १५ अगस्त १८८६ को ईश्वरी महान ज्योति में विलीन हो गयी। महात्मा गांधी के शब्दों में—"स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जीवन धर्म को व्यवहार क्षेत्र में उतारकर उसे प्रतिमूर्त करने के अविरल प्रयत्नों की अमर गाथा है।"

स्वामी विवेकानन्द

पुत्र पर पिता और घर के संस्कारों का प्रभाव स्वाभाविक होता है। स्वामीजी का बाल्य जीवन इसका अपवाद है। श्री विश्वनाथ दत्त का घराना पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा था। उनके घर में १२ जनवरी सन् १८६३ को पुत्ररत्न नरेन्द्रदत्त ने जन्म लिया। नरेन्द्रदत्त ही आगे जाकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। इन्होंने पश्चिमी संसार को भारतीय तत्त्व ज्ञान का सन्देश सुनाकर चकित कर दिया।

नरेन्द्रदत्त में बचपन से ही आध्यात्मिक प्रतिभा जाग उठी थी। अभी इनकी उम्र २१ वर्ष भी न हो पायी कि इनके पिता का देहान्त हो गया और परिवार के भरण पोषण का भार इन पर पड़ा। कौटुम्बिक भार को वहन करते रहे। फलतः इनका विवाह नहीं हो सका था। उन पर सदा आर्थिक संकट के बादल मंडराते रहे। इस आर्थिक संकट की अवस्था में वे स्वयं भूखे रहकर भी अतिथियों का सत्कार करना अपने जीवन का प्रमुख कर्तव्य समझते थे।

नरेन्द्रदत्त बचपन से ही प्रतिभाशाली रहे। इस अवस्था में ही दर्शन शास्त्र का अध्ययन करते हुये वे इसकी व्याख्या अधिकार पूर्वक करने लगे थे। वे ज्यों ज्यों दर्शनशास्त्र के अध्ययन में गहरे घुसते थे, उनकी जिज्ञासा त्यों त्यों अधिक बढ़ती जाती थी। किन्तु अपने तर्कों का उचित समाधान न पाकर वे धीरे धीरे नास्तिक बनते जा रहे थे।

ऐसी अवस्था में नरेन्द्र को स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दर्शन हुये। जिस तरह एक सच्चा जौहरी उत्तम रत्न को पाकर प्रसन्न होता है उसी तरह

स्वामी रामकृष्ण न नरेन्द्र को नररत्न के रूप म पाया। स्वामी रामकृष्ण ने नरेन्द्र का ज्यांही स्पर्श किया उनका सारा जीवन बदल गया। गुरु ने नरेन्द्र को आत्म दर्शन कराया। अब नरेन्द्र एक ऐसे प्रकाश पुंज हो चले थे, जो ससार के अधकार म भटकते हुये प्राणियो को ज्ञान के प्रकाश म ला सकते थे। पच्चीस वर्ष की अवस्था म नरेन्द्रदत्त न काषाय वस्त्र पहिन लिये और अब वे स्वामी विवेकानन्द हो गए। उन्होने सम्पूर्ण भारत का पैदल भ्रमण किया। सन् १८९३ मे विवेकानन्द शिकागो की विश्व धर्म परिषद म भारत के प्रतिनिधि बनकर गये। उस समय भारत पराधीन था। एक पराधीन देश का प्रतिनिधि शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन म पहुँचे, यह कई उपनिवेशवादी देशो को अच्छा न लगा। परिषद म इनको प्रवेश मिलना भी कठिन हो गया। यूरोपीय देशो को भारत के नाम से ही घृणा थी। उन्होने ऐसा भी प्रयत्न किया कि भारत के प्रतिनिधि को परिषद मे बोलने का समय ही न मिल सके। अन्त म एक अमेरिकी प्रोफेसर के प्रयत्नो से स्वामी विवेकानन्द को किसी प्रकार समय मिल गया। ११ सितम्बर सन् १८९३ को उन्होने अलौकिक तत्वज्ञान से समस्त पाश्चात्य जगत को चौंका दिया। अमेरिका ने स्पष्टत यह स्वीकार किया कि आध्यात्मिक क्षेत्र म भारत ही सदा से जगद्गुरु था और रहेगा। स्वामी विवेकानन्द ही ऐसे महान् सन्त थे जिन्होने भारत एव उसके धर्म के गौरव को प्रथम बार विदेशो म जाग्रत किया।

स्वामी विवेकानन्द का कहना था भारतीय धर्म, दर्शन और आध्यात्म विद्या के बिना ससार एक अनाथ के समान हो जावेगा। उन्होने अमेरिका म भी रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखायें स्थापित की। अनेको अमेरिकावासी उनके प्रगाढ शिष्य बन गये। विवेकानन्द तत्वज्ञानी सत होने के साथ भारतीय स्वतन्त्रता के सच्चे प्रेरक भी थे। उनका कथन था—"मै कोई तत्ववेत्ता सत नही हूँ, न म महात्मा ही हूँ और न दार्शनिक ही। मै तो गरीब हूँ और गरीबो का अनन्य भक्त हूँ। मै तो सच्चा महात्मा उसी को मानता हूँ जिसके हृदय म गरीबो के प्रति तडपन हो।"

इस महान विभूति न ४ जुलाई सन् १९०२ को अपना पार्थिव शरीर छोड दिया। आज भी भारतीय चाहे वह किसी भी प्रदेश जाति व धर्म का हो उसके हृदय म स्वामी का नाम अमर है।

भारत के ध्रुव दक्षिण में विवेकानन्द शिला पर सम्पूर्ण भारत के सहयोग से जो विवेकानन्द स्मारक की स्थापना की गई है, वह स्वामी जी के प्रति समस्त भारतीय जनता की सच्ची श्रद्धांजलि है। स्वामी विवेकानन्द को हम राष्ट्रीय भावात्मक एकता के प्रतीक एवं विश्व बन्धुत्व की प्रतिमूर्ति के रूप में सदा स्मरण करते रहेंगे।

योगीराज अरविन्द

श्री अरविन्द का जीवन एक सहस्र धारा नदी के समान है। धार्मिक, राजनीति, धर्म प्रभृति की अनेक धाराओं में बहने वाली उनकी जीवन गाथा को लेखनी की परिसीमा में बाँध सकना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त १८७२ को कलकत्ते में हुआ। पिता सिविल सर्जन थे। वे पाश्चात्य सभ्यता के परम भक्त थे। अपनी सन्तानों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की छाया से भी बचा कर वे उन्हें अंग्रेजी सभ्यता के रंग में रंगा देखना चाहते थे।

पिता ने श्री अरविन्द को सात वर्ष की अवस्था में ही शिक्षा के लिये विलायत भेज दिया। इक्कीस वर्ष की आयु तक श्री अरविन्द ने विलायत के वातावरण में शिक्षा पायी। वहाँ रहकर वे विदेशी भाषा धारा प्रवाह बोलने लगे। विलायत में रहकर उनमें स्वदेश की स्वतन्त्रता के प्रति चेतना जाग्रत हुई। वे पिता की आकांक्षा के अनुसार आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण कर भारत के विदेशी शासकों के हाथों में खेलना नहीं चाहते थे। उन्होंने पिता को सन्तुष्ट करने के लिये आई० सी० एस० की परीक्षा दी और सभी विषयों में अच्छा स्थान पाया, किन्तु स्वेच्छा से घुड़सवारी परीक्षा की उपेक्षा कर दी फलतः यह परीक्षा पूर्ण न हो सकी। यह उनके देश प्रेम और त्याग का अनुपम उदाहरण है।

स्वदेश लौटने पर ज्यों ही अरविन्द ने बम्बई बंदरगाह में भारतभूमि

पर अपना पैर रखा उन्हें एक अलौकिक शांति का अनुभव हुआ। इस शांति की अनुभूति से उनकी जीवन धारा ने भी एक अपूर्व मोड़ लिया। वे परतन्त्र देश की दशा देख दुखित एवं व्यथित थे। स्वतन्त्रता की कामना लेकर वे पहले राजनीति में कूद पड़े। उनके राजनैतिक जीवन को पूर्व भारत में नवीन युग का शुभारम्भ कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये अनेक उल्लेखनीय कार्य किये। वे अनेक बार जेल गये। राजनैतिक जीवन में कार्यकलापों में फँसकर जब वे भगवान से कुछ दूर होने लगे तो अलीपुर जेल की निर्जन काल कोठरी में उनको एक ईश्वरीय आदेश की स्मृति हो आई जो उन्हें एक मास पूर्व मिला था। अरविन्द को ऐसा बोध हुआ कि ईश्वर उन्हें राजनीति के कार्यकलापों को छोड़कर ईश्वर भक्ति में लीन होने की प्रेरणा दे रहा है।

उसी दिन से अरविन्द गीता के ज्ञान योग और कर्मयोग से प्रभावित हुए। उन्हें काल कोठरी के बाहर टहलते हुए भी अब ऐसा अनुभव हो रहा था मानो स्वयं वासुदेव उनके सामने खड़े हों। स्वयं श्रीकृष्ण उनको अपनी बाहुओं में भर कर कण्ठ से लगा रहे हों। इसके कुछ ही दिनों बाद अरविन्द पर लगाये गये अभियोगों का स्वरूप ही बदल गया और उन्हें कारागार से मुक्ति मिल गई। कारागार से अरविन्द ईश्वरीय वरदान प्राप्त कर एक ऐसे आध्यात्मिक योगी बन गये जो सृष्टि के सामने ईश्वरीय सत्य और उसकी वाणी रखने को प्रेरित थे। उन्होंने जेल से बाहर आकर उत्तरपाड़ा में इस अभूतपूर्व ईश्वरीय वाणी को अपने अभिभाषण में प्रथम बार व्यक्त किया। यह उनके जीवन में आध्यात्मिक चेतना का संकेत था।

अरविन्द का राजनैतिक जीवन यद्यपि बदल गया था। फिर भी ब्रिटिश पुलिस निरन्तर उनके पीछे रहती थी। इससे तंग आकर वे पांडिचेरी चले गये। वहीं आश्रम बनाकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ईश्वर की इच्छा और आत्मा की प्रेरणा के अनुसार कार्य करने में बिताया। वे अब देश के सच्चे आध्यात्मिक सन्त बन गये और योगीराज अरविन्द कहलाने लगे।

यहीं उ हो। म न् १६५० के दिसम्बर मास म पाँचवी दिनाक को अपना भौतिक शरीर त्याग दिया।

अपन आध्यात्मिक जीवन म उन्होंन भगवान की भक्ति को सबस ऊँचा स्थान दिया। व अहकार रहित, मच्ची, निश्छल और निष्काम भक्ति को महत्त्व दत थे। आज भी उनका पाडिचेरी आश्रम एक अ तर्राष्ट्रीय सस्था के रूप म पल्लवित है और योग विद्या का केन्द्र है।

स्वामी शिवानन्द

एक उदारमना बगुएरयर का दुलारा, विदुषी माता पार्वती का लाडला कुप्पु एक जिज्ञासु शिशु अपन जीवन म एक मेधावी किशोर, मनस्वी युवा डाक्टर और अन्त में एक तेजस्वी सत बना। अपने शिक्षण काल म भारत म तथा चिकित्सीय जीवन म मलाया म उन्होंन लोक मानस पर अपनी ध्येय निष्ठा जागरूक साधना के द्वारा इतना गहरा प्रभाव डाला कि देश विदेश म उनके असख्य श्रद्धालु हो गये।

परमार्थ के दिव्य पथ के पथिको के लिए माग के आकपण कस अवरोध बन सकत हैं। साधना म रत स्वामी शिवानन्द इन सभी आकपणो को तिलाजलि दत गए। स्वामीजी की साधना असहिष्णु तथा कट्टरपथी साधना नही रही—उन्होंन मदिरो, मस्जिदो, गिरजाघरो गुरुद्वारो का निमाण नही कराया, नए धम की आधारशिला नही रखी, व्यावहारिक दशन और चरित्र की नवीन सहिता का निर्माण नही किया, नये रीति रिवाजो की उद्भावना नही की, नाही किसी नये मत, पथ या सम्प्रदाय का प्रवतन किया। उन्होने हिन्दू को श्रेष्ठ हिन्दू मुस्लिम को श्रेष्ठ मुस्लिम, सिक्ख को श्रेष्ठ सिक्ख ईसाई को श्रेष्ठ ईसाई बनन का मत्र दिया—दिव्य जीवन विताने का सदेश सुनाया। स्वामीजी एक दवी शक्ति से ओतप्रोत थ—स्वय दिव्य थे। उन्होंने सवा, सत्य शुचिता और सहिष्णुता विश्व मानवता

के हृदय को विजित किया—उनका संदेश विश्व के कोने कोने में फैल गया है।

लोकोत्तर गुणों से विभूषित स्वामीजी का जीवन साधना से ओत-प्रोत था। साधना के पथ को आलोकित करने के लिए स्वामीजी ने विभिन्न विषयों में ३०० पुस्तकें लिखी—जिनमें साधना के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इनके द्वारा मानव अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति कर सकता है।

डॉ० चतुर्भुज सहाय

सूफी मत मौलाना फजल अहमद शाह से आत्मज्ञान प्राप्त गृहस्थ संत महात्मा रामचन्द्रजी से दीक्षित डा० चतुर्भुज सहाय जी ने ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के जिस सहज साधन की उद्भावना की वह योगेश्वर भगवान कृष्ण के अर्जुन को दिए गीता ज्ञान का नवीन आधुनिक संस्करण ही है। भगवान् बुद्ध, श्री महावीर स्वामी, जगद्गुरु शंकराचार्य आदि महान् आध्यात्मिक प्रतिभाओं से प्रतिपादित और युगों से प्रचलित संन्यास द्वारा मुक्ति ज्ञान की मान्यता को गृहस्थ संत डॉ० चतुर्भुज सहाय ने महत्त्व नहीं दिया तथा लौकिक कर्तव्य कर्मों को निष्काम भावना से करते हुए गृहस्थी बन रहकर भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति की सरल साधना प्रगट की जिससे आत्मज्ञान प्राप्त कर लाखों मनुष्य परम शांति का लाभ ले रहे हैं।

गुरुडम की विकृतियों को प्रताडित करते हुए आपने असीम गुरु महिमा का आदर्श प्रस्तुत किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती की भाँति अपने गुरु के ज्ञान को जन जन तक पहुँचाने के लिए सामूहिक सत्संग की व्यवस्था करके अध्यात्म का रहस्य सबके लिए सहज ग्राह्य बनाया। आपकी साधना अगाध थी। आप ईश्वरीय विभूतियों से विभूषित थे। आपके ग्रंथ 'साधना के अनुभव' में भारतीय आध्यात्म का कोई पक्ष अछूता नहीं है। पंचकोष समाधियाँ, त्रिगुणात्मक प्रकृति अष्टांगयोग जाप आदि आध्यात्म तत्त्वों का सरल संस्करण 'साधना के अनुभव' है।

डॉ० चतुर्भुज सहायजी ने किसी नए सम्प्रदाय या धर्म का प्रवर्तन नहीं किया। अन्तःकरण की शुद्धि से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति में साधक दूसरों के दुःखों को जानेगा और उनसे मुक्त होने का स्वयं प्रबन्ध करेगा—इसके लिए प्रभु की समीपता नित्यप्रति नियमानुसार करना चाहिए। उपासना की यह सहज क्रिया साधक का अपना अस्तित्व प्रभु में विलीन करने का सरल साधन है। आपकी इस क्रिया का सामूहिक सत्संग में देश विदेश के अनगिनत साधक कर रहे हैं और मन की स्थिरता में आत्मज्ञान तथा परमशांति का अनुभव कर रहे हैं।

□□

भारतीय साहित्य मे भावात्मक एकता के स्वर

राष्ट्र जन जीवन का सर्वस्व है और राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता का मगलमय वरदान है। राष्ट्र के अस्तित्व एव समृद्धि के लिए भावात्मक-एकता प्रत्येक युग म महत्वपूर्ण रही है क्योंकि भावात्मक एकता ही नागरिकों को एकता के सूत्र म बाधने वाली किसी राष्ट्र की अमोघ और अजय शक्ति हुआ करती है। भावो तथा अनुभूतियो की एकता का प्रश्न सामयिक और ऐतिहासिक नही, शाश्वत होता है इसको यहाँ रखना प्रत्येक राष्ट्र का परम कर्तव्य है।

यह भावात्मक एकता क्या है ? भावात्मक एकता का अर्थ है भावो और अनुभूतियो की एकता। समान भावनाओ की अनुभूति से ही भावात्मक एकता का सृजन होता है। यह भावात्मक एकता बाह्य तत्व न होकर, आन्तरिक तत्व है जो राष्ट्र विशेष के नागरिको की भावनाओ म आत्मसात् रहता है और जो सभी विभिन्नताओ से ऊपर उठकर राष्ट्रीय जीवन एव सभी नागरिको को एक सूत्र म बाध देता है। समान धरती, इतिहास, परम्परा, संस्कृति, जीवनादर्श एकसाथ रहने की इच्छा तथा एकता एव अपनत्व की भावनाएँ भावनात्मक एकता के आधार है, कोटि कोटि जन मानस के स्वप्न इनसे ही जुडे रहते है। अन्तर्वाहिनी एकता की यह भावना अधिक गहन और गम्भीर है जो विविध समुदाय, वर्ग, भाषा आदि की भिन्नताओ के भीतर सबको एकरस बनाती है।

राजनैतिक एकता अपने आप म महत्वहीन और बेमानी है, यदि राष्ट्र के सदस्यो का हृदय एक नही हो पाता। हृदय की एकता के पोषण

का सर्वोत्कृष्ट साधन है—उस देश का साहित्य। जिस तरह आत्मा की प्रत्यक्ष शरीर द्वारा होता है वैसे ही भाव जैसी अमूर्त वस्तु का प्रत्यक्ष साहित्य द्वारा ही सम्भव है। साहित्य जीवन की भावात्मक व्याख्या है। कवि अपनी मर्मस्पर्शिनी वाणी के प्रभाव से कृत्रिम आवरणों को छिन्न भिन्न कर मूल वृत्तियों या भावों को प्रस्तुत कर देता है। मन के अप्रकाशित कोष्ठ कवि प्रतिभा के प्रकाश से प्रकाशित हो उठते हैं, भावनाओं के एक ही तार से सबकी हृत्तन्त्रियां झंकृत हो उठती हैं, रस का एक ही निर्झर सबके अन्तस में बहने लगता है। साहित्य शास्त्र में रस के आस्वादीयता के लिए प्रयुक्त सहृदय शब्द का इसी भावात्मक एकता की ओर संकेत है।

यह राष्ट्र हमारा अजर अमर है। इतिहास के किसी भी काल में राजनैतिक एकता के अभाव में भी प्राचीन भारतवर्ष में सांस्कृतिक भावात्मक एकता को बनाये रखने का प्रयत्न निरन्तर होता रहा है, क्योंकि सत्ता एवं शासन के बदलने पर भी हमारा समाज हमारा राष्ट्रीय जीवन, हमारी मौलिक प्रकृति, प्रवृत्ति तथा चेतना के मूल स्वर नहीं बदलते। सहस्रों शताब्दियों से भारत की संस्कृति एक रही है। देश के किसी भी कोने से उठा हुआ गान का स्वर सम्पूर्ण भारत में गूँजता रहा है। फलतः संकीर्ण भावनाओं से खंडित देशवासियों के मन में 'सूत्रे मणिगणाइव' की तरह एक अखंड समरस सार्वभौम चेतना का संचार करने वाला प्रभाव अगणित भारतीय मनों को एक भावसूत्र में गूँथने का सहज उद्योग ही भावनात्मक एकता है।

हम सब एक ही प्रेम सूत्र में बँधे हुए परस्पर भाई भाई हैं। सभी एक ही बगिया के फूल हैं एक ही डाल के पक्षी, एक ही सागर की लहर, एक ही आकाश के तारे अथवा एक ही वृक्ष के फल हैं। इस भाव का प्रत्यक्ष और प्रिय अनुभव कराने में वैदिक साहित्य का यह कथन कितना सहायक है।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ (ऋ 20/19/2)

(हे मनुष्यो) तुम्हारे अन्दर की भावना समान हो। तुम्हारे हृदय समान हों तुम्हारा मन समान हो ताकि तुम्हारा संगठन (सत्ता) बना रहे।

वर्ग संघर्ष के स्थान पर जीवन के सभी क्षेत्रों मे समन्वय की स्थापना भेद म अभेद तथा विविधता मे एकता की इन्द्रधनुषी और मयूरपंखी छटा की शाश्वत एव चिरन्तन सृष्टि भारतीय साहित्य का सहज सौन्दर्य है। भारतीय साहित्य ही नहीं, विश्वसाहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद 'भावात्मक एकता' के वर्णना से भरे पडे हैं। 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति महाभाग्यात् देवता या एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते' आदि एकता के पावन वदिक साहित्य के सुविदित सूत्र हैं। यजुर्वेद म 'मित्र दृष्टि' का विवेचन कितना रमणीय है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रया ह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (यजु 36/18)

सब लोग मुझे मित्र दृष्टि से देखें। सबको म मित्र-दृष्टि से देखूँ। हम परस्पर मित्र दृष्टि स देखने वाले हो। उपनिषदो म सकडो स्थानो पर सम्पूर्ण मनुष्य जाति की एकता के आधार सर्वभूतान्तरात्मा की चर्चा मिलती है।

रामायण म जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का उद्घोष राष्ट्र प्रेम ही नही, राष्ट्रीय भावात्मक एकता का मूल स्वर है तथा श्री राम का निषाद एव शबरी आदि के साथ भी प्रेमपूर्वक मिलन सामाजिक एकता का प्रत्यक्ष आदर्श है। महाभारत मे सामाजिक सद्भाव के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। गीता म स्पष्टत 'परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ कहकर भावात्मक एकता की पुष्टि की है। पुराणो म इस एकता के लिए व्यापक प्रयत्न दिखाई देते हैं। विशाल भारत के नद नदी पर्वत सागर तीर्थस्थान राजवश मनुष्य के आचरण एव मन स्थितियो के वर्णनो द्वारा एकता कल्पवृक्ष के सिंचन एव पोषण का प्रयास हुआ है। भागवत तथा अन्य पुराणो मे चक्रवर्ती राजाओ के दिग्विजय प्रसगो म इसी एकता की प्रतिध्वनि है। भागवत पुराण के सन्देश अखिल भारतीय है।

कवियो के मुकुटमणि कालिदास ने अखण्ड भारत राष्ट्र की स्तुति की है। उनके द्वारा प्रस्तावित शिव स्तुति म विश्वात्मा का सिद्धान्त, रघु की

दिग्विजय श्री राम का लंका विजय करके अयोध्या को लौटते समय दक्षिण भारत का वर्णन, मेघदूत में रामगिरि से लेकर कैलाश तक आर्यावर्त का मनोरम वर्णन, राष्ट्रीय भावना के सुंदर शब्दचित्र हैं। संस्कृत संस्कृति द्वारा प्रचारित गंगे च यमुने चैव' गोदावरि सरस्वती। नर्मद सिन्धु कावेरि जल अस्मिन् संनिधि कुरु आदि जीवन व्यापी प्रसंग भारतीयों के हृदय कमलों को एकता की भावना में पिरोते हैं। शंकर रामानुज मध्व आदि दक्षिण भारत में उत्पन्न दार्शनिकों के विचार, उत्तर भारत में पूर्ण सम्मान के साथ स्वीकृत है।

संस्कृत भाषा सूर्य के आलोक एवं चन्द्र की चाँदनी की भांति भारतीय भाषाओं के साहित्य में ओतप्रोत है। द्राविड़ी परिवार की दक्षिण की भाषाओं में भी संस्कृत के साठ प्रतिशत तक शब्द प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए मलयालम की एक कविता देखिये—

नलिन दल गर्हित नयन विलासम्। नवकुंदकुसुम सुंदर मन्दहासम्।
घन नील विपिन समान सुवासम्। कुनु कुंतल वलयांकित कर्णालिकशम्।

संस्कृत भाषा की यह शब्दावली ही नहीं उसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक-चेतना सम्पूर्ण वैभव के साथ भारत की प्रत्येक भाषा में जागृत है। रामायण महाभारत तथा भागवत से प्रेरणा प्राप्त कर सैकड़ों ही नहीं, हजारों ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में रचे गए हैं। भक्ति आन्दोलन ने समान रूप से बिहार बंगाल उड़ीसा महाराष्ट्र गुजरात, आसाम दक्षिण तथा उत्तर *भारत को प्रभावित किया है। रसखान हरिदास जयदेव विद्यापति,* चण्डीदास तुकाराम नरसी मेहता, मीराबाई पातना और सूरदास एक ही कृष्णगाथा से आप्लावित थे। इसी प्रकार राम कथा भी भारत की सभी भाषाओं में फैली हुई है। निष्पक्षत भारत के किसी भी भाग में उत्पन्न कवि ने भारतात्मा' से तादात्म्य प्राप्त कर अपनी काव्य गंगा को प्रवाहित किया है।

भावात्मक एकता के अमर गायक तामिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती की कुछ पंक्तियां देखिए—

"कुप्पदु कोडि मुखमुडैयाल उयर ओन्ड्रुडैयाल इवल
चेप्पुम माली पदिनेटटुडैयाल एनिर् चिंतन ओन्ड्रुडैयाल।

अर्थात् हमारी भारतमाता करोडों मुख वाली है, किन्तु उसकी जान तो एक ही है। यह अठारह भाषाएँ बोलती है किन्तु उसका चिन्तन तो एक ही है। 'तुम राम कहो वे रहीम कहें मतलब तो खुदा की चाह से है' आदि के गायक कबीर, नानक, जायसी की वाणी सांस्कृतिक भावात्मक समन्वय की वाणी है। रसखान भारतीय-जीवन में असाम्प्रदायिक भक्ति भावना के प्रतीक है। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र, भक्ति ज्ञान सगुण निर्गुण, ब्राह्मण चाण्डाल सर्वत्र समन्वय ही समन्वय दिखाई देता है।

आज भी बंकिम के 'वन्दे मातरम्' से एकता की ध्वनि निकलती है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का साहित्य तो भारत ही क्या, विश्वात्मा के अभिव्यंजन के लिए प्रसिद्ध है। उनका यह गीत कितना मधुर है—"ओ मेरे हृदय ? इस भारत देश महा मानवता के समुद्र तट पर इस पवित्र तीर्थ में श्रद्धा से अपनी आँखें खोलो। किसी को भी ज्ञान नहीं है कि किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धाराएँ दुर्धर वेग से बढ़ती हुई कहां कहाँ से आईं और उस महासमुद्र में मिलकर समा गई। यहां आर्य हैं, यहां अनार्य हैं, यहां द्रविड और चनिकवंश के लोग हैं। शक, हूण पठान और मुगल न जाने कितनी जातियों के लोग इस देश में आए और सब के सब एक ही शरीर में समा गए। समय समय पर जो लोग रक्त की धाराएँ बहाते हुए एवं उन्माद और उत्साह में विजय के गीत गाते हुए रेगिस्तानों को पार कर एवं पर्वतों को लांघ कर इस देश में आए थे उनमें से किसी का भी अब अलग अस्तित्व नहीं है। ये सबके सब मेरे भीतर विराजमान हैं। मुझ से कोई भी दूर नहीं है। मेरे रक्त में सबका सुर ध्वनित हो रहा है।'

हिन्दी के गुप्त जी, नवीन एक भारतीय आत्मा आदि, बंगला के रवीन्द्र, बंकिम और नजरूल इस्लाम उर्दू के इकबाल गुजराती के मेघेरचन्द मेघाणी मराठी के कुसुमाग्रज और सावरकर, मलयालम के वल्लतोल,

तेलगु के राय प्रोल्युसुब्बाराव, कन्नड के बन्द्रे आदि असख्य कवि और साहित्यकारा न भावात्मक एकता की गूँज को जन जन तक पहुँचाया। भारती केवल तमिल की सम्पत्ति नही है और न भारत दु केवल हिन्दी की। दोना एक देश की मिट्टी स उत्पन्न हुए है, एक देश की आबोहवा म पले है। इसलिए भाषा उनकी भल ही तामिल या हिन्दी हा, भाव दाना क एक है। प्रसाद के अरुण यह मधुमय देश हमारा' का क्षितिज केरल तक विस्तीर्ण है।

नवीन जी निम्न भावा म राष्ट्र की एकता का उल्लख करत है —

उत्तर स दक्षिण, पूरब म पच्छिम तक तुम एक अर
भेद भाव स पर एक ही रही तुम्हारी टेक अरे
एक देश है एक प्राण तुम तुम ही नही अनक अर

निराला ता अपन श्रम सचित सभी फल मातृभूमि पर न्योछावर करन का प्रस्तुत है —

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हा तरे चरणो पर माँ
मर श्रम सचित सब फल ।

इसी एकता की प्राप्ति की तीव्र चाह कवि 'पत' क मन म है—

यदि अत सगठित आज हा जाता युग मन
मनुज हृदय का परिवतन सभव हा सकता
ता आन्मि सस्कार उमडत नही धारा के
युग जीवन स्वर्णिम रूपान्तर हा उठता ।

सच पूछा जाय तो भारतीय साहित्य एक एसा रथ है, जिसक विविध चक्रा म एकता का ही साम्राज्य है।

वस्तुत भावना एक महती शक्ति है। उस प्रभावित कर कराडा हृदय एक सुन्दर तन्तु म बाँधे जा सकत हैं। शक्तिशाली भावना जब किसी

राष्ट्र को आन्दोलित करती है तब सागर की लहरों की तरह, अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए चारों ओर तूफान उमड़ पड़ता है। विद्युत प्रवाह के सदृश, भावनाओं से भरा हुआ व्यक्ति सहसा क्रियाशील हो उठता है, उसमें अपार जीवन बल आ जाता है और एक दिशा में कुछ कर गुजरने के लिए मचल उठता है। आज हमारी जाति, प्रान्त, मजहब, दल एवं भाषा परक संकीर्ण मान्यताएँ, राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बनकर प्रतिवाद के युद्धघोष की भेरवी बजा रही हैं, अतः हमें उन पर विजय प्राप्त करने, देश के समग्र राष्ट्रीय व्यक्तित्व का साक्षात्कार करने तथा संयुक्त राष्ट्रीय जीवन विकसित करने के लिए राष्ट्रव्यापिनी एकता और अखण्डता की प्रबल जीवन ज्योति प्रज्वलित करना चाहिए। 'राष्ट्र' की भावात्मक एकता के पोषक भारतीय साहित्य का अधिकाधिक प्रचार इस दिशा में अत्यन्त सहायक होगा—

> हर व्यक्ति, व्यक्ति होकर भी देश है,
> और जाति धर्म, भाषा की भिन्नता के बाद भी,
> सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है। (नीरज)

— —

भारत की भावात्मक एकता की प्रतीक : राष्ट्रीय भाषाएँ

तामिल भाषा के अमर कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने बड़ी गहरी बात कही हमारी भारत माता कोटि भुजा वाली है किन्तु उसमें निहित प्राण तो एक ही है ? यद्यपि यह अठारह भाषाएँ बोलती है तथापि उसकी मूल चेतना तो एक ही है ?

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बंगला में कहा है कि हे मेरे हृदय ! इस महा मानवता के उदधि तीर भारत देश में धैर्य पूर्वक श्रद्धा के साथ जागरण कर। कोई नहीं जानता किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धारायें दुर्धर वेग से प्रवाहित होती हुई यहाँ आई और इस विशाल सागर में समाहित हो गई। आर्य अनार्य, द्रविड चीनी शक हूण, पठान, मुगल आदि सभी इस धरती पर एक साथ मिल गये हैं—एक देह में लीन हो गये हैं। जल की धारा में बहाते उन्माद के कल रव में जयगान गाते हुए मरुपथ को पार करके और पर्वतों को लाघते हुए जो लोग उत्साहपूर्वक इस देश में आये थे उनका अब कहीं कोई पृथक अस्तित्व नहीं रहा। वे सब के सब मेरे अन्तर में विराजते हैं। कोई दूर नहीं है। मेरे शोणित में रमा हुआ उन सब का स्वर ध्वनित हो रहा है।'

मलयालम के कवि श्री उल्लूर एस परमेश्वर अयर कहते हैं कि "विपिन के बीच मारुत के शब्दों का क्या अर्थ ? पवन आता हुआ यही कहता है कि मैं और मेरा पड़ोसी भिन्न नहीं है।

मलयालम के दूसरे कवि श्री वल्लताल की उक्ति है कि— भारत माता की पावन कोख से जन्मे सभी भारतीय भाई भाई हैं। अपने शक्तिमान

टाथा म इस पवित्रध्वज को थामे थामे थामो। हम सब आगे को बढ़ते जाएँ।"

पजाबी के कवि 'गोहर" का कथन है कि यदि तुझ म बिछुड़े दिलो को मिलाने की सामर्थ्य नही तो मिल हुए दिलो को क्या फोड रहा है ? एकता के यही स्वर डोगरी भाषा म है य ही उडिया म हैं य ही कन्नड म और ये ही देश की सभी मुख्य भाषाओ मे हैं।

भारत राष्ट्र की भावात्मक एकता के य स्वर परम्परा म वैदिक सस्कृति से चल हैं। ऋगवेद का ऋषि कहता है "सब मिलकर चलो एक सा बोलो, तुम्हारे मन समान हो।' यजुर्वेद 36/18 म कहा है 'मै सबको मित्रवत देखूँ, सभी व्यक्ति सब को मित्रवत देखें।' भाषा क माध्यम स भावात्मक एकता को यहाँ जो बल मिला वह अविस्मरणीय रूप स गरिमा मय है।

वदिक सस्कृति के पश्चात् यह काय लौकिक सस्कृत द्वारा सम्पन्न हुआ जिसम धार्मिक ग्रथो के माध्यम से कही देश क सभी भागो की बडी नदियो का एक साथ स्मरण किया गया तो कही सभी बडे पहाडो का और कही समस्त बडी पुरियो का। पौराणिक तथा सस्कृत भाषा के उत्तर वर्ती साहित्यकारो ने इस प्रकार देश क स्थूल भौगोलिक आधार को सूक्ष्म भावनाओ से समन्वय स्थापित कर उस अखण्ड राष्ट्रीयता का मूत रूप दिया जो भूमि, जन और सस्कृति का स्वरूप लिय खडी थी।

सस्कृत के बाद पाली, प्राकृत और अपभ्रश के माध्यम स भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धो की जातक कथायें तथा जनियो की उपदेश परक कथा म अपनी रोचकता व सारगर्भिता के कारण किसी एक वग या समाज की नहीं रह कर सम्पूण मनुष्य समाज की निधि बन गई।

खडी बोली हिन्दी के विकास स पहले ही पूरब से पच्छिम और उत्तर स दक्षिण तक घूमते फिरते मनमौजी सतो ने जिनकी भाषा को हजारी प्रसाद द्विवेदी न 'सधुक्कडी' का नाम दिया है देश की भावात्मक एकता का बडा बल दिया। मनुष्य मनुष्य के बीच जाति पाति या ऊँच नीच

के भेद से मुक्त सत मतो की भाषा म देश की लगभग सभी प्रचलित भाषाओ के शब्दो का योग था। यह मधुक्कडी भाषा जनता की भाषा थी—बहता गगाजल थी। जिसम जो नहाया वही भावात्मक एकता के रग म रग गया।

सत ज्ञानेश्वर ने सर्वा घटी रामदेहा देही एक, यह कर इसी एकता का प्रतिपादन किया था।

कबीर भावात्मक एकता को कितना बल दे रहे थ, जब वे कह रहे थे कि —

हिन्दू स राम अल्लाह तुरक से बहुविधि करत बखाना,
दुहूँ को सगम एक जहाँ तहवाँ मेरा मन माना ॥

नानक भी ऐसी ही बात कहते हैं —

ना हम हिन्दू, ना मुसलमान, दोनो बिच्च बसे शतान
एक एनी एक सुमान

महान सत 'धना कहते हैं —

राम कहा, रहमान कहो, कोई कान्ह कहा महादेवरी,
पारसनाथ कहा ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वय सेवरी।

यहा तो वैष्णव शव जन पूछतो, और मुसलमान सभी के बीच अभेद स्थापित किया गया है।

इसी प्रकार की बात गरीब दास, दरिया साहब तुकाराम, रहीम और धरणी जी न कही है। समर्थ गुरु रामदास ने भी इसी प्रकार भावात्मक एकता के सतुबध को पुष्ट किया है।

मधुक्कडी भाषा के बाद भावात्मक एकता की मधुमय गूँज उत्तर भारत म पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी अर्थात् अवधी बघेली छत्तीसगढी मगही मोबेली भोजपुरी तथा खडी बोली बागरू भाषा म पल्लवित एव प्रकट हुई। तुलसीदास का रामचरित मानस इस दिशा म सुनियोजित ढग स बहुत बडा

अभियान था जिसमे उत्तर दक्षिण पूरब और पश्चिम की एकता के सूत्र को सुदृढ किया जाकर मनुष्य के हित को सर्वोपरि रखने की निर्भीक घोषणा की गयी। तुलसीदास ने कहा कि, 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई।" भावात्मक एकता की पुण्यतोया भागीरथी समय की घाटियो को सहज गति से पार करती, विविध भाषाओ के माध्यम अपनाती अविराम गति से आज के युग तक चली आई जिसमे खडी बोली, हिन्दी, ब्रज प्राजल हिन्दी, गुजराती मराठी, बगला, कन्नड, तामिल, तेलगू, पजाबी, सिन्धी उर्दू, राजस्थानी आदि सभी राष्ट्रीय भाषाओ ने सबल योग दिया है।

ये हमारी राष्ट्रीय भाषायें ही थी जिन्होने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना जन जन मे भरी 'वदेमातरम' का प्रात-स्मरणीय भावपूर्ण मत्र दिया, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' की अनुभूति दी, 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का नारा दिया और प्रेरणा दी कि—

तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित चाहता हूँ,
देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ।

वस्तुत हमारी राष्ट्रीय भाषाओ का योगदान देश की भावात्मक एकता मे अविस्मरणीय है।

भक्ति साहित्य

प्राचीन भारतीय वाङ्मय आध्यात्म, दर्शन और भक्ति भावना की अभिव्यक्ति मात्र है। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृति, षटदर्शन, संहिता में आध्यात्म चिंतन और तत्त्व दर्शन का जो प्रतिपादन मिलता है वह विश्व में अद्वितीय है। उसकी महानता ने ही भारत को जगद्गुरु की प्रतिष्ठा प्रदान की है। इस ज्ञान का उद्भव आर्य्यावर्त में हुआ। आर्य्यावर्त जिसको कालांतर में 'भारत' की संज्ञा मिली की सीमाएँ इतिहास में विवाद का विषय रहा है। अंग्रेजी राज्य में लिखित भारत के इतिहास ने आर्यों को मध्य एशिया का मूल निवासी बताकर भारत में आर्य्यों अनार्य्यों के संघर्ष की भावना और दो सभ्यताओं का प्रतिपादन करके विद्वेष का बीजारोपण किया जो उत्तर और दक्षिण भारत की पृथक संस्कृतियों और विभिन्न जन जीवन की इकाइयों को पनपाता है तथापि आर्य्यावर्त के आदि संस्कृत साहित्य वेद में जिस भूभाग को एक देश की संज्ञा दी गई है उसका विस्तार उत्तर में हिमालय से दक्षिण के महासमुद्र तक प्रगट किया है। तत्त्व चिंतन और आध्यात्म ज्ञान हिमालय की कन्दराओं से लेकर कावेरी के तट तक एकता के स्वर में गूँजा है। प्राचीन वाङमय की मूलधारा चिंतन में सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय अखंडता का काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कामरूप से कच्छ तक प्रतिपादित करती है।

आर्य्यावर्त्त की धार्मिक आस्थाएँ प्रकृति से सुखदायी जीवन के वरदान पाकर सहज ही प्रकृति की शक्तियों की उपासना से प्रारम्भ हुई मुख्यतः वायु वरुण और अग्नि की उपासना प्रचलित हुई। ये तीन शक्तियाँ ही ब्रह्मा (सृजक) विष्णु (पालक) और महेश (संहारक) के रूप में प्रतिष्ठापित हुईं। काल के बढ़ते चरण और आर्य्य सभ्यता के विस्तार के साथ इन्द्र,

वायु अग्नि देवता के रूप म पूजे जाने लगे। शनै शनै आराध्य के इष्ट बदल गए और पूजा म कमकाड की विविधता ने उपासना का आवृत्त कर लिया। त्रेतायुग में अयोध्या के राम ने उत्तर से सुदूर दक्षिण म रामेश्वरम् तक उपासना पूजा, धारणा ध्यान, आचार विचार मे समयावधि और भौगोलिक दूरी से उत्पन्न विभेद को समाप्त करके जन जीवन को पुन सास्कृतिक एकता के सूत्र मे पिरोया। प्राचीन आख्याना म हिमालय पर कैलाशपति भगवान् शकर का विवाह दक्षिण वासी दक्ष की कन्या सती से हुआ और सती के यज्ञशाला म देह त्याग देने पर शकर उसक मृत शव को लेकर हिमालय तक गए। माग मे जहाँ जहाँ वे रुके वहाँ भगवान शकर के बारह ज्योतिर्लिंग स्थापित किए गए जो भारत की प्रादेशिक सस्कृतिया का अतिक्रमण करके आज भी भावात्मक और सास्कृतिक एकता का उद्घोष करते हैं। सम्पूण आध्यात्मिक साहित्य म तथा परवर्ती आख्याना म भक्ति, उपासना, निष्काम कम और ईश्वर प्रणिधान की भावना प्रतिपादित है। पौराणिक काल का साहित्य भी प्रतीकात्मक रूप म भक्ति साहित्य ही है जो मानव को शाति और आनन्द के लोक म पहुँचाने के लिए प्रेरित करता है—जगत् को भ्रम और भुलावे का उपक्रम बताकर मन को स्थिर करने की साधना का सदेश देता है। सदेश के ये स्वर एकदेशीय नही, भारतव्यापी हैं।

भारतीय आध्यात्म साहित्य की विशालता और विविधता मे जिस व्यापकता और समन्वयपरकता का परिचय मिलता है, वही भारत के जन, जीवन और सस्कृति मे भी घुलमिल गया है। इसे ऊपरी आँखो से देखन वाले ही भारत की राष्ट्रीय और सास्कृतिक एकता को स्वीकार नही करते, किंतु इसकी आत्मा को पहिचानन वाले सचाई को समझते हैं। 'भगवान् शिव' तथा 'भगवान गणेश' शीषक लेखो मे इनक भारत की सीमाओ से बाहर मक्का शरीफ से इन्डोनेशिया तक आराध्य स्वरूप के दशन कराए गए हैं। इसी प्रकार भौगोलिक विस्तार के प्रभाव से जनित प्रादेशिक मान्यताओ के साथ सम्पूण भारत मे दशावतार के आख्यान मान्य हैं। आराध्य के रूप मे भगवान राम भगवान कृष्ण, महावीर हनुमान एव सिंहवाहिनी दुर्गा भारत के कोने कोने म भक्ता की पूजा उपासना, धारणा ध्यान, भजन कीत्तन एव नृत्य का आधार स्तम्भ हैं। इन आराध्या के अनगिनत भक्ता ने अपनी

भावना के सुमन साहित्य सजना के माध्यम से भक्ति गीता म पिराए हैं। इतिहास का मध्य युग प्रचुर भक्ति साहित्य का सृजक रहा है।

वेदा की रचना के बाद वाल्मीकि रामायण, वेदव्यास रचित महाभारत श्रीमद्भागवत् तथा गीता ग्रथ, जगद्गुरु शकराचाय्य का वेदात साहित्य भक्ति साहित्य का शीपस्थ स्वरूप है तो मध्य युगीन, सत ज्ञानेश्वर, गुरु गोरखनाथ, वल्लभाचाय रामानुजाचाय, कबीर, नरसी महता, मीरा, सूर तुलसी, रसखान, अष्टछाप के अन्य कवि, चतयमहाप्रभु, चडीदास, विद्यापति व जगन्नाथदास रत्नाकर आदि अनेकानेक कवियो की वाणी भक्ति गीतो म मुखरित होकर भारत व्यापी सास सास म समा गई है। काश्मीर हो या केरल, तमिल हो या पजाब, महाराष्ट्र हो या बगाल, असम हो या गुजरात, आध्र हो या उत्तर प्रदेश, कर्नाटक हो या राजस्थान—सभी सूर और मीरा की भक्ति रचनाओ से अभिभूत हैं। कोई भारतीय सगीतज्ञ चिराग लेकर ढूँढने से भी शायद ही मिले जिसने मीरा के भजनो से अपनी कला को अलकृत न किया है। तुलसी के राम जन जन के प्राणा म बसे हैं। सुन्दरकाड के वीर हनुमान सवत्र पूज्य हैं। किसी भी प्रदेश के सगीतकार, गायक, नतक या नृत्यागना को ले लीजिए—राम और कृष्ण के भक्ति गीतो के बिना उनकी प्रस्तुति अधूरी है, उनके परा की थिरकन और नूपुरा की खनखन म उनकी लीलाएँ समाई हुई हैं। बृज की रासलीलाएँ जितना मन मोहती हैं, उतना ही केरल तथा बगाल के कलाकारा द्वारा प्रस्तुत कृष्ण की लीलाएँ भाव विभोर कर देती हैं। श्रीमती एम एस शुभालक्ष्मी वाणी जयराम, लता मगेशकर, त्रिमूर्ति के नाम स विख्यात त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षितार, और श्यामशास्त्री सत पुरन्दरदास विट्ठल, स्वामी तिरनाल विष्णु, दिगम्बर पुलस्कर, व विष्णुनारायण भातखड, बगाल के सौरिन्द्रमोहन ठाकुर, कुमार गधव, हरि ओम् शरण की सगीत साधना, राम और कृष्ण के भक्ति गीतो द्वारा ही धय हुई है। सामाजिक नामकरण के व्यवहार म भी इस साधना का प्रभाव परिलक्षित है। राम और कृष्ण के काव्यसाहित्य की व्यापकता ने जितने राजगोपालन् राधाकृष्णन् राघवन्द्र, कृष्णामाच्य रामानुजम् करुणानिधि, रामाराव और विट्ठल दक्षिण म पैदा किए है

उतने उत्तर भारत मे नही। उत्तर भारत ब्राह्य प्रभावों से दक्षिण की अपेक्षा अधिक ग्रसित है।

विचारणीय है कि दक्षिण भारत उत्तर की अपेक्षा आचार विचार, धार्मिक आस्था रहन सहन आदि मे अधिक भारतीय है, अधिक कृष्णमय और राममय है फिर भी आर्य-अनार्य संस्कृति के विभेद के स्वर दक्षिण दिशा से उठते हैं। विभेद का यह बीजारोपण राजनीति परक है अथवा अभारतीय तत्वो का फूट डालने का प्रयास मात्र, तथापि भक्ति साहित्य और संतो के स्वर देशव्यापी भावना को जिस प्रकार सास्कृतिक और भावात्मक एकता म पिराए हुए हैं उससे इसकी अखडता स्वत सिद्ध है। वर्तमान मे भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बकिमचन्द चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, महाकवि हरिऔध, सुब्रह्मण्यम् भारती आदि अनेक कवियो तथा गद्य लेखको की भावनाएँ राष्ट्रीय अखडता और सास्कृतिक गौरव का पुर्वारन करती ह। एक ओर प्राचीन वाड्मय अधिकाश भक्ति साहित्य स ओतप्रोत हैं दूसरी ओर अन्यान्य वर्णित विषयो के साथ अर्वाचीन साहित्य म भी राम, कृष्ण, महावीर और शक्ति की उपासना उभर कर भारतीय जन जीवन को राष्ट्रीय एकता के लिए उद्बोधित करती है।

राम कृष्ण और महावीर की भाति ही 'दुर्गा' शक्ति स्वरूपा होकर काश्मीर की घाटियो मे कन्याकुमारी तक तथा असम स सौराष्ट्र तक जन जन की भावना का समेट है। अष्टाध्यायी का दुर्गापाठ तथा अनेक देवी स्तुतिया प्रचलित हैं—भाषाएँ प्रादेशिक ह तथापि भावो की आत्मा एक ही ह। काश्मीर म वष्णो देवी, बगाल म महाकाली आसाम की कामाख्या देवी, यू पी तथा राजस्थान की दुर्गादेवी, गुजरात की अम्बा माँ, पजाब की देवी भगवती और दक्षिण की सती के आराधना क स्वर एक ही भावात्मक एकता के स्वरुप हैं।

प्रगट है कि भारतीय वाडमय प्राचीन काल से वतमान तक भक्ति साहित्य के रूप मे सास्कृतिक एकता का सशक्त माध्यम रहा है। देश की राष्ट्रीय अखडता को आघात पहुँचाने की वतमान वृत्ति राजनतिक दृष्टि से

सफल होकर भी भारतीय आत्मा की शाश्वत एकता को नष्ट नहीं कर सकेगी। इतिहास इसका साक्षात् प्रमाण है—दक्षिण में असंगतियाँ उभरी तो उत्तर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम, सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य ने सांस्कृतिक एकता का उद्घोष किया, उत्तर विसंगतियों से पददलित हुआ तो विजयनगर राज्य के शासक, छत्रपति शिवाजी, टीपू सुलतान ने भावात्मक एकता का जयघोष किया। शासकों से अधिक आध्यात्मिक प्रतिभाओं तथा संतों के स्वर गूँजे। अनेक आक्रांता आए आँधी की तरह छाए अनगिनत रक्त बहाए परन्तु हमारी सांस्कृतिक एकता को नहीं मिटा पाए। एक शायर के शब्दों में—

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
दुश्मन रहा है चाहे दौरे जहाँ हमारा।
सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा॥"

—०—

ऐतिहासिक सूत्र

भारत के राष्ट्र निर्माता

पुराणों के अनुसार आर्यों के प्रसार के पश्चात आर्यावर्त के प्रथम पराक्रमी राजा ववस्वत मनु हुए हैं। मनु के सबसे बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे जिन्होंने अपनी राजधानी अयोध्या से समस्त मध्य देश पर राज्य किया। मनु के एक पुत्री इला थी जिसका पुत्र पुरूरवा ऐल हुआ। इक्ष्वाकु के वंशज सूर्यवंशी तथा पुरूरवा ऐल के वंशज चन्द्रवंशी कहलाए।

भरत—चन्द्रवंशी साम्राज्य का झंडा दुष्यंत के समय में उठा। महाकवि कालीदास के अभिज्ञान शाकुंतल के आधार पर दुष्यंत का कण्व ऋषि के आश्रम में गंधर्व विवाह हुआ और शकुंतला गर्भवती हुई। दुर्वासा ऋषि के शाप से दुष्यंत शकुंतला को भूल गया और उसने शकुंतला को स्वीकार नहीं किया। शकुंतला हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में चली गई।

एक अवसर पर राजा दुष्यंत आखेट को गये। उस समय तक शाप का प्रभाव समाप्त हो चुका था। उसने आखेट हेतु विचरण करते हुए एक आश्रम के समीप एक तेजस्वी बालक को शेर के बच्चे के साथ खेलता देखा। बालक की तेजस्विता पर मोहित होकर वह बालक के पास आया और उसके साथ उसकी माता के पास गया। उसे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि वह बालक और कोई नहीं शकुंतला के गर्भ से उत्पन्न उसी का पुत्र है। शकुंतला ने आश्रम नहीं छोड़ा परन्तु बालक को दुष्यंत राजधानी प्रतिष्ठान पुर ले आया। उसका भावी लालन पालन राजकीय साधनों में और उसके जन्मजात शौर्य के अनुकूल हुआ। यह बालक भरत था।

भरत के शासन काल में प्रथम बार सम्पूर्ण आर्यावर्त राजनैतिक एकता के सूत्र में आबद्ध हुआ। भरत की कीर्ति पताका वर्षों तक आर्यावर्त

मे छाई और इस भूभाग के निवासियो ने इस देश को भरत के नाम पर 'भारत' की संज्ञा दी। भरत इस देश के प्रथम राष्ट्र निर्माता हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

कालांतर मे पुन इक्ष्वाकु वश का प्रभाव बढा। राजा भागीरथ, दिलीप रघु और दशरथ का पराक्रम बढते बढते श्री रामचन्द्र जी के समय तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। श्रीराम सामान्य बालक के समान अवधपुरी म, राजा दशरथ के पुत्र रूप म जन्म ग्रहण करते हैं। भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न आदि बन्धु भी क्रीडाऍं करते हुए बडे होते हैं। उनका अप्रतिम व्यक्तित्व समाज को आकर्षित और प्रभावित करता है।

राम के गुणो की चर्चा स प्रभावित होकर महर्षि विश्वामित्र उन्हे अपने आश्रम म ले गये। राम, लक्ष्मण को उन्होने शस्त्र विद्या म निपुण बनाया और राक्षसो से उत्पन्न विघ्नो से यज्ञ की रक्षा की। जिस शिव धनु को बडे बडे पराक्रमी राजा किंचित भी नही हिला सके उसे पराक्रमी राम न खण्ड खण्ड कर दिया। अयोध्या के प्रासाद राम सीता के अलौकिक प्रकाश म चमक उठे। राजा दशरथ न राम के राज्याभिषक की तयारी की परन्तु विधि का विधान कुछ और था। राम को देश के कोने कोने म नवचेतना का सचार करना था। समाज घातको का हनन करना था और आर्य सस्कृति की धवल पताका विध्यपार भी फहरानी थी।

विधि के विधान स राम चौदह वर्ष बनवास को गय। इस अवधि म अयोध्या से सुदूर दक्षिण तक राक्षसो का विनाश करते हुए ऋषियो, तपस्वियो और सतो को अभयदान देते हुए बढते गये। सीता हरण न उन्हे तत्कालीन महाबली राक्षस राजा लकाधिपति रावण से लोहा लेने को प्रेरित किया। राक्षसराज रावण और धर्म परायण राम के बीच प्रच्छन्न सघर्ष अब प्रकट हो उठा। राम देश की उन सभी शक्तियो को एक सूत्र मे सगठित करते हैं जिन्हे धर्म से प्रेम है। पवनसुत की भक्ति और शक्ति जामवत की निपुणता, सुग्रीव की सेना, अगद की दृढता सभी राम [illegible] सुदृढ़ आधार बनते हैं। वानर जाति की सेना के सह [illegible]

]

राजनीति, कुशल रणनीति और सतुलित मर्यादा पालन राक्षसराज रवण को ही परास्त नही करती वरन् दानवत्व पर दवत्व की विजय घोषित करती है।

राम को सुन्दरी अथवा स्वण का मोह कभी नही सताया। सोने की लका का राजतिलक उन्हाने विभीषण को देकर सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से अग्नि परीक्षा के पश्चात सीता को स्वीकार किया और वनवास की अवधि समाप्त होन के साथ अयोध्या लौट आये। राम ने न केवल अधम को पराभूत किया और सिंधु पर सतु बाधकर आय सस्कृति की धवल कीर्ति सागर की लहरा म मुखरित की वरन् समाज की प्रत्येक गतिविधि मे मयादा का आदश प्रस्तुत किया। वे इसी कारण मर्यादा पुरुषोतम कहलाए।

कुछ लोग राम को अवतार मानते है। कुछ केवल महापुरुष। कुछ भी माना जावे परन्तु यह सत्य है कि वे अलौकिक व्यक्ति थ। उनका चरित्र अनुकरणीय है, आदश है, नर से नारायण बनन की प्रेरणा दता है। जब जब भारत पर दुर्दिन की घटाएँ छाई, राम नाम ने उसे साहस और आशा का सबल दिया है। राम को भारत के जन मानस अधिष्ठान से अपदस्थ नही किया जा सकता। राम युग पुरुष थे, राष्टीय एकता के प्रेरक थे, सास्कृतिक समन्वय के जयघोष थे। उत्तर दक्षिण की सीमाओ को भावात्मक एकता की कडी म पिराकर उन्होने भारत को अखड सगठन का बाना पहिनाया। राम युगा से केवल उत्तर भारत म ही पूज्य नही है वरन् दक्षिणवासियो के धर्माचरण के आधार और आदश है। राम की लीलाएँ दक्षिण भारत की सीमाओ तक ही नही, समुदर पार जावा, सुमात्रा बोर्निया, लका आदि द्वीपो मे भी जन मानस का रजन करती है।

योगीश्वर कृष्ण

भादो मास मे कृष्णपक्ष की अष्टमी की काली रात्रि को मामा कस के कारागार मे देवकी के गभ से श्रीकृष्ण का जन्म लगभग पाच हजार वष पूव की एक चिरस्मरणीय घटना है। जन्म से ही श्री कृष्ण के अतिमानवीय चरित्र का प्रारम्भ हुआ। कृष्ण की बाल लीलाएँ अनेक रहस्यपूण विस्मय

कारी और मनोहारी आख्यानों से गुथी हुई है जो रोमांचकारी है और सहज ही कृष्ण के अप्रतिम व्यक्तित्व की ओर आकर्षित करती है। यमुना के तट और गोकुल की लहलहाती लता कुंजों में कृष्ण के बालचरित्र की प्रतिध्वनियाँ गूंज रही हैं। यहीं उन्होंने वंशी रव पर गोपियों का मन हर लिया तो यहाँ गाय ग्वालों को संगठित करके आततायी मथुराधिपति कंस के अत्याचारों को चुनौती दी। स्वयं मल्लविद्या में निपुण होकर शारीरिक सौष्ठव और शक्ति में अतुलनीय बने तो माखनचोरी और दूध दही की लूट का राजनैतिक नाटक करके मथुरा की जनता को कंस के प्रति उभारा और गोवंश की वृद्धि और पूजा विधान का उद्घोष किया।

तत्कालीन भारत परस्पर विरोधी शक्तियों में बँटा हुआ था। राजे महाराजे शूरवीर थे। परन्तु दम्भी, प्रजा के लिए अत्याचारी और देश की समूची शक्ति के संगठन को एक चुनौती बने हुए थे। राजा कंस गोकुल में कृष्ण के बढ़ते प्रभाव को सहन नहीं कर सका। उन्हें मथुरा बुलवाया गया। वहाँ मुष्टिक और चाणूर जैसे पहलवानों को पछाड़ कर उन्होंने उग्रसेन के पुत्र कंस को राज्यच्युत किया। कंस की जीवन लीला समाप्त कर उग्रसेन को मथुरा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हुए उन्होंने शूरसेन जनपद की राजनीति को मोड़ दिया। यमुना के कछारों में स्वच्छंद वातावरण में ग्वालों के साथ उन्होंने जीवन की एक अच्छी तैयारी करली थी। मस्तिष्क की साधना के लिए उन्होंने सांदीपन मुनि के आश्रम में दीक्षा ली। इसके बाद परिस्थितियों ने कृष्ण का सम्बन्ध हस्तिनापुर की राजनीति से जोड़ दिया। कंस वध के प्रसंग में कृष्ण की राजनैतिक प्रवृत्ति का परिचय मिल गया था। हस्तिनापुर की राजनीति ने उसे अधिक उभार दिया। कृष्ण ने अनुभव किया कि इस समय देश में एक बड़ा दल उन राजाओं का है जिनकी निरंकुशता प्रजा के क्षोभ और कष्ट का कारण बनी हुई है। जैसे जैसे कारण होते गये एक एक अत्याचारी शासक से उनका संघर्ष हुआ। मगधराज जरासंध, चेदि जनपद स्वामी शिशुपाल बाणासुर, कालिंगराज, काशिराज गांधारराज कामरूप के शासक सब कृष्ण की बुद्धि कौशल से पराजित हुए।

महाभारत की घटना भारत की एक करुण घटना है। दुर्योधन की ओर से गांधार, वाल्हीक, काम्बोज, यवन, सिंधु मद्र, त्रिगर्तसार, मालव

ग्रौर मग ग्रादि देशो के क्षत्रिय प्रवृत्त थे। युधिष्ठर की ग्रोर से विराट, पाचाल, काशी, चेदि, वृष्णि, वग ग्रादि राज्यो के क्षत्रिय हुकार उठे थे। भारत की शक्ति इन राज्यो मे विघटित होकर शतरज की चालो से प्रजा ग्रौर पारम्परिक राजाग्रो के लिए शूल की तरह चुभ रही थी। कृष्ण की राजनतिक कुशाग्रता ने कुरुक्षेत्र के मैदान म ग्रठारह ग्रक्षौहिणी सेना का नष्ट होने से बचाने का प्रयास किया। स्वय दूत बनकर दुर्योधन से पाडवो के ग्रधिकार की याचना की। दुराग्रही दुर्योधन "सुई की नोक के बराबर भूमि" भी पाडवो के लिए छोडने को तैयार नही हुग्रा तो महाभारत के युद्ध से धम ग्रौर नीति को प्रथम पर विजयी बनाकर भारत मे पाडवो की विजय का जयघोष किया ग्रौर सगठित शक्ति का शखनाद।

महाभारत युद्ध के प्रारम्भ मे विचलित ग्रजु न को गीता ज्ञान देकर कृष्ण ने कमयोग का प्रतिपादन किया। कम का वज्ञानिक विवेचन, जीवन के साथ उसका ग्राध्यात्मिक सम्बन्ध ग्रौर मनुष्य का ग्रत शान्ति प्राप्ति के साधना की सर्वोत्तम मीमासा गीता के माध्यम म प्राप्त होती है। गीता विश्व का शास्त्र बन गई है। श्री कृष्ण ने ग्रजु न को निमित्त बनाकर गीता के रूप म जो ग्रमर सदेश दिया है वह युग युग तक मनुष्य को कतव्य का ज्ञान कराता रहेगा।

कृष्ण को "सोलह कला का ग्रवतार" कहा जाता है। सोलह कलाएँ चद्रमा के सम्पूण स्वरूप का द्योतक ह। इसी प्रकार मानवी ग्रात्मा का पूणतम विकास भी सोलह कलाग्रो द्वारा प्रगट होता ह। कृष्ण म सोलह कला की ग्रभिव्यक्ति थी ग्रथात मानव मस्तिष्क के पूणतम विकास का ग्रादश हमे श्रीकृष्ण म मिलता है। उनका प्रत्येक स्वरूप भारत के जीवन को ग्रनुप्राणित करता है। ग्राज श्रीकृष्ण हमारी राष्ट्रीय सस्कृति के सवश्रेष्ठ भावात्मक प्रतिनिधि बन हुए है। कत य कम के प्रति प्रेरित रहकर भी फल की कामना न करना जीवन का श्रेष्ठतम योग साधन ह ग्रौर इसके उपदेशक योगेश्वर कृष्ण भारत भूमि के कण कण मे समाए हुए जन जन के मानस को कमनान भक्ति की त्रिवेणी मे पवित्र करत रहते है। श्री कृष्ण भारत की सम्पूण ग्राध्यात्मिकता की ग्रात्मा हैं जो कमरत है ग्रौर मानव मानव

या द्वेष की परिधि म न बाँधकर राष्ट्रीय एकता की कड़ी म आबद्ध करती है।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त

चाणक्य का जन्मनाम विष्णुगुप्त था। उनका जन्म नीतिशास्त्री चणक मुनि के वंश म हुआ। इसलिए प्रसिद्धि पाकर वे चाणक्य भी कहलाए। उनका जन्मस्थान नेपाल की तराई बताया जाता है। ईसापूर्व चौथी शताब्दी के प्रारम्भ म अनुमानत विष्णुगुप्त का जन्म हुआ। जनश्रुति के अनुसार व श्यामवर्ण के थे तथा देखने म असुन्दर लगते थे। विष्णुगुप्त अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न, दृढ़निश्चयी तथा क्रोधी प्रकृति के थे। उनकी कुरूपता से चिढ़कर मगधराज महापद्मनन्द ने उनका अपमान किया और उन्होंने शिखा खोलकर प्रतिज्ञा की कि नन्दवंश का नाश करके ही शिखा बाँधूगा। वे भारत के पूर्वी प्रदेश छोड़कर तक्षशिला चले आए।

इसा से लगभग 327 वष पूर्व यूनानी सम्राट सिकन्दर पचनेर प्रदेश म आया। यूनान से भारत के बीच टर्की इराक, ईरान, अफगानिस्तान आदि सभी राजशक्तियाँ उसकी विजयवाहिनी से परास्त हो चुकी थी। विश्वविजय का स्वप्न सँजोए सिकन्दर भारत म भी अंधड की भाँति आया। चाणक्य को यह अनुभव करके अत्यन्त दुख हुआ कि हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विस्तृत राष्ट्र विदेशी आक्रमणों द्वारा पददलित होने जा रहा है और भारतीय राजनीति शक्ति विश्र खलित होकर निरुपाय बठी है। चाणक्य ने क्षत्रिय कुमार चन्द्रगुप्त के अदम्य साहस और शौय का सूत्र पकड़ा। ऐसे देशभक्ति स ओतप्रोत युवकों का सगठन बनाया गया और उन्ह मातृभूमि स विदेशी आक्रमणकारियों को खदेड़न की प्रेरणा दी। उधर चाणक्य के निजी गुप्तचरों न सिकन्दर के सनिकों म मगध राज्य की सना की विशालता और विकरालता की धाक इस प्रकार बिठादी कि यूनानी सनिकों ने आग बढ़ने से इन्कार कर दिया। सिकन्दर वापिस लौटा परन्तु पूव योजनानुसार चन्द्रगुप्त के नेतृत्व म उसका स्थान स्थान पर प्रतिरोध किया गया।

सिकन्दर को लौटाकर चाणक्य शान्त रहा। उसकी निश्चितधारणा बनगई कि भारत की आंतरिक शक्तियो को छिन्न विच्छिन्न पाकर विदशी किसी भी समय आक्रमण कर सकते हैं। उसने समस्त राष्ट्र को एक सूत्र म सगठित करने का महान सकल्प कर लिया। नन्द वश के विनाश की प्रतिज्ञा भी सदा हरी थी। चाणक्य ने पश्चिमात्तर भारत की शक्तियो को चन्द्रगुप्त क नेतृत्व म सगठित किया। तदनन्तर मगध की राजधानी पाटलिपुत्र पर आक्रमण कराया। विलासी महापद्मनन्द पराजित हुआ। चन्द्रगुप्त के सहयोगी प्रवतक राजा को विषकन्या के वासनामय जाल मे फसाकर मृत्युलाक से विदा किया और चन्द्रगुप्त का मगध मे राज्याभिषेक किया गया। चन्द्रगुप्त मौय अभी नवयुवक ही थे परन्तु चाणक्य की कूटनीति, कुशलता ने उसे राजसी विलास वभव म न उलझने देकर राष्ट्र की शक्तियाँ सगठित करन के लिए तयार कर लिया। सिकन्दर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस के आक्रमण को न केवल विफल करने वरन् उसके राज्य के विशाल प्रदेश को काबुल, हिरात, कधार बलुचिस्तान, अफगानिस्तान की सीमाओ तक मगध राज का सौप देने का श्रेय महान कूटनीतिज्ञ आचाय विष्णुगुप्त का ही है।

विष्णुगुप्त ने जो कुछ किया, राष्ट्र के सगठन और कल्याण के लिए किया। साम्राज्य का अधिकारी उन्होंने चन्द्रगुप्त को बनाया। स्वय सूत्रधार मात्र रहे। महामात्य का पद भी महापद्मनन्द के महामन्त्री "राक्षस" को देकर उसकी बुद्धि का उपयोग राष्ट्र सगठन मे कराया। स्वय एक प्रेरक शक्ति और सचालक रहे। प्रत्येक स्थिति पर कडी निगाह और नियन्त्रण रखा। जब यह विश्वास हो गया कि चन्द्रगुप्त का पराक्रम और महामात्य राक्षस का बुद्धिकौशल भारत की सम्पूर्ण राजशक्ति को राष्ट्रीय सगठन मे आबद्ध करते जा रहे हैं और आने वाली शताब्दियो म विदेशी आक्रान्ता भारत की ओर आँख उठाकर भी नही देख सकेंग। तब स्वय सन्यास ग्रहण कर हिमालय प्रदेश मे चले गये। सहस्र योजन पय त विस्तृत विशाल भारत भूमि को एक सूत्र मे सगठित करने वाले महान आचाय विष्णुगुप्त का जीवनादश कितना महान था।

इस कुशल राजनीतिज्ञ ने अपनी बुद्धि चातुय और सगठन निपुणता

से एक ओर तो जहाँ भारतीय शक्तियों का गठन कर विदेशियों के भारत विजय के स्वप्न समाप्त किये, दूसरी ओर सउगडाउ न्द साम्राज्य को नष्ट करके महान मौर्य साम्राज्य के नेतृत्व में ऐसी राष्ट्रशक्ति का जन्म दिया कि विदेशी भारत की ओर उन्मुख होने का वर्षों तक साहस नहीं कर सके। चाणक्य सच्चे अर्थों में महान राष्ट्र निर्माता थे।

समुद्रगुप्त

चन्द्रगुप्त मौर्य के वंशजों में महान सम्राट अशोक का नाम इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। प्रथम उसका अदम्य साहस और शूरवीरता तथा कलिंग विजय के पश्चात उसकी मानवीयता इतिहास में अनन्य है। प्रजा वत्सलता की सर्वश्रेष्ठता के कारण वह न केवल प्रियदर्शी कहलाता वरन् इतिहास का एक महान सम्राट भी। परन्तु उसकी बौद्ध धर्मानुयायी प्रवृत्ति ने राज्य की सैन्य शक्ति को निष्क्रिय बना दिया और उसकी मृत्यु (232 ई पूर्व) के बाद मौर्य साम्राज्य की महानता लुप्त होती चली गई। भारत फिर विदेशी आक्रमणों का घर बन गया तथा राजशक्ति विघटित होकर छिन्न भिन्न हो गई। लगभग साढ़े पाँचसौ वर्षों की राष्ट्रीय शक्ति के विघटन के पश्चात गुप्त साम्राज्य के नेतृत्व में सन् 320 ई के पश्चात पुनः शक्ति संगठन हुआ। इस वंश के प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम ने उत्तरभारत से विदेशियों का खदेड़ कर एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की।

सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त अत्यन्त यशस्वी सम्राट हुआ। समुद्रगुप्त की असाधारण प्रतिभा और विलक्षण सैनिक क्षमता से प्रभावित होकर चन्द्रगुप्त ने 335 ई में समुद्रगुप्त को राज्यभार सौंप दिया। समुद्रगुप्त के शासनकाल का अधिकांश समय विजययात्राओं में व्यतीत हुआ। दो विजययात्राएँ उत्तरी भारत की समूची राजशक्तियों को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए हुईं। तीसरी विजययात्रा के क्रम में उसने दक्षिण भारत की प्रायः सभी राजशक्तियों को पराजित किया। इन विजयों का उद्देश्य साम्राज्य विस्तार नहीं था। वरन् समुद्रगुप्त की सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करना रहा। इस प्रकार शासन की राज सीमाएं उत्तर भारत में

ही सीमित रखकर भी समुद्रगुप्त ने दक्षिणी शासकों, पंजाब, बंगाल, कामरूप, नेपाल, कुमायू, गढ़वाल आदि सीमावर्ती राज्यों को अपनी प्रभुसत्ता व प्रभाव में लेकर अश्वमेधयज्ञ किया जो उसके पराक्रम का उद्घोष था। वह युद्धों में कभी परास्त नहीं हुआ। अतः इतिहास में उसे भारतीय नेपोलियन कहा जाता है।

समुद्रगुप्त केवल एक कुशल सेनानी और विजेता ही नहीं वरन् शांति, प्रजावत्सलता और समृद्धि के क्षेत्र में भी अत्यन्त योग्य और निपुण था। वह बड़ा कलाविशारद, अच्छा संगीतज्ञ, उच्च कोटि का कवि और विद्वान था। साम्राज्य की बहुमुखी उन्नति का श्रेय उसे है। राष्ट्र निर्माता के रूप में वह भारतीय शासकों में बेजोड़ है।

सम्राट अकबर

पठानों के आक्रमणों ने भारत की राष्ट्रीय एकता को पुनः छिन्न भिन्न किया। लगभग 9 शताब्दी तक भारतीय राजनीति विशृंखल स्थिति में रही। सन 1556 में मुगल सम्राट हुमायूँ की जीवनलीला समाप्त होने पर अकबर तरह वर्ष की अल्पायु में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। मुगल साम्राज्य नाममात्र का ही था। चारों ओर गद्दी के दावेदार थे और अनेकानेक राजशक्तियाँ सिर उठाये हुए थीं। अकबर की असाधारण सैनिक प्रतिभा, अनुपम राजनैतिक सूझ और अद्भुत व्यावहारिक दूरदर्शिता ने सभी प्रतिद्वंदियों को परास्त किया और एक विशाल साम्राज्य का निर्माण करके उसे राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास किया। उसमें राष्ट्रीय संगठन ओतप्रोत था। शासन की प्रत्येक गतिविधि में राष्ट्रीय संगठन उसका लक्ष्य रहा और उसकी शासननीति ने साम्राज्य संगठन का एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया।

अकबर ने प्रथम दिल्ली राज्य के प्रतिद्वंद्वियों को अपने गुरू और सेनानायक बहरामखां की सहायता से परास्त किया। तदनन्तर भारत में विभिन्न राज्यों – काश्मीर, हिमालय की तराई के राज्य, सिंध, मुलतान, उड़ीसा, मालवा, गुजरात, बरार, गोलकुंडा, खानदेश, अहमदनगर, ग्वालियर, अजमेर, जौनपुर, गोंडवाना, अम्बर, चित्तौड़, रणथम्भौर

कालिंजर, बंगाल, बिलोचिस्तान पर एक एक करके विजय प्राप्त की। उसकी इस अद्भुत सफलता का श्रेय उसकी उदार नीति और राजपूतों से मैत्री को है। धर्म के संकीर्ण दायरा से बाहर निकलकर उसे उदार शासन नीति अपनाई। मुल्ला मौलवियों को प्रधानता न देकर योग्यता को राज्यपदों पर नियुक्ति का आधार बनाया। प्रजा को निष्पक्ष शासन दिया और राजपूतों की कन्याओं से विवाह करके अपना व्यक्तित्व सर्वजनीन प्रकट किया। यही कारण था कि धर्म के कारण उसे किसी वर्ग का विरोध नहीं मिला। इसी स्थिति के साथ राजपूत सेनानियों की शूरवीरता ने मुगल साम्राज्य को न केवल विस्तार दिया वरन् इसकी राष्ट्रव्यापी स्थिति सुदृढ़ भी बना दी।

अकबर मध्ययुगीय शासकों में अपना सानी नहीं रखता। वह राष्ट्रनिर्माता सच्चे अर्थों में कहा जाने योग्य है। उसे मध्ययुग में राष्ट्रीयता का पृष्ठपोषक कहना अत्युक्ति न होगी।

शिवाजी

अकबर के उत्तराधिकारी धार्मिक व्यवहारों और विचारों में उसकी भाँति उदार और निष्पक्ष नहीं हुए। राजदरबार में मुल्ला, मौलवियों का प्रभाव बढ़ता गया। हिन्दू जनता यह सोचने पर विवश हुई कि उसकी संस्कृति की रक्षा आवश्यक है। महाराष्ट्र के धार्मिक और सामाजिक विचारों ने जातिभेद को तिरस्कृत कर समाज में एकता का संदेश दिया। ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि संतों की पवित्र वाणी वातावरण में गूँज उठी। उधर मुगल सम्राट औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और अत्याचारों ने विद्रोह तथा विक्षोभ का वातावरण बढ़ाया। ऐसी परिस्थिति में मराठा संगठन के नेता शिवाजी का अभ्युदय हुआ।

बीजापुर राज्य के एक छोटे से जागीरदार शाहजी भोंसले के घर पूना जिले के शिवनेर दुर्ग में 10 अप्रेल सन् 1627 को शिवाजी का जन्म हुआ। माता जीजाबाई धर्मप्रिय थीं। शिवाजी के राज्यकार्य में व्यस्त रहने के कारण जीजाबाई के द्वारा ही उनकी शिक्षा दीक्षा की सँभाल हुई।

गुरु दादाजी कोणदेव तथा स्वामी समर्थगुरु रामदास की शिक्षाओं का शिवाजी पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। वे पवित्र विचार वाले संस्कृति के पोषक, गौ और धर्म के रक्षक, धार्मिक सहिष्णुता लिए साधु संतों और नारी जाति के रक्षक बने। उनमें अद्भुत संगठन शक्ति विकसित हुई। दक्षिण भारत के मुस्लिम राज्यों की सेना में अर्जित अनुभव वाली मराठा जाति को उन्होंने एकता के सूत्र में संगठित किया। उनमें अनुपम सैनिक प्रतिभा, अद्भुत राजनैतिक दूरदर्शिता, साहस, सौजन्य, निर्भीकता और अथक परिश्रमशीलता के गुण पल्लवित हुए। उनमें विद्याप्रेम और शासन योग्यता भी उच्चकोटि की पाई गई।

अपनी अनुपम शासन क्षमता के कारण शिवाजी मराठों में नवजीवन और चेतना का संचार करने में सफल हुए। हिंदुपद पादशाही के स्वप्न साकार करने में वे एक सशक्त मराठा राज्य की स्थापना कर सके। अपने राजनैतिक चातुर्य और प्रबन्ध कौशल से उन्होंने जिस सुदृढ़ राज्य की नींव डाली, उसकी धाक परवर्ती मराठा शासकों के समय एक शताब्दी तक सम्पूर्ण भारत में छाई रही। शिवाजी ने संगठित राष्ट्रीय भावना का इस प्रकार भर दिया कि भारत की नस नस में उसका प्रभाव अनुभूत हुआ और उसको प्रभावहीन करने में कूटनीति निपुण अंग्रेजों को भी लोहे के चने चबाने पड़े।

लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी

अंग्रेजों की कूटनीति ने एक एक करके भारतीय शक्तियों को पराभूत किया और देशव्यापी अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य संगठन के पीछे राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं था वरन् अंग्रेजों की साम्राज्य लिप्सा थी। अतः भारत की राष्ट्रीय, धार्मिक सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वस्थ परम्पराएँ शनैः शनैः क्षीण होती गई। हम पराधीनता के शिकंजे में फँसते चले गए। मराठा शक्ति के पतन (पानीपत का तीसरा युद्ध सन् 1761 ई.) के बाद लगभग एक शताब्दी पर्यन्त इसी क्रम में भारतीयता विलुप्त होती गई। सन् 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजी दासता से मुक्त होने का एक प्रबल प्रयत्न था परन्तु समय ने साथ नहीं दिया। पराधीनता

की बेडियाँ और भी व्यापक और जटिल हो गई। इस पराजय ने यह भी प्रगट कर दिया कि शक्ति के बल पर अंग्रेजी साम्राज्य से भारतीय शक्तियाँ लोहा लेने में असमर्थ है।

अतः विचारकों तथा सुधारकों ने भारतीय जनजीवन को सामाजिक कुप्रथाओं से मुक्त कराने का आन्दोलन प्रारम्भ किया। राजा राममोहनराय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती ने सामाजिक चेतना और धार्मिक पुनर्जागरण का शंखनाद किया। पुनर्जागरण की इस वेला में राजनैतिक हीनता का भी अनुभव हुआ और पराधीनता से मुक्त होने के लिए भारतीय आत्मा छटपटाने लगी। शक्ति के माध्यम से इसकी सफलता संदिग्ध अनुभव करके सन् 1885 में भारतीय नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रथम शासन में यथेष्ट अधिकार पाना मात्र लक्ष्य रहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में महाराष्ट्र में एक राष्ट्र नेता का उदय हुआ जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य की पराधीनता से मुक्त होने का मंत्र दिया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने हुंकार की "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"। नेशनल कांग्रेस की भावना इस मंत्र से अभिषिक्त हुई। परन्तु केवल शिक्षित वर्ग के एक भाग की भावना से स्वराज्य मिलना संभव नहीं था। भारत के जन जन तक इस भावना को पहुँचने का अभी तक अवसर नहीं आया था

सन 1914 ई मे मोहनदास करमचंद गाँधी अफ्रीका से लौटकर भारत आए। सौराष्ट्र में पोरबन्दर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर सन् 1869 ई मे इनका जन्म हुआ था। बाल्यकाल से ही चरित्र और व्यवहारिक ज्ञान की उज्जवलता की ओर ये आकर्षित हुए। हाई स्कूल परीक्षा पास करके बरिस्ट्री पास करने के लिए वे इंगलैण्ड गए। लौटकर उन्होंने वकालत प्रारम्भ करदी। सन 1892 ई मे उन्हें पोरबन्दर की एक कम्पनी के कार्यवश दक्षिण अफ्रीका जाने का अवसर मिला। दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयों की दयनीय दशा और रंगभेद की नीति ने उन्हें द्रवीभूत कर दिया। उन्होंने राजनैतिक संघर्ष का निश्चय कर लिया परन्तु एक नवीन और विचित्र ढंग से। इस नए ढंग को सत्याग्रह का नाम दिया गया। अंग्रेजो के अत्याचारों

का विरोध करने तथा भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने हेतु उन्होंने 1894 ई में "नेटाल इंडियन कांग्रेस" की स्थापना की। लम्बे संघर्ष के पश्चात सन् 1914 में सरकार को गांधीजी से समझौता करना पड़ा। गांधीजी का सत्याग्रह सफल हुआ। उनकी कीर्ति चमक उठी। सन् 1914 में भारत आकर गांधी ने यहां की राजनीति में प्रवेश किया।

गांधीजी का आदर्श महान था। वे भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरोधी थे परन्तु मानवता के प्रश्न पर अंग्रेजों के भी मित्र। इसी कारण अंग्रेजों के लिए संकट की घड़ियों में विश्वयुद्ध में उन्होंने भारत के सभी साधनों से अंग्रेजों की सहायता देने की नीति प्रगट की। युद्ध की समाप्ति पर आशा के विपरीत स्वायत्तशासन के स्थान पर दमन और नृशंसता के प्रहार अंग्रेजी साम्राज्य की शक्तियों ने भारतीय स्वतन्त्रता की भावनाओं को कुचलना चाहा। भारतीय क्रोधाग्नि भड़क उठी। गांधीजी ने अफ्रीका में प्रयुक्त सत्याग्रह को इस देश के संघर्ष का भी साधन बनाया। भारतीय जनता को आज़ादी के लिए बलिदान देने का आह्वान किया गया। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन, सन् 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सन् 1942 में करो या मरो आन्दोलन गांधी जी के नेतृत्व में तीन संघर्ष थे जिनसे जूझकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सत्ता हतप्रभ हो गई और देश का बच्चा बच्चा गांधीजी को न केवल राष्ट्रपिता वरन् अलौकिक शक्ति का अवतार मानने लगा। गांधीजी जन जन की भावनाओं के पूज्य बन गए। लोकमान्य तिलक का मंत्र 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' भारत के घर घर में गूँज उठा। कांग्रेस अब शिक्षित वर्ग मात्र की नहीं अपितु राष्ट्रीय संस्था बन गई। यह सब गांधीजी के राजनैतिक आन्दोलनों तथा भारत के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के लिए संचालित रचनात्मक कार्यक्रमों का ही परिणाम था। उनका स्वदेशी आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन हिन्दुस्तानी आन्दोलन, बेसिक शिक्षा आन्दोलन भारत के सामान्य जीवन को सभी दृष्टियों से नवचेतना के राष्ट्रीय सूत्र में आबद्ध करने का महान प्रयास था। वे निस्संदेह राष्ट्रपिता हैं। भारत राष्ट्र के जनक, हमारी संगठन शक्ति के प्रेरक और उद्बोधक। गांधीजी का व्यक्तित्व अद्वितीय साधना और सफलता का व्यक्तित्व है।

राज्याधिकार अथवा किसी राज्याधिकारी के समर्थन बिना राष्ट्रीय चेतना को प्रेरित करना गांधीजी की अनन्य उपलब्धि है।

सरदार वल्लभभाई पटेल

महात्मा गांधी ने भारतीय राष्ट्र को चेतना दी, साम्राज्यवादी सरकार से संघर्ष करने के नवीन प्रयोग और साधन बनाए और भारत को स्वतन्त्रता के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया, किंतु स्वाधीनता का यह स्वप्न साकार होकर भी स्वप्नवत ही रह जाता यदि अंग्रेजी कूटनीति की देन खंडित राज्य शक्ति का निराकरण नहीं किया जाता। स्वतन्त्र भारत के प्रथम उप प्रधानमन्त्री तथा गृहमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस कार्य को सपन्न कर राष्ट्र निर्माताओं की कड़ी में अपना नाम जोड़ा।

परिस्थितियों के आग्रह और चेतना की तीव्रता ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर विवश किया तथापि संवैधानिक स्थिति में वे भारत में लगभग 625 देशी राज्यों को स्वतंत्र राज्यसत्ता घोषित कर गए और विभाजन का कुचक्र पाकिस्तान का पृथक अस्तित्व पैदा कर गया। धर्म के नाम पर दो राष्ट्रों के सिद्धान्त ने प्रत्यक्ष में तो पाकिस्तान को भारत से पृथक राज्य घोषित किया ही, साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण भारत में एकता की भावना विशृंखलित करदी। इसी प्रकार देशी राज्यों के पृथक पृथक अस्तित्व में भारत की स्वतन्त्रता राजनतिक ज्वालामुखी पर बैठी दिखाई दी। सरदार वल्लभभाई पटेल ने न केवल इस ज्वालामुखी को शांत किया वरन् बिखरी हुई राज्यों की शक्ति को पाकिस्तान के चंगुल से बचाते हुए एकीकरण के सूत्र में इस प्रकार पिरोया कि काश्मीर से कन्याकुमारी तथा असम से पश्चिम में सौराष्ट्र और पंचनद प्रदेश तक सम्पूर्ण भारत भूमि राजनतिक एकता की दृढ़ता में आबद्ध हो गई। राजनतिक एकता का यह स्वरूप भारत के इतिहास में अभूतपूर्व है। इसका श्रेय सरदार वल्लभ भाई पटेल को है जिनकी दृढ़ता ने भारतीय नरेशों को राष्ट्रहित विचारने पर विवश किया। भौगोलिक दृष्टि से क्षेत्रिय एकता वाले राज्यों के संघ बनाकर अन्य भारतीय प्रदेशों की भांति उन्हें राजनतिक और संवैधानिक शासन स्तर दिया गया। राजाओं को प्रीवीपर्स के रूप में पारिवारिक व्यय के लिए राशि दी गई तथा उनके

सम्मान की रक्षा विशेषाधिकारों की स्वीकृति द्वारा की गई। एक एक करके छोटे बड़े सभी नरेशों ने समर्पण किया। जिन्होंने समय की गति को नहीं पहचान कर विरोध किया उनके साथ साम, दाम व वाद दण्ड और भेद नीति प्रयोग की गई। परन्तु राष्ट्र का एकीकरण किसी भी कीमत पर अधूरा नहीं छोड़ा गया। सरदार पटेल की इस नीति की दृढ़ता ने उन्हें 'लौहपुरुष' की प्रशस्ति प्रदान की। निस्सदेह सरदार पटेल राष्ट्र निर्माताओं की कड़ी में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व रखते हैं।

वल्लभभाई पटेल का जन्म सन् 1875 ई० में गुजरात के एक सामान्य किसान परिवार में हुआ था। आप बचपन से ही बड़े मधावी, मेहनती, सकल्पी तथा लग्नशील थे। परिवार की सामान्य स्थिति के कारण कुछ दिन मुख्तार का काम किया फिर विलायत से बैरिस्ट्री पास कर आये। रौलट एक्ट के विरोध में आपने वकालत छोड़ दी। आप स्वतन्त्रता आंदोलन में कूद पड़े और गाँधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया। सन् 1926 ई० में ब्रिटिश सरकार ने बारडोली के किसानों पर लगान बढ़ा दिया। किसानों ने आपके नेतृत्व में सत्याग्रह किया, सत्याग्रह की सफलता का श्रेय वल्लभभाई पटेल के कुशल नेतृत्व को दिया गया। सरकार को झुकना पड़ा। महात्मा गाँधी ने वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि दी। स्वतन्त्रता संग्राम में वे गाँधीजी के दाहिने हाथ रहे। कई बार जेल भी गए परन्तु कठिन से कठिन कार्यों के करने में भी कभी साहस की कमी प्रगट नहीं होने दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् वे भारत के मन्त्रीमण्डल में उपप्रधानमंत्री बने और राष्ट्र के राजनैतिक एकीकरण का अभूतपूर्व कार्य सम्पन्न किया।

□□

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की एकता के अमर सन्देशवाहक

भारत के दुर्ग

विश्व मे मानव की संस्कृति एवं सभ्यता के विकास के सुनिश्चित इतिहास का यदि सम्यक रूप मे आकलन किया जाय तो ज्ञात होगा कि मानव अपनी सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक काल में ही दुर्ग निर्माण के महत्व से परिचित हो गया था। मानव सभ्यता की आदि कथा के मौन गायक के रूप मे ऐसे अति प्राचीन दुर्गों के अवशेष आज भी इस धरा पर यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं।

हिन्दू भारत मे दुर्ग निर्माण

भारत की सभ्यता भी अपने उद्भव काल से ही दुर्गों की निर्माण कला और उसके महत्व से पूर्ण परिचित थी। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की क्रमबद्ध शृंखला ऋग्वदिक युग से प्रारम्भ होती है। वहीं से भारतीय दुर्गों का इतिहास भी प्रारम्भ हो जाता है। ऋग्वेद मे दुर्ग अथवा गढ के रूप मे पुर शब्द का उल्लेख किया गया है। उस समय के ये दुर्ग विशाल और सुदृढ हुआ करते थे। उनमे अन्नागार एव पशुशालाएँ भी निर्मित की जाती थी। वैदिक काल के दुर्गों मे लौह एव काष्ठ का खुलकर प्रयोग होता था। दुर्गों के चारों ओर जल से भरी हुई गहरी खाइयां होती थीं।

वैदिक काल के सुप्रसिद्ध स्मृतिकार महर्षि मनु ने विभिन्न प्रकार के दुर्गों का स्पष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। दुर्गों के प्रकार और

उनके निर्माण के बारे मे प्राचीन सस्कृत ग्रथों यथा महाभारत, कौटिल्य के अथशास्त्र, शिल्पशास्त्र, शुक्र नीतिसार और मुक्ति कल्पतरु मे भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्था के अनुसार दुर्गों के कुछ भेद इस प्रकार हैं

1 वनदुग, 2 मरुदुग, 3 जलदुग, 4, गिरिदुग, 5 मिश्रदुग और 6 न दुग। शिल्पशास्त्र मे गिरि दुग के भी तीन प्रकार बताए गये हैं—

(क) आतर गिरि दुग, (ख) गिरि पाश्व दुग, (ग) गुहा दुग।

वनदुग भयकर कटकाकीण जगल के मध्य एक योजन अर्थात् दो मील लम्बा व चौडा बनाया जाता था। मरुदुग मरस्थल म निर्मित किया जाता था। जलदुग गहरी झील तालाब अथवा समुद्र मे बनाया जाता था। गिरि दुग पवत की चोटी पर समतल भूमि पर बनाया जाता था। महर्षि मनु ने गिरि दुग का सवश्रेष्ठ बताते हुए लिखा है कि उस तक पहुँचने का माग सकरा और वृक्षा से घिरा हुआ हाना चाहिये। यह आतर गिरि दुग कहलाता था। गिरि पाश्व दुग का निर्माण पवत के ढाल पर किया जाता था। पवत की गहरी घाटिया मे गुहा दुग बनाय जात हैं।

महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण म चार प्रकार क उत्कृष्ट दुर्गों का वणन उपलब्ध है। प्रथम नादेय दुग जो चारा ओर स समुद्र अथवा नदी की धाराओं से घिरा होता था। राक्षसराज रावण का लका दुग इसी प्रकार का दुग था। कन्याकुमारी अन्तरीप के दक्षिण पूव म यह चारा ओर समुद्र स घिरे हुए त्रिकूट पवत पर बना हुआ था। इसकी दीवारो पर विशाल लौह यन्त्र लगे हुए थे, जिनस शत्रु पर अस्त्र प्रक्षेपण किया जाता था। ऐसे दुग का प्रवेश द्वार चट्टानें काटकर बनाया जाता था। वानरराज बाली की राजधानी किष्किधा दुग इसी प्रकार का पवतीय दुग था। तृतीय वन्य दुर्ग थे, जा दुगम वन के मध्य म बन होत थ। दण्डकारण्य म बन हुए दुर्ग प्राय वन्य दुग थे। चतुथ मदानी दुर्ग थे, जो सुदृढ रक्षा व्यवस्था के साथ खुले हुए समतल और विस्तृत मदान म निर्मित किय जाते थे। भगवान राम की राजधानी अयोध्या का दुर्ग अपने काल का सवश्रेष्ठ मदानी दुर्ग था।

ईसा से 326 ई० पूर्व यूनान के शासक अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमांत पर अनेक महत्त्वपूर्ण दुर्ग थे। मौर्य युग मे अनेक सुदृढ दुर्गों का निर्माण किया गया था। मौर्यों की राजधानी पाटलीपुत्र उस काल का श्रेष्ठतम रक्षात्मक दुर्ग था।

मुस्लिम भारत मे दुर्ग निर्माण

मध्य युग म भारत मे दुर्गों का महत्त्व अत्यधिक बढ गया था। निरतर मुस्लिम आक्रमणो से त्रस्त राजपूतो म दुर्गों की रक्षा व्यवस्था म अनेक सुधार किये। इस काल म दुर्ग के सिंहद्वार की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कुछ दूरी पर घुमाव देकर एक द्वार और बनवाया जाता था। द्वार के विशाल फाटको मे दो फुट लम्बे लोहे के कीले लगे रहते थे। दुर्ग दीवार 15 स 20 तक चौडी होती थी जिन पर दो घुडसवार एक साथ चल सकते थे। दीवारो मे जगह जगह गोलाकार बुर्ज बन होते थे। दीवारो के ऊपर के कगूरो मे छिद्र बन होते थे, जिनमे नीचे शत्रु की गतिविधियाँ देखी जा सकती थी तथा उस पर तीर, गोले, प्रस्तर खण्ड एव गम तल आदि स आक्रमण किया जा सकता था। दुर्ग म जलाभाव को दूर करन हेतु तालाबो का भी निर्माण किया जाता था।

इस युग म कई मुस्लिम शासको न अनक भव्य दुर्गों का निर्माण कराया। निर्माण व्यवस्था अधिकाश रूप म हिन्दू शली पर ही आधारित थी। इस युग म राजस्थान व महाराष्ट्र मे सबसे अधिक दुर्गों का निर्माण किया गया। हिन्दू पादशाही के सस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज न मरहठा साम्राज्य क अ तगत अनक सुदृढ और भव्य दुर्गों का निर्माण कराया। जब शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ उस समय व 240 दुर्गों क स्वामी थे।

ब्रिटिश भारत मे दुर्ग निर्माण

भारत म अग्रेजी राज्य की स्थापना क दम शिथिलता आ गई। इस युग म प्रारम्भ

कैलकत्ता, मद्रास व बम्बई में योरोपीय शैली पर आधारित मैदानी दुर्गों का निर्माण कराया। फ्रांसीसियों व पुर्तगालियों ने भी अपने अपने अधिकार क्षेत्र में छोटे मोटे दुर्गों की नींव डाली। यदि इन्हें दुर्ग न कहकर व्यापारिक कोठियाँ ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

आधुनिक युग में वायुयान के आविष्कार के पश्चात् दुर्गों का महत्व समाप्त हो गया है। किन्तु प्राचीन भारतीय संस्कृति व सभ्यता के अमर सरक्षक के रूप में हम भारतीय इतिहास में इन दुर्गों के योगदान को कभी नहीं भुला सकते। भारत के प्राचीन दुर्ग अब केवल खण्डहर मात्र रह गये हैं फिर भी इनके दर्शन से भारत के गौरवमय अतीत के भव्य एवं जीवित चित्र हमारे नेत्रों के सम्मुख साकार हो उठते हैं।

राजस्थान के दुर्ग

विश्व में सबसे अधिक दुर्ग भारत में हैं। उसमें भी राजस्थान में दुर्गों की संख्या अत्यधिक है। इस वीर प्रसूभूमि में अरावली की प्रत्येक चोटी पर हमें विशाल दुर्ग अथवा गढ़ी के दर्शन होते हैं। राजस्थान को यदि दुर्गों का देश कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। राजस्थान के दुर्गों में सामान्य रूप से निम्न विशेषतायें देखने को मिलती है, जो इस प्रकार है

1 राजस्थान के लगभग सभी दुर्ग गिरि दुर्ग हैं।
2 प्रायः सभी दुर्गों के चारों ओर चौड़ी खाइयाँ हैं।
3 सभी दुर्ग पहाड़ की चोटी पर समतल मैदान को घेर कर बनाये गये हैं।
4 सभी बड़े दुर्गों में शस्त्रागार, अन्नागार, घुड़साल, सैनिक निवास तथा महल आदि भवन बने हुए हैं।
5 मिट्टी से निर्मित भरतपुर के दुर्ग को छोड़कर प्रायः सभी दुर्ग पाषाण खण्डों से निर्मित हैं।
6 सभी बड़े दुर्गों में एक से लेकर सात तक प्रवेश द्वार पाये जाते हैं। इन द्वारों के किवाड़ों में लम्बी लम्बी लौह शलाकायें जड़ी रहती हैं।

7 इन प्रवेश द्वारों की सबसे बडी विशेषता यह है कि प्रवेश का मार्ग इस प्रकार घुमावदार है कि उसमे बने हुए विभिन्न प्रवेश द्वार परस्पर दिखाई नहीं देते ।

8 राजस्थान के सभी दुर्गों म मन्दिरों का निर्माण किया गया है।

वीरो का तीर्थ चित्तौड दुर्ग

"गढ तो चित्तौडगढ और सब गढैयाँ"

चित्तौड का दुर्ग भारत के मध्ययुगीन इतिहास मे स्वदेशाभिमान की रक्षार्थ किय जान वाले युद्धो तथा जौहर व्रत के कारण अपना शीर्ष स्थान रखता है । यह दुग देश के गौरव का प्रतीक है । अजमेर से खण्डवा जाने वाली पश्चिमी रेलवे लाइन पर स्थित 'चित्तौडगढ' रेलवे स्टशन से चार मील दूर धरातल स 500 फीट ऊँची पहाडी पर यह दुर्ग स्थित है । यह समुद्रतल से 1850 फीट ऊँचा है । गिरि दुर्गों म चित्तौड का विशाल दुर्ग श्रेष्ठतम माना गया है । यह साढे तीन मील लम्बा और आधा मील चौडा है । दुर्ग मे पहुँचन के लिए सात द्वार—भैरोपोल, पाडलपाल, हनुमानपोल, गणेशपाल, जोडलापोल, लक्ष्मणपोल और रामपोल—पार करने पडत हैं । प्रथम द्वार भैरोपाल है, उसी क पास जयमल पत्ता की छतरियाँ बनी हुई है । सम्राट अकबर के शासन काल म चित्तौड म आयाजित तृतीय शाके (जौहरव्रत) क समय हाने वाले युद्ध म य दाना वीर स्वतत्रता की बलिवदी पर न्यौछावर हुए थे ।

मध्ययुग म इस दुर्ग की दीवारे व बुज इतने सुदृढ थे कि उन पर ताप के गाला का काई प्रभाव नही हाता था । मेवाड के वीर महाराणा न इसके अन्दर रहकर शत्रुआ के हौसल पस्त किय थे । हिंदू कुलसूय महाराणा प्रताप की अमर कीर्ति इस दुग के साथ जुडी है ।

ऐसी मान्यता है कि इस दुर्ग का निर्माण हिन्दू भारत के मौर्यवशी राजा चित्रागद ने कराया था । इसी स इसका नाम कालातर म चित्रकूट हुआ और फिर बिगडकर चित्तौड हुआ । सन् 734 ई० म गुहीलवशी राजा बाप्पा रावल न चित्तौड पर अधिकार कर लिया।

दुर्ग मे ऐतिहासिक स्मारक एव स्थल है जो राजपूत सस्कृति के गौरवमय अतीत की सुन्दर झाँकी कराते हैं। इनमे महाराणा कुम्भा के महल भामाशाह का महल, पन्नाधाय का महल, पद्मिनी का महल, जौहर स्थल, मीरा मन्दिर, सती देवरा, जैन मन्दिर, कीर्ति स्तम्भ, विजय स्तम्भ, कालिका व अम्बिका के मन्दिर, समिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर आदि प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल हैं। भीमगोडी, सूर्यकुण्ड, गोमुख आदि दुर्ग के प्रसिद्ध जलाशय हैं।

कीर्ति स्तम्भ 75 फीट ऊँचा तथा सात मजिला भवन है, जो जैन तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की स्मृति म जीजाजी नामक बघेरवाल वैश्य ने निर्मित कराया था। सन् 1440 ई० मे मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष म महाराणा कुम्भा ने एक विशाल विजय स्तम्भ का निर्माण कराया था। 122 फीट ऊँचा तथा नौ मजिला यह स्तम्भ भवन उस युग की हिन्दू (राजपूत) वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है। यह भारत ही नही वरन् विश्व का बेजोड स्तम्भ है। विजय स्तम्भ मे ऊपर तक पहुँचने के लिए 127 सीढियाँ चढनी पडती हैं। यह स्तम्भ मध्य मे 30 फीट चौडा और ऊपरी मजिल म 40 फीट चौडा है। यह अद्भुत और भव्य स्तम्भ उस युग म महाशिल्पी जैता के निरीक्षण मे 90 लाख रुपया म निर्मित हुआ था इसकी कलात्मक दीवारो पर पौराणिक देवी, देवताओ की सुन्दर मूर्तियाँ अकित की गई हैं। सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता डॉ० सत्यकेतु विद्यालकार के शब्दों मे ससार के सर्वोत्तम कीर्ति स्तम्भा म इसकी गणना की जा सकती है।

फतेहप्रकाश बीसवी शताब्दी म निर्मित महल है।

अजमेर का तारागढ़

राजस्थान के इतिहास मे अजमेर के तारागढ का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। तारागढ दुर्ग अजमेर के शीष पर मुकुट की भाँति सुशोभित है। यह अजमेर नगर के दक्षिण पश्चिम म समुद्रतल से 2855 फीट तथा

पृथ्वीतल स लगभग 100 फीट ऊँचे बीठनी नामक पहाड पर बना हुआ है। इस कारण यह दुर्ग गढ बीठली के नाम से भी जाना जाता है।

सातवीं शताब्दी में चौहान राजा अजयपाल ने इस ऊँचे पहाड पर अजयमेरू नामक सुदृढ दुर्ग का निर्माण कराया। सन् 1505 ई० मेवाड के महाराणा रायमल के पुत्र कुँवर पृथ्वीराज ने इस दुर्ग में कुछ नये महलों का निर्माण कराया और अपनी पत्नी ताराबाई के नाम पर इस दुर्ग का नाम तारागढ रखा। घेरा लगभग दो मील का है। इसमें पहुँचने के लिए कई प्रवेश द्वार हैं जिनमें लक्ष्मणपोल, भवानीपोल, अरकोट का दरवाजा, फूटा दरवाजा और बडा दरवाजा मुख्य है। दुर्ग की बुर्जें बडी मजबूती से बनाई गई हैं। इनमे शृंगार चवरी, घूँघट बुर्ज, नगारची बुर्ज और फतहबुर्ज आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। तारागढ सीधे और ऊँचे पहाड पर निर्मित किया गया है, अत ऊपर पहुँचने वाले मार्ग बडे सकरे और ढालू हैं।

महाराज धमगज देव के राज्यकाल मे सवप्रथम महमूद गजनवी ने सन् 1024 ई० मे इस दुर्ग पर आक्रमण किया किन्तु घायल हो जाने से वह इसे जीत न सका। सन् 1192 ई० तराइन के युद्ध मे पृथ्वीराज चौहान के हार जाने पर इस दुर्ग पर मोहम्मद गोरी न अधिकार कर लिया था। यह दुर्ग गुलामवंश के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक का शरण स्थल भी रहा है। वह गुजरात के शासक भीमदेव से हारकर उत्तर की ओर भागा और उसने इसी दुर्ग मे आकर शरण ली। उत्तराधिकार के युद्ध मे हारकर शाहजादा दाराशिकोह ने भी तारागढ मे आकर शरण प्राप्त की थी। कालान्तर म दुर्ग पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया। सन् 1832 ई० मे अंग्रेजी प्रशासन न अपनी नसीराबाद छावनी की सना के आन जाने के लिए एक घुमावदार चौडे और सीधे मार्ग का निर्माण किया। भारतीय इतिहास के निर्माण म अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाला यह दुर्ग आजकल खण्डहर बना हुआ है।

अनेक आक्रमणों के कारण दुर्ग के प्राचीन भवन नष्ट हो चुके हैं। फिर भी खण्डहर रूप मे जो कुछ शेष हैं वह कचहरी नामक भवन है इससे

उस काल के स्थापत्य का ज्ञान होता है। दुर्ग में सबसे ऊँचे स्थल पर मीरा (मीरान) साहब की दरगाह है। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार एक वीर योद्धा मीरान सैइयद ने सन् 1202 ई० में दुर्ग की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान किया था। ऐसी महान् आत्मा की पुण्य स्मृति में इस दरगाह का निर्माण किया गया। इसका बुलन्द दरवाजा, आँगन और दालान मध्ययुग में स्थापत्य के सुन्दर नमूने हैं। बादशाह अकबर की भी इस दरगाह के प्रति प्रति बडी श्रद्धा थी। आज भी प्रतिवर्ष सहस्रों श्रद्धालु मुसलमान इस दरगाह के दर्शन करने आते हैं। दरगाह का प्रबन्ध शिया मुसलमानों के हाथ में है।

रणथम्भौर का दुर्ग

रणथम्भौर का दुर्ग चित्तौड के बाद भारत में अपनी सुदृढ़ रक्षा व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध रहा है। पश्चिम रेलवे के दिल्ली कोटा मार्ग पर सवाईमाधोपुर रेलवे स्टेशन से आठ मील दक्षिण पूर्व में अरावली की ऊँची व बीहड पहाडियों के बीच एक 1578 फीट ऊँची पहाडी पर रणथम्भौर का सुप्रसिद्ध दुर्ग स्थित है। सन् 944 ई० के आसपास सपादलक्ष के चौहान राजपूतों ने इस दुर्ग का निर्माण कराया था। शिल्पशास्त्र के अनुसार यह गिरि दुर्ग है। दुर्ग के चारों ओर की ऊँची पहाडियाँ एक सुदृढ़ दीवार का कार्य करती हैं। दुर्ग की प्राचीरें आठ मील के घेरे में है जो काफी चौडी व सुदृढ़ है। इनमें अनेक बुर्जें हैं। दुर्ग में पहुँचने के लिए सात प्रवेशद्वार पार करने पडते हैं, जिनमें मोर दरवाजा, बडा दरवाजा, नौलखा दरवाजा और गणेशपोल आदि मुख्य है। मध्ययुग में इस दुर्ग की दीवारों पर रक्षा के लिए विशेष यन्त्र लगे हुए थे। इनसे दूर दूर तक विशाल प्रस्तर खण्डों में प्रक्षेपण किया जा सकता था।

मुस्लिम शासकों में कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश बलबन, अलाउद्दीन खिलजी तथा अकबर ने इस दुर्ग पर आक्रमण किये थे। सन् 1300 ई० में जब अलाउद्दीन खिलजी ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया, उस समय महाराज हमीर स्वतन्त्र शासन कर रहे थे। दिल्ली के एक मुस्लिम सामंत को शरण

दन के कारण अलाउद्दीन से संघर्ष मोल लेना पड़ा। इस युद्ध में मुस्लिम सामंत की रक्षा के लिए राजपूतों को अपना बलिदान तथा राजपूत वीरांगनाओं को जौहर व्रत का पालन करना पड़ा। 11 जौलाई 1301 में दुर्ग दिल्ली शासन के अंतर्गत आया। सन् 1569 ई० में सम्राट अकबर ने इस पर अधिकार किया था।

दुर्ग में अनेक भवन हैं। इनमें हमीर का महल, बारहदरी, 32 स्तम्भों वाली छतरियाँ, शिवजी तथा गणेशजी के मंदिर दर्शनीय स्थल हैं। हमीर का महल 13वीं सदी की हिन्दू शिल्पकला का सुन्दर नमूना है। यह लाल पत्थर से निर्मित है। दुर्ग में अनेक तालाब है, झरने हैं। गणेशजी की मूर्ति दुर्ग निर्माण के समय भूगर्भ से प्राप्त हुई हैं। गणेश चतुर्थी पर प्रतिवर्ष यहाँ एक भारी मेला लगता है। रणथम्भौर के गणेशजी की सारे राजस्थान में बड़ी मान्यता है। मांगलिक अवसरों पर सर्वप्रथम यहाँ के विघ्न विनाशक गणेशजी को ही आमन्त्रित किया जाता है।

अम्बर का दुर्ग

"जय जय शक्ति शिलामयी जय जय गढ़ आम्बर"

— कवि पद्माकर'

अम्बर का दुर्ग राजस्थान की राजधानी तथा गुलाबी नगरी जयपुर से लगभग सात मील पूर्व में धरातल से 400 फीट ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। दुर्ग की स्थापना से पूर्व ही पर्वत की सुन्दर उपत्यका में आम्बेर (वर्तमान आमेर) नगर बसा हुआ था। विश्व प्रसिद्ध पर्यटक व प्रकृति प्रेमी श्री हेबर वेजेक्यूमेट ने इस स्थान को प्रकृति का अटूट खजाना कहकर सम्बोधित किया है। किंवदंती है कि अयोध्या नरेश मानधाता के पुत्र महाराज अम्बरीष ने यहाँ अम्बिकेश्वर महादेव की स्थापना की थी। इस कारण यह अम्बरीष नगर ही कालांतर में अम्बर तथा आम्बेर के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

दूसरी जनश्रुति के अनुसार कछवाहा राजपूत नरेश काकिल ने सुसावत (आधुन) मीणाओं को, जो भील जाति की एक शाखा थे, हराकर सन् 1150

ई० म अम्बर के दुर्ग की नीव रखी थी। उसने अम्बिकादेवी के नाम पर इसका नाम अंबिकापुर रक्खा जो आगे चलकर आम्बेर कहलाया। मुस्लिम इतिहासकार ने भी इसे अम्बर के नाम से ही पुकारा है। प्रारम्भ से आज तक यह दुर्ग जयपुर के शासको के ही अधिकार मे बना रहा।

यहाँ के राजप्रसाद व उद्यान राजपूत स्थापत्य कला के उत्कृष्ट और भव्य नमूने हैं। इस दृष्टि से ग्वालियर दुर्ग के बाद इस दुर्ग का दूसरा स्थान है। दुर्ग के महल राजा मानसिंह ने निर्मित कराये थे। दीवाने आम व दीवाने खास का निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह ने कराया था। इनमे मुगल शैली का प्रभाव झलकता है। शीशमहल का सौन्दर्य तो देखने ही योग्य है। राजप्रासाद मे जालीदार झरोखे, भव्य कक्षो की नक्काशी तथा पच्चीकारी राजपूत कला के वैभव के सुन्दरतम उदाहरण हैं। महल के कलात्मक प्रवेश-द्वार गणेशपोल पर भगवान गणेश की मंगलमयी मूर्ति प्रतिष्ठापित है। दुर्ग मे शिलादेवी और अम्बिकेश्वर महादेव के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। शिलादेवी की प्रतिमा संगमरमर के भव्य मन्दिर मे प्रतिष्ठित है।

दुर्ग की रक्षा करने की दृष्टि से इसके नीचे एक मनुष्यकृत मावठा नामक झील है।

अम्बर दुर्ग से लगभग सौ फीट और अधिक ऊँचाई पर जयगढ नामक एक और दुर्ग है। इसमे कभी जयपुर राज्य का खजाना रक्खा जाता था। यह अम्बर दुर्ग की रक्षा करने की दृष्टि से बनाया गया था। इसमे जय मन्दिर दर्शनीय है।

भरतपुर का दुर्ग

भरतपुर राज्य के संस्थापक चूड़ामन जाट के पौत्र तथा महाराज बदनसिंह के वीरपुत्र महाराज सूरजमल ने सन् 1733 ई० मे खुले मैदान मे भरतपुर के सुप्रसिद्ध स्थल दुर्ग की नीव रखी थी। मध्यकाल के लगभग सभी दुर्ग सुरक्षात्मक दृष्टि से पहाड़ो पर बनाये जाते थे। किन्तु यह सूरजमल जैसे वीर योद्धा का ही साहस था कि उसने मुगल साम्राज्य की राजधानी दिल्ली

की ठीक नाक के नीचे खुले मदान मे मिट्टी का दुर्ग निर्मित कराया और महाराजा की उपाधि ग्रहण की।

भरतपुर का नगर आठ मील के क्षेत्र में धूलकोट से घिरा हुआ है। दुर्ग की प्राचीरा के चारो ओर 150 फीट से 200 फीट चौडी व 50 फीट गहरी खाई है। यह कभी मोती झील के जल से भरी रहती थी। खाई से निकली हुई मिट्टी और गोबर के योग से अनेक पर्तें चढाकर 20, 30 फीट चौडी दीवारें बनाई गइ, जिनमे घुसकर लोहे के गोले भी निर्जीव हो जाते थे। ये दीवारें जल के तल से 80 फीट ऊँची हैं और इसमे 40 बुर्जें बनी हुई हैं।

नगर के मध्य में एक प्रस्तर दुर्ग और बनाया गया है। इस दुर्ग के भी चारो ओर 150 फीट चौडी तथा 59 फीट गहरी खाई का निर्माण किया गया है। इस दुर्ग म 75 फीट ऊँची 11 बुर्जें हैं। 19वी सदी के प्रथम दशक मे ब्रिटिश भारत के प्रधान सेनापति लाड लेक ने इस दुग पर बार बार आक्रमण किया, किन्तु वह प्रत्येक बार पराजित हुआ। भरतपुर के गोलदाजो के अचूक निशानो ने अग्रेजी सेना के छक्के छुडा दिये। दुर्ग मे फतह बुज एक स्थान है जो अग्रेजी सेना से एक बार नष्ट होकर सहस्रो अग्रेजी सनिका के शवा पर पुन भरतपुर के वीर सनिको द्वारा निर्मित की गई, उस पर एक विशाल भीमकाय तोप रखी है। इस फतेहबुज को अग्रेज इतिहासकारो ने अग्रेज जाति के लिए राष्ट्रीय शम का स्थान कहकर आसू बहाए हैं। उक्त घटना के बाद से मिटटी की दीवारा से निर्मित वह दुर्ग व नगर अपनी अजेयता के लिए इतिहास मे लोहगढ के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

दुर्ग के अन्दर प्राचीन राजमहल, दरबारेखास, सिलहखाना, कोषागार नये महल व मन्दिर दशनीय स्थल हैं।

बयाना का दुर्ग

दिल्ली बम्बई रेलवे मार्ग पर स्थित बयाना का यह दुर्ग दमदमा नामक पहाडी पर स्थित है। ऐसी कथा है कि यह दुग बाणासुर न बनवाया

था जो प्राचीन काल मे वाणानगरी के नाम से प्रसिद्ध था। इसका बिगडा हुआ रूप ही बयाना हुआ। 11वी सदी म विजयपाल न दुर्ग के विशाल परकोटे के अन्दर एक विजय मन्दिर गढ नामक सुदृढ गढ का निर्माण कराया। दुर्ग मे भीमलाट, ऊलपा मन्दिर, अकबर की छतरी, जहाँगीरी बावडी आदि हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य के सुन्दर नमूने हैं।

जैसलमेर का दुर्ग

जसलमेर का दुर्ग अत्यन्त प्राचीन है। रावलजसलजी ने सन् 1155 ई० मे इस दुर्ग की स्थापना की। यह दुर्ग नगर के मध्य लगभग 250 फीट ऊँची त्रिकुट पहाडी पर आधे मील के घेरे मे बना हुआ है। परकोटे मे 99 सुदृढ बुर्जें हैं। प्रवेश मार्ग मे 4 द्वार हैं। दुर्ग राजपूती वास्तुकला की सुन्दर कृति है। इसम रगमहल, गजविलास और मोतीमहल व चामुण्डी देवी का मन्दिर आदि दर्शनीय स्थल हैं।

जोधपुर का दुर्ग

जोधपुर नगर के मध्य धरातल से 400 फीट ऊँची पहाडी पर यह भव्य दुर्ग बना हुआ है। सन् 1459 ई० म राव रणमल के पुत्र राव जोधा ने इसकी नीव रखी थी। दुर्ग मे लाल पत्थर के मनमोहक राजभवन मोतीमहल, फतेहमहल, फूलमहल और चामुण्डा माताजी का सुन्दर मन्दिर दर्शनीय है। फतेहपोल म लगे हुए फाटक अहमदाबाद से लूटकर लाए गए थे।

बीकानेर का जूनागढ

जागल देश मे इस दुर्ग की नींव 12 अप्रैल, 1488 म रावजोधा के वीरपुत्र राव बीका ने जगदम्बा करणी का आशीर्वाद प्राप्त करके डाली थी। यह दुर्ग रातीघाटी नामक ऊँची चट्टान पर स्थित है। दुर्ग के महलो की पच्चीकारी व सुनहरी चित्रकारी दर्शनीय है। यहाँ करणी सग्रहालय मे प्राचीन अस्त्र शस्त्र सग्रहीत हैं। दुर्ग मे दो प्रवेश द्वार है। मुख्यद्वार करणपोल कहलाता है।

राजस्थान के अन्य दुर्ग

उपर्युक्त इतिहास प्रसिद्ध दुर्गों के अतिरिक्त राजस्थान में सकड़ों दुर्ग और है, जिन्होंने आर्य संस्कृति की रक्षा में महान् योग दिया है। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण दुर्ग इस प्रकार हैं—मण्डोर दुर्ग, सिवाना दुर्ग, कुम्भलगढ भाणगढ शेरगढ, डीग का दुर्ग, कोटे का गढ, शाहबाद का किला, संत पीपाजी का गागरोन दुर्ग, बूँदी का तारागढ नाहरगढ (जयपुर), तिमनगढ, सुकेतापाटन का दुर्ग, माडल गढ, विजयगढ, शेरगढ (कोटा जिला) सज्जनगढ, वसंतगढ आदि।

अन्य राज्यों के महत्त्वपूर्ण दुर्ग

असीरगढ

असीरगढ नामक भारत प्रसिद्ध दुर्ग मध्यप्रदेश राज्य में है। मध्य रेलवे के दिल्ली बम्बई मार्ग पर खण्डवा रेलवे स्टेशन से 28 मील दूर तथा बुरहानपुर से 13 मील दूर सतपुड़ा पर्वतमाला की एक 800 फीट ऊँची चोटी पर यह दुर्ग स्थित है। मध्ययुग में सामरिक दृष्टि से इस दुर्ग का बड़ा महत्त्व था। उस काल में यह उत्तर व दक्षिण को मिलाने की मुख्य कड़ी था। इसके निर्माण के बारे में अभी तक विश्वसनीय वर्णन प्राप्त नहीं है। महाभारत में अश्वत्थामा की राजधानी के रूप में इस दुर्ग की स्थिति का पता चलता है। 'पृथ्वीराज रासो' में भी असीरगढ का उल्लेख हुआ है। तेरहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नर्मदा की घाटी में 'असि और हैहय' राजपूत राज्य कर रहे थे। संभवतः असि शासकों के नाम पर इस दुर्ग का नाम असीरगढ पड़ा हो। फरिश्ता एवं अन्य मुस्लिम इतिहासकारों का दूसरा मत यह है कि सन् 1370 ई. में आसा अहीर नामक व्यक्ति ने इस दुर्ग की नींव डाली थी अतः यह असीरगढ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रारम्भ में यह दुर्ग मिट्टी व पत्थर से निर्मित छोटी सी गढी था।

ऐसी कथा है कि आसा अहीर ने खानदेश के फारूखी सुल्तानों का सामना करने के लिए इस गढी का निर्माण कराया था। कुछ समय बाद सुल्तान नासिरखाँ ने आसा अहीर से एक चाल चलकर इस गढी पर अधिकार कर लिया। उसने आसा अहीर को सूचना भेजी कि वह अपने भाई मलिक

इबितखार से युद्धरत है अत वह इसके परिवार को अपनी गढी मे शरण दे दे। आसा राजी हो गया। नासिरखाँ ने अपने परिवार की आड मे कई डोलियों में बहुत से सनिक विठाकर गढी को भेजे। जब आसा नासिरखा के परिवार का स्वागत करने गढी के द्वार पर पहुँचा तो वहाँ एकत्र नासिरखा के सनिको ने उसे पकडकर मार डाला। गढी नासिरखा के हाथ म आ गई।

सन् 1418 ई मे गढी को युद्ध दुर्ग का रूप दिया गया। दुर्ग के हर कोण पर एक बुज का निर्माण किया गया। यह दुर्ग सन् 1600 ई फारूकी शासन के आधीन रहा। दुर्ग मे शिव मदिर तालाब तथा गुप्त कूप द्वार दशनीय है। 16वी शताब्दी मे असीरगढ एशिया व यूरोप म अपनी अभेद्यता के लिए प्रसिद्ध था तथा ससार का एक आश्चय माना जाता था।

ग्वालियर का दुर्ग

"ग्वालियर का दुग हिन्द के गले म पडी दुर्ग माला का एक उज्ज्वल मोती ह' एक महान इतिहासकार की यह उक्ति ग्वालियर के दुर्ग पर सटीक बठती है। मध्यप्रदेश राज्य के लश्कर नगर म प्रवेश करने से पूव ही इतिहास प्रसिद्ध ग्वालियर दुर्ग के दशन होते हैं। इस दुग का निर्माण लगभग 1500 वप पूव एक तीन सौ फीट ऊँची पहाडी पर राजा सूरजसेन द्वारा कराया गया था। पहाडी पर ग्वालियर नाम के महात्मा रहते थ। उनकी कृपा स राजा का कुष्ठ राग नष्ट हा गया था। अत उनकी स्मृति म उनकी आज्ञा से राजा सूरजसेन ने गोपागिरि नामक दुग बनवाया जा बाद म ग्वालियर हो गया। इस दुर्ग पर अनेक राजवशो का अधिकार रहा है।

दुर्ग के भव्य और कलात्मक महल 'मानमन्दिर' तथा 'गूजरी महल महाराज मानसिंह न बनवाये थे। कला पारखी फग्युसन न 'मानमन्दिर' को हिन्दू स्थापत्यकला का उत्कृष्ट नमूना बताया है। गूजरी महल मानसिंह न अपनी अनुपम सुन्दरी व वीरागना गूजरी रानी मृगनयनी के लिए बनवाया था। इन महलो के अतिरिक्त दुर्ग म बन हुए सास बहू के मन्दिर व तलगाना (तली) मन्दिर भारतीय शिल्प की अनोखी कृतियाँ हैं।

मुगल शासनकाल में ग्वालियर का दुर्ग शाही कारागार बना दिया गया था। औरंगजेब ने अपने भाई मुराद को बंद करके यहाँ रक्खा था। उस काल में जो भी बंदी यहाँ आया, वह जीता वापिस नहीं लौटा। केवल हिंदुओं के सिख गुरु श्री हरगोविंद जी महाराज ही सौ हिंदू राजाओं को साथ लिए वापिस जीवित लौटे थे। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद सन् 1886 ई. में अंग्रेजों ने इस दुर्ग को स्थाई रूप से ग्वालियर के मराठा शासक जियाजीराव सिंधिया को सौंप दिया।

गढ़ कुण्डार

झाँसी से लगभग 27 मील दूर हिंदी भाषा के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' की लीला भूमि यह दुर्ग एक पहाड़ की चोटी पर स्थित है। 15वीं शताब्दी में यह बुंदेले राजपूतों की राजधानी था। इस दुर्ग का द्वार विशाल व ऊँचा है। जिसमें नुकीली कीलों वाला फाटक है। इसके अंदर नौबतखाना, पाँच मंजिलों वाला महल कुण्ड, तालाब व बावड़ी आदि दर्शनीय हैं।

देवगिरि का दुर्ग

दक्षिण भारत के दुर्गों में देवगिरि का दुर्ग बहुत सुदृढ़ बना है तथा महाराष्ट्र का गौरव है। राजपूत राजा द्वारा निर्मित यह दुर्ग अपने अद्भुत निर्माण कौशल के लिए प्रसिद्ध है। यह बहुत ऊँचे पहाड़ पर बनाया गया है तथा लगभग 3 मील के घेरे में फैला हुआ है। दुर्ग के निर्माण के लिए पहाड़ इस प्रकार काटा गया है कि इस पर चींटी भी मुश्किल से चढ़ सकती है। प्रवेश द्वार से दुर्ग के चारों ओर 120 फीट चौड़ी तथा 90 फीट गहरी खाड़ बनी हुई है। प्रवेश द्वार से दुर्ग के अंदर पहुँचने का मार्ग पहाड़ के अंदर होकर गया है जो बड़ा टेढ़ा, खतरनाक और अंधकार युक्त है। मार्ग के मध्य में विशाल लोहे का तवा है जिसमें संकटकाल में आग जला दी जाती थी। उस समय शत्रु के लिए दुर्ग में घुसना कठिन हो जाता था।

रायगढ़

रायगढ़ का दुर्ग महाराष्ट्र राज्य के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। एक ऊँचे व दुर्गम पहाड़ पर इस दुर्ग का निर्माण 8, 9

सदी पूर्व किसी राजपूत नरेश ने बनवाया। बाद में इसी के ध्वस्त खण्डहरों को छत्रपति महाराज शिवाजी ने पुनः एक सुदृढ़ दुर्ग का रूप प्रदान किया। अपने 240 दुर्गों में से इसे ही उन्होंने अपनी स्थायी राजधानी बनाया और यहीं पर उनका राज्याभिषेक हुआ। दुर्ग में पहुँचने के लिये संकीर्ण एवं ऊबड़खाबड़ पगडण्डी ही एकमात्र साधन है। द्वार पर हनुमानजी की मूर्ति है। अन्दर मन्दिर व मस्जिद बने हैं। इनमें अनेक तालाब व बड़े-बड़े खेत हैं। शिवाजी महाराज की समाधि भी यहाँ पर है।

सिंहगढ़

महाराष्ट्र के मुख्य नगर पूना से १५ मील की दूरी पर एक ऊँचे पर्वत पर यह इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग बना हुआ है। पहले यह कोण्डाणा दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध था। शिवाजी के हमजोली और परमप्रिय मित्र वीर सेनानायक तानाजी मलसुरे ने मुगलों को हराकर इस पर अधिकार किया था, किन्तु उन्हें यह विजय अपना बलिदान देकर प्राप्त हुई थी। उस समय शिवाजी ने बड़े दुःख से कहा था कि किला एक तो हाथ आ गया, किन्तु सिंह चला गया। तानाजी जैसे सिंह की पुण्य स्मृति में शिवाजी ने इस दुर्ग का नाम सिंहगढ़ रख दिया।

सिंहगढ़ निर्माण की दृष्टि से बहुत सुदृढ़ है। इसमें दो प्रवेशद्वार हैं। प्रथम पूना द्वार और दूसरा कल्याण द्वार। इसकी दीवारें अत्यन्त ढलवां और खतरनाक हैं। मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में सिंहगढ़ की गिनती पश्चिम भारत के अजेय दुर्ग के रूप में की जाती थी।

पन्हालगढ़

महाराष्ट्र में कोल्हापुर नगर के दक्षिण में दस मील पर एक ऊँचे पहाड़ पर यह दुर्ग निर्मित है। 12वीं सदी के अन्त में शिलाहार वंश के राजा द्वितीय भोज ने इस दुर्ग का निर्माण कराया तथा इसे अपनी राजधानी घोषित किया। दुर्ग के मुख्यद्वार पर गणेश मूर्ति के अतिरिक्त हनुमानजी की भी मूर्ति है। दुर्ग में एक मंदिर व एक मस्जिद भी है। जहाँ कभी शिवाजी की

हिन्दू व मुस्लिम प्रजा शत्रु को पराजित करने के लिए प्रार्थना करती थी। दुर्ग मे निवास भवनो के अतिरिक्त अम्बारखाना (शस्त्रागार) तथा गगा, यमुना व सरस्वती नामक तीन बडे अन्नागार हैं। यहा पाराशर ऋषि की एव गुफा भी दर्शनीय है। यह दुर्ग अभी भी अच्छी हालत मे है। यहाँ का जलवायु सुहावना होने से यह पर्यटको के लिए मुख्य आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

प्रतापगढ

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध पर्यटन स्थल महाबलेश्वर से 8 मील दूर 1800 फीट ऊँचाई पर प्रतापगढ का सुप्रसिद्ध दुर्ग है। यहाँ तक पहुँचने का मार्ग बडा सकरा, भयकर तथा चक्करदार है। दुर्ग म बीजापुर राज्य के महान् सेनापति अफजलखाँ की याद मे निर्मित एक प्रसिद्ध बुर्ज दर्शनीय है। अफजलखा ने बीजापुर के सुल्तान के दरबार मे शिवाजी को मारने के लिए बीडा उठाया था। वह धोखे से शिवाजी को मारने के लिए दुर्ग के नीचे वाले मैदान म आकर ठहरा था। शिवाजी उसकी दुर्भावना से परिचित थे। उन्होने भी 'शठेशाठ्य समाचरेत' वाली नीति का अनुसरण कर यही पर अफजलखाँ का वध किया। दुर्ग म शिवाजी द्वारा निर्मित उनकी आराध्य देवी भवानी का मन्दिर है। प्रतिमा आकर्षक है। अभी कुछ ही वर्ष पूर्व दुर्ग म अश्वरोही शिवाजी की विशाल मूर्ति स्थापित की गई है, जिसका अनावरण प० नेहरू ने किया था। दुर्ग पर से चारो ओर फैली हुई मनोरम कोकण घाटी और उस के सघन वनो के दर्शन किये जा सकते है।

सिन्धु दुर्ग

महाराज शिवाजी द्वारा निर्मित दुर्गों म एक अनोखा दुर्ग है 'सिन्धु दुर्ग'। यह बम्बई गोवा के समुद्री मार्ग के मध्य मालवाण के समीप समुद्र के बीच म एक छोटे से टापू पर बना हुआ है। 25 नवम्बर 1664 ई म महाराज शिवाजी ने इस दुर्ग की नीव रखी थी। इसे उन्होने द्वितीय राजधानी की प्रतिष्ठा प्रदान की थी। दुर्ग की रचना कौशल अद्भुत है। दुर्ग म दो द्वार है। इसका प्रवेशद्वार इस ढग से बनाया गया है कि कोई अपरिचित

व्यक्ति उसे एकदम खोज नहीं सकता। दूसरा द्वार काफी छोटा है। दुर्ग की दीवारें बहुत ऊँची हैं, जिन पर 32 बुर्ज बने हुए हैं। दुर्ग म दो मन्दिर भगवती दुर्गा एव शिवाजी के हैं। शिवाजी के मन्दिर म भवानी द्वारा शिवाजी को दी गई तलवार भी रखी है। एक पत्थर की चट्टान पर उनके हाथ और पाँव के चिह्न भी अंकित हैं। दुर्ग म दो कुएँ भी हैं जिनका पानी मीठा और स्वादिष्ट है।

आज से तीन शताब्दी पूर्व निर्मित यह दुर्ग भारत की पश्चिमी सीमा की रक्षा करने वाला एक सुदृढ़ और सतर्क प्रहरी था।

चाँपानेर का दुर्ग

यह दुर्ग गुजरात राज्य म एक ऊँची पहाड़ी पर है। दुर्ग के चारों ओर ढालू बिलकुल सीधी और सपाट चट्टानें हैं। इस कारण मध्ययुग म इस दुर्ग के लिए यह प्रसिद्ध था कि इसे कोई लश्कर नहीं जीत सकता। दुर्ग के अन्दर एक दुर्ग और बना हुआ है। बादशाह हुमायूं ने जब गुजरात के शासक बहादुर को युद्ध म पराजित करना चाहा तब उसी क्रम म उसने चांपानेर के दुर्ग पर भी आक्रमण किया और चार माह तक दुर्ग का घेरा डाल पड़ा रहा। बड़ी ही कठिनता से उसने इसे सन् 1536 ई म जीता था।

बीदर का दुर्ग

बीदर का सुदृढ़ दुर्ग मसूर राज्य के अन्तर्गत है। यह लगभग तीन मील के घेरे म बना हुआ है। दुर्ग की दीवार 36 फीट ऊँची है। चारों ओर गहरी खाई है जो चट्टानें काटकर बनाई गई है। यह 75 फीट चौड़ी और 45 फीट गहरी है। 'अमल ए सालिह' के लेखक के अनुसार यह दुर्ग हिन्दू युग म निर्मित हुआ था। पौराणिक कथा के अनुसार राजा नल की पत्नी दमयन्ती बीदर के नरेश भीमसेन की पुत्री थी। मुस्लिम युग म बीदर के दुर्ग को सुल्तान तुगलक के पुत्र सुल्तान मुहम्मद ने सर्वप्रथम जीता था। बाद म इस पर बहमनी राज्य तथा बीजापुर राज्य के सुल्तानों का अधिकार रहा। अन्त म बादशाह औरंगजेब ने इस पर विजय प्राप्त की।

गोलकुण्डा का दुर्ग

आन्ध्रराज्य की राजधानी हैदराबाद से पश्चिम की ओर लगभग 8 मील दूर एक ऊँची पहाडी पर गोलकुण्डा का विशाल दुर्ग है। 'गोलकुण्डा' शब्द तेलगु भाषा के गोल्ला और कुण्डा के योग से बना है। जिसका अर्थ गडरिया की पहाडी है। किंवदन्ती है कि जब सुल्तान कुलीशाह ने एक विशाल दुर्ग निर्माण की योजना बनाई और वह उपयुक्त स्थान की खोज में परेशान था तो एक दिन एक गडरिये ने अपनी अंगुली के इशारे से उसे एक ऊँची पहाडी दिखाई। यह पहाडी स्थान दुर्ग निर्माण के लिए सर्वथा अनुकूल था। उसी पहाडी पर कुलीशाह ने गोलकुण्डा दुर्ग का निर्माण कराया।

दुर्ग की दीवारें बडी ऊँची व पत्थरों से बनी हैं। ऊँची बुर्जियों पर विशालकाय तोपें रखी गई थी। जो आज भी वहाँ हैं। दुर्ग मध्यकाल की शिल्पकला का उत्कृष्ट और अद्भुत नमूना है। इसके मुख्य द्वार के मध्य खडे होकर यदि ताली बजाई जावे तो उसी क्षण ताली की आवाज वहाँ से बहुत दूर भीतर बने रंग महल में भी सुनाई देगी।

जिंजी का दुर्ग

पांडिचेरी से लगभग 40 मील दूरी पर तामिलनाडु राज्य में कृष्णगिरि पर्वत पर अभेद्य दुर्ग जिंजी अवस्थित है। यह आर्काट जिले में है। दक्षिण भारत की यात्रा करने वाले व्यक्ति को इस दुर्ग के दर्शन अवश्य करने चाहिये। जिंजी दुर्ग के निर्माण का पता हमें एक पौराणिक कथा से लगता है कि बहुत प्राचीन समय में काशी नरेश सूरशर्मा जब दक्षिण भारत में तीर्थ यात्रा के लिये आये तो यहीं के होकर रह गये। उन्होंने कृष्णगिरि व राजगिरि पहाडों के विस्तृत घेरे में विशाल जिंजी दुर्ग का निर्माण कराया। इस दुर्ग को दक्षिण भारत के विस्तृत हिन्दू साम्राज्य विजयनगर का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सन् 1648 ई० में बीजापुर के सुल्तान की आज्ञा से मुस्तफाखाँ ने जिंजी पर सर्वप्रथम आक्रमण किया। कहते हैं कि नायक वंश की सात शताब्दियों से एकत्र अतुल सम्पत्ति 89 हाथियों पर लाद कर बीजापुर ले जाई गई। उस समय नायकवंश का अन्तिम राजा रूपनायक

था। बीजापुर का अधिकार कुछ ही समय के लिए रहा। सन् 1677 ई में महाराज शिवाजी ने इस दुर्ग की दीवारो का जीर्णोद्धार कराया। ऐसी किवदंती है कि इके मुख्य द्वार स शिवाजी न घाडा कुदाया था।

दुर्ग मे एक कई मंजिलो वाला कल्याण मण्डप है, जो नायक राजाओ द्वारा निर्मित है। शिवाजी ने इसे नया रूप दिया था। इस मण्डप से मीलो दूर आती हुई शत्रु की सेना का निरीक्षण किया जा सकता था। दुर्ग मे स्वामी रगनाथ का मंदिर, देवी का मंदिर तथा आरामगाह दशनीय स्थल हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पर भण्डार घर और बारुदखाना भी बन हुए है।

सेंन्ट जार्ज का दुर्ग

इस दुर्ग की स्थापना 17वी सदी क मध्य म ईस्ट इण्डिया कम्पनी न की थी। उस समय इसका निर्माण व्यापार की दृष्टि से किया गया था। बाद मे यह दक्षिण भारत का प्रमुख शासन केन्द्र बना। आजकल भी इसम तामिलनाडु (मद्रास) सरकार का सचिवालय है।

तिरुच्चिरापल्ली दुर्ग

तिरुच्चिरापल्ली नगर तामिलनाडु राज्य का प्रसिद्ध एतिहासिक नगर है। इसी नगर के मध्य म कावरी नदी से किनारे 300 फीट ऊँची पहाडी पर तिरुच्चिरापल्ली दुर्ग बना हुआ है। सम्पूण दुर्ग बड बडे पाषाण खण्डा से निर्मित है। दुर्ग के द्वार तक पत्थर की सीढियाँ बनी है। दुर्ग की चोटी पर गणेश जी का एक मन्दिर ह। मंदिर के चारा ओर पाश्व प्रदेश म पल्लव नरेशो के बनाए हुए कई गुहा मंदिर हैं, जिनका स्थापत्य कला की दृष्टि से बडा ऊँचा स्थान है। दुर्ग म निर्मित भवन के दो विशाल हाल (एक हाल 100 स्तम्भा पर आधारित है) तथा स्वण गुम्बद वाला मात्र भूतेश्वर का मन्दिर दशनीय ह।

रोहतासगढ

इतिहास प्रसिद्ध दुग राहतासगढ बिहार राज्य म है। आरा नगर स 75 मील दक्षिण पश्चिम की ओर सोननदी के बायें किनारे पर धरातल से

1000 फीट ऊँचे पहाड़ की चोटी पर यह सुदृढ़ दुर्ग हिंदू काल का बना हुआ है। दुर्ग का निर्माण सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने कराया था। दुर्ग में पहुँचने का मार्ग केवल एक ही है जो बड़ा टेढ़ा और लगभग 4 मील लम्बा है। दुर्ग तीन ओर से कमूर की पहाड़ियों से घिरा हुआ है। सोन नदी इसके पूर्व में बहती है। अपनी इस स्थिति से यह अगम्य बन गया है। इसके चारों ओर भव्य भवन हैं। महलों के ध्वस्त खण्डहर बिखरे हुए हैं।

दुर्ग में और अधिक ऊँचाई पर एक आवास दुर्ग और है। यह राज परिवार के निवास के लिए निर्मित किया गया था। किसी समय इस दुर्ग में एक विशाल एवं भव्य नगर भी बसा हुआ था। रोहतासगढ़ में समय समय पर शेरशाह, शाहजादा खुर्रम (प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँ) तथा बंगाल के नवाब मीरकासिम के परिवार ने इसमें शरण ली थी। सम्राट अकबर ने जयपुर नरेश महाराज मानसिंह को जब बंगाल व बिहार का सूबेदार बनाया तब उन्होंने इस दुर्ग का जीर्णोद्धार कराया। समय परिवर्तन के साथ अन्ततोगत्वा यह दुर्ग अंग्रेजी शासन के अधिकार में आ गया। इस दुर्ग के भवनों के खण्डहर भी देखने योग्य हैं। इनमें राजा मानसिंह की बारादरी रंगमहल, फूलमहल, शीशमहल और हाथिया पोल आदि के अवशेष विशेष दर्शनीय हैं।

कांगड़ा का दुर्ग

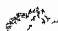
कांगड़ा का दुर्ग पंजाब में कांगड़ा घाटी के मनोरम प्रदेश में एक ऊँची पहाड़ी पर निर्मित है। हिंदू युग के इस सुदृढ़ दुर्ग में मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व अनेक सुन्दर भवन थे। सम्राट अकबर के समय तक इस दुर्ग पर एक ही राजपूत वंश के राजाओं का अधिकार रहा। सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक से लेकर अकबर के काल तक इस दुर्ग पर 52 बार आक्रमण किये गये लेकिन कोई इस पर विजय प्राप्त न कर सका। अन्त में जहाँगीर की सेना के हिंदू सेनापति राजा विक्रमाजीत ने, जो शाहजादा खुर्रम के नेतृत्व में आया था इस दुर्ग को जीता था। यह घटना 16 नवम्बर 1620 ई० की है। खाद्य पदार्थों की कमी ने दुर्ग के लोगों को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य कर दिया था अन्यथा यह दुर्ग सम्भवतः इतिहास में अजेय ही रहता।

कालिंजर का दुर्ग

उत्तरप्रदेश म कालिंजर का दुग एव महान् सुदृढ और अभेद्य दुर्ग है। यह उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश की सीमा पर अचल प्रहरी की भाँति दिखाई देता है। झाँसी मानिकपुर रेलवे लाइन पर बाँदा रेलवे स्टेशन से 36 मील दूर समुद्रतल से 1230 फीट तथा धरातल मे 700 फीट ऊँचे एव पहाड पर इस दुर्ग का निर्माण किया गया है। इसके पूव म कालिंजर नामक पहाडी स्थित होने से इसका नाम भी कालिंजर का दुर्ग पड गया। दुग के तीन ओर ये पहाड ऐसे सीधे खडे हैं मानो अभेद्य दीवारें हैं। प्राकृतिक और सपाट दीवारो के रूप मे इनकी ऊँचाई लगभग 150 फीट तक है। दुग की मानवा कृत दीवारें भी बडी बडी चट्टानो के ढोको से निर्मित बडी सुदृढ और ऊँची हैं। ये लगभग 25 30 फीट चौडी हैं। दुर्ग के भीतर प्रवेश करने के लिए एक ही तग और दुगम चढाई वाला राजमार्ग है। इसम सात प्रवेशद्वार हैं। प्रथम आलम दरवाजा और दूसरा सबमे बडा गणेशद्वार है।

कालिंजर के दुर्ग का इतिहास हमे वदिक काल म प्राप्त होता है। महाभारत म भी कालिंजर के एक कुण्ड का वणन आया है। सम्राट अशोक के शासनकाल म यह मौय साम्राज्य का एक प्रसिद्ध प्रशासनिक केन्द्र था। मौय-काल के पश्चात् इस पर कलचुरिवश तथा गुप्तवश का बहुत समय तक अधिकार रहा। चन्देल राजपूतो के राज्यकाल म इस दुर्ग मे सीतासेज नाम जलप्रपात, सीताकुण्ड, पातालगगा, हनुमानकुण्ड पाण्डुकुण्ड, कोटीतीर्थ नामक तालाब, नीलकण्ठ का गुहा मन्दिर, सिद्धगुफा, दुर्गामाता का गुहामन्दिर आदि अलौकिक दशनीय स्थान हैं। दुर्ग म अनक स्थानो पर कई प्राचीन शिलालख भी उत्कीर्ण हैं। कालान्तर म मुस्लिम सेनाओ न दुग की सुन्दर कलाकृतियो एव मूर्तियो को नष्ट कर दिया।

सन् 1545 ई० मे कालिंजर के दुर्ग पर राजा कीरतसिंह का अधिकार था। दिल्ली के सिंहासन पर शेरशाह सूरी सम्राट बना बैठा था। उसने चित्तौड विजय के बाद कालिंजर के दुग पर आक्रमण कर दिया। एक वष तक दुर्ग का घेरा डाल रहने के बाद अपनी सनिक कुशलता से उसने दुर्ग को विजय कर राजपूतो का सहार करवा डाला, किन्तु इसी युद्ध मे मोर्चे का



निरीक्षण करते समय एक गोला फटा जिसकी निकली हुई चिंगारी शेरशाह के पास में रखे हुए गोला के ढेर में पड़ी। परिणामत भयंकर विस्फोट ने शेरशाह सूरी के प्राण ले लिये।

प्रयाग (इलाहाबाद) का दुर्ग

तीर्थराज प्रयाग की पुण्यभूमि में गंगा यमुना के मध्य की भूमि पर सम्राट अकबर ने सन् 1583 ई० में इलाहाबाद के दुर्ग को निर्मित कराया। उस समय यह 6 करोड़ 17 लाख रुपयों की लागत से लाल पत्थरों से बनाया गया था। इसमें बनाये गये महलों को सोने चाँदी के अलंकरण तथा रत्नों की कलात्मक जड़ाई से सजाया गया था। अधिकांश भवन अंग्रेजी शासन में नष्ट कर उनका सोना चांदी व रत्न लूट लिए गये। अब इसमें मुगलकाल का एक चालीस स्तम्भों वाला महल ही शेष है। दुर्ग के मध्य में अशोक की एक लाट गड़ी हुई है जो 35 फीट ऊँची है। इसे फीरोजशाह तुगलक कौशाम्बी से लाया था। जहांगीर ने इसे दुर्ग में प्रतिष्ठापित किया था। सन् 1801 ई० में इस पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार हो गया। अंग्रेजों ने इसके भव्य राजप्रासादों को शस्त्रागार व सैनिक छावनी में बदल दिया।

आगरे का किला

आगरे का किला सन् 1565 ई० में सम्राट अकबर ने बनवाया था। सम्पूर्ण किला लाल पत्थर का बना हुआ है। किले में चार दरवाजे हैं जिनमें अमरसिंह दरवाजा व दिल्ली दरवाजा अधिक प्रसिद्ध है। अमरसिंह दरवाजा संगमरमर पत्थर से निर्मित किया गया है। किले में दीवाने आम, दीवाने खास, मोती मस्जिद, नगीना मस्जिद, शाही हम्माम, शीशमहल, खासमहल, जहाँगीरी महल और सम्मन बुर्ज आदि भवन जो संगमरमर के बने हुए हैं, विशेष दर्शनीय हैं। इनमें से अनेक भवन व मस्जिद आदि शाहजहाँ ने बनवाये थे। शाहजहाँ अपने अंतिम दिनों में सम्मनबुर्ज में पड़ा हुआ यहाँ से अपनी प्रेयसी मुमताजमहल की मधुर स्मृति में निर्मित ताजमहल को निहारता रहता था।

दिल्ली का लाल किला

दिल्ली का लाल किला सम्राट शाहजहाँ ने बनवाया था। इसकी दीवारें ऊँची विशाल और कगूरेदार हैं। इसमें दो द्वार हैं। सन् 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह 'जफर' ने इसी किले से स्वतन्त्रता संग्राम का संचालन किया था। बाद में सम्राट को कैद कर अंग्रेजों ने इस पर अधिकार कर लिया। कभी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस पर स्वतन्त्र भारत का ध्वज फहराने का स्वप्न देखा था जो 15 अगस्त 1947 को साकार हो चुका है। प्रतिवर्ष स्वतन्त्रता दिवस पर प्रधानमन्त्री द्वारा इस पर राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज फहराया जाता है। इस किले में 'नहर ए बहिश्त' मुगलकाल की इन्जीनियरिंग कला का अद्‌भुत चमत्कार है। इस किले के मध्य में दीवाने आम है, जहाँ अब भारत के विशिष्ट अतिथियों का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाता है। अन्य भवनों में रंगमहल व दीवान खास मुगल स्थापत्य की सुन्दर कृतियाँ हैं। दीवाने खास के अनुपम सौन्दर्य से अभिभूत हो शाहजहाँ ने उसकी मुख्य भित्ती पर फिरदोसी का यह शेर अंकित कराया था—

"अगर फिरदोस बर रूए जमी अस्त।
अमी अस्तो, अमी अस्तो, अमी अस्त।"

यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग का आनन्द है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।



एकता के स्वरो मे बोलते पत्थर

भौगोलिक विस्तार तथा प्रादेशिक भिन्नता होते हुए भी समूचे भारत की आत्मा एक संस्कृति से अनुप्राणित रही है। समय समय पर विभिन्न प्रभावो के कारण आचार विचार और दैनिक व्यवहार मे बदलते हुए सभ्यता के प्रत्यक्ष स्वरूप मे हमे सामाजिक दर्शन का एक ऐसा मूलाधार मिलता है जो सांस्कृतिक स्वरूप को अविच्छिन्न बनाए हुए है और विभिन्नताओं मे एकता की लड़ी पिराए हुए है। भारतीय संस्कृति माला के उस धागे के समान है जिसमे बहुरंगी और विविध सुगंध वाले फूल गुंथे हुए है और एक सूत्र से बिंधकर हमारी भावात्मक एकता को सिद्ध करते हैं। भारतीय संस्कृति का यह मूलाधार है 'धर्म' जो सामाजिक दर्शन को अमरत्व प्रदान करता है।

समाज की अनेकानेक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन कलाओं के माध्यम से होता है। भारतीय कलाएँ प्रत्येक क्षेत्र मे धार्मिक भावनाओं से प्रेरित रही हैं और उन्ही का पोषण करती हैं। काव्यकला, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला, नाट्यकला शिल्पकला, वास्तुकला, सभी से कलाकारो की कृतियां समर्पण और आराधन की भावना से अभिभूत है। सार्वजनिक स्थानो पर कला का प्रदर्शन कर्तव्य समझा जाता था। यही कारण है कि कवियो ने अपना जीवन भजन और वंदनाओं को अर्पित किया, संगीतकारो ने कला साधना के स्थल धार्मिक स्थान ही चुने नृत्यकला की समस्त सुन्दर परम्परायें देवदासियो ने सुरक्षित रक्खी, चित्रकला मे राम और कृष्ण की लीलाओं तथा पौराणिक गाथाओं का अंकन किया गया और शिल्प तथा वास्तुकला के माध्यम से मंदिरो और प्रासादो के अलंकरण एवं सुंदर मूर्ति निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ।

प्राचीन वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण हमे प्रासादो, मंदिरो, बिहारो तथा स्तूपो से मिलते हैं। इनमे मूर्तियाँ तो प्रतिष्ठित हैं ही, साथ ही अलंकरण

के रूप में अनेक पौराणिक कथाओं को भी मूर्तियों में दर्शाया गया है। शताब्दियों के प्राकृतिक प्रकोपों के कारण अनेक प्रासाद, विहार स्तूप आदि खण्डहर रूप में मिलते हैं। ये खण्डहर प्रगट करते हैं कि भारत की वास्तुकला कई मंजिलों के भवन भव्य अट्टालिकाओं, मणिकंचन के झरोखों मनोरम गवाक्षों के द्वार सम्पूर्ण भारत देश में सांस्कृतिक एकता के द्योतक हैं। मौर्य काल के पश्चात् हिन्दू युग में पत्थरों की कला स्तूपों, तोरण द्वारा मन्दिरों, स्तम्भों तथा गुफाओं में मिलती है। इनमें मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। सम्राट अशोक द्वारा निर्मित 13 स्तम्भ भारत के विभिन्न भागों में कला के अद्वितीय उदाहरण होने के साथ-साथ भावात्मक एकता के प्रतीक भी हैं। स्तूपों तथा मन्दिरों में विविध प्रकार की भावना प्रधान मूर्तियाँ तथा उनकी निर्माण शैली सांस्कृतिक एकता का उद्घोष करती हैं। इनमें जहाँ भव्यता, अलंकरण एवं समर्पण का भाव है वहीं आत्मा की एक रूपता भी। साँची, भरहुत के स्तूप, बेदरसा, (पूना) पथिलाखोरा (खानदेश) उदयगिरि (उड़ीसा) आदि की गुफाएँ जैन तथा बौद्ध भिक्षुओं की आराधना साधना का स्वरूप सजाए हुए हैं। भक्ति भाव से प्रेरित हृदय की भावनाएँ इन गुफाओं की खुदाई तथा चित्रों में अभिव्यक्त हुई हैं।

वास्तुकला तथा मूर्तिकला की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण युग गुप्त सम्राटों का रहा। अजन्ता की गुफाएँ इसी काल की कृतियाँ हैं। एक अर्द्ध गोलाकार पहाड़ी के मध्य भाग को काटकर अजन्ता की गुफायें बनाई गई हैं। कुल २६ गुफायें हैं जो अलग अलग समय में बनी एक ही पत्थर को काट कर उसमें पृथक-पृथक कमरे तथा मूर्तियाँ निर्मित हैं। कमरों की दीवारों को छीलकर उन पर कोई विशेष लेप लगाया गया है। इसी पर चित्र बने हैं जो स्थाई रहने वाले रंगों की कृतियाँ सी लगते हैं। ये चित्र भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित तथा राजकीय जीवन सम्बन्धी गाथाओं के चित्र हैं। इन गुफाओं की मूर्तियाँ भावुकता की दृष्टि से चित्ताकर्षक और आध्यात्मिकता की प्रेरक हैं। ये गुफायें दो प्रकार की हैं। स्तूप गुफायें आराधना, प्रार्थना तथा धार्मिक साधना के लिए बनी है तथा विहार गुफायें निवास के लिए। इन गुफाओं में मूर्तियों का शिल्प एवं चित्रों की सौन्दर्य रचना संसार को आश्चर्य

चरित करती है। इन मूर्तियों में प्रादेशिक संकीर्णता नहीं है, भारतीय कला की आत्मा मुखरित है, जो सवदेशीय और सवजनीन है।

अजन्ता की भाँति एलोरा (हैदराबाद) तथा (एलीफेंटा), (बम्बई) की गुफाओं में बुद्ध चरित्र तथा वष्णव और जन मूर्तियाँ निर्मित हैं। इनमें अलंकारिक तथा रत्न प्रधान कला का परिचय मिलता है। दक्षिण भारत में समुद्र के किनारे मायल्लपुरम् की गुफा चट्टान काटकर मंदिर के रूप में खोदी गई है। वास्तुकला की दृष्टि से यह गुफा भी एक अनोखी वस्तु है।

दक्षिण भारत की इन गुफाओं की कला का नयनाभिराम स्वरूप ही नहीं है तथापि रचना शिल्प और शली की दृष्टि से उत्तर भारत के बिहार प्रान्त में नालन्दा विश्वविद्यालय के तत्कालीन भारतीय शिल्पकला के एकात्म स्वरूप को भी प्रगट करता है।

गुप्तकाल में वष्णव धर्म का उत्कर्ष होने पर बौद्ध धर्मानुयायी भी मूर्ति पूजा की ओर प्रवृत्त हुए और जीवन में कलात्मक रसपूर्ण पक्ष के विकास के साथ भक्ति की सरस धारायें प्रवाहित हुईं। वष्णव धर्म का यह कला पक्ष मंदिरों की उत्कृष्ट कला के रूप में निखर कर भारत भूमि पर बिखर पड़ा। देवगढ़ का दशावतार मंदिर (भूमरा) मध्यप्रान्त का शिव मंदिर खुजराहा का शिव मंदिर, देलवाड़ा के जन मन्दिर, भुवनेश्वर का मन्दिर, कोणार्क का मंदिर बोध गया का महाबोधि मंदिर, आजमगढ़ का पार्वती मंदिर, जबलपुर का विष्णु मंदिर, भावभिव्यंजना की अपेक्षा अलंकरण की प्रधानता लिए हुए हैं मानो शिल्पकार ने पत्थर के स्थान पर लकड़ी को तराशा है। उनका शिल्प सौन्दय दशक की आँखें अटका लेता है उसे सब कुछ विस्मयकारी सा लगता है जसे ये रचना मानवी न होकर दवी है। इसके बाद ग्यारहवीं सदी में मूर्तिकला के अनेक अलंकृत रूप राजपूत राज्यों तथा दक्षिणी राज्यों के द्वारा मंदिरों में उपलब्ध हैं। समूचे भारत में मंदिरों के निर्माण की होड़ सी लगी मालूम पड़ती है। साथ ही भव्य महल, सुंदर दुर्ग आदि के निर्माण स्थापत्य कला को प्राणवान बनाते रहे।

ग्वालियर, चित्तौड़, रणथम्भोर कालिंजर माडू के अजेय दुर्ग, मथुरा के मंदिर, सोमनाथ का मंदिर, कांगड़ा का बजनाथ का मन्दिर, काश्मीर का

विश्वेश्वर मंदिर, तंजौर का शिव मंदिर, कांची मदुरा त्रिचनापल्ली, श्रीरंगम् रामेश्वरम् के मंदिर सभी शैली की विभिन्नता रखकर भी भारतीय संस्कृति की आत्मा का प्रकाश करते हैं। राजपूतकाल मे मूर्तिकला बडी उन्नत हुई। विष्णु शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा, कार्तिकेय आदि की मनभावनी मूर्तियां जन जन की श्रद्धा समेटती रही। जैनो के 24 तीर्थकरो की मूर्तिया भी बनी। इन मूर्तियो मे कोमलता, सजीवता, भाव प्रदर्शन आकर्षण का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। अनेकानेक मंदिरो मे मूर्ति कला का यह स्फुरण हमारी भावात्मक एकता एक ही स्वर मे प्रगट कर रहा है।

पूर्व मुस्लिम काल की भारतीय वास्तु कला राजप्रासादो, मस्जिदो, मकबरो में केन्द्रित है। इन इमारतो मे भारतीय मूर्तिकला अथवा मंदिरकला के लक्षण नही मिलते तथापि इनकी निर्माण शैली भारतीय ही है। जौनपुर तथा अहमदाबाद की मस्जिदों और इमारतो पर तथा अजमेर का 'ढाई दिन का झोपडा' देखने पर भारतीय वास्तुकला की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। मुगल शासन मे फारसी और भारतीय कारीगरो की मदद से इमारतो मे हिन्दू और मुस्लिम स्थापत्य का सुन्दर सामजस्य हुआ। अकबर के समय निर्मित फतहपुर सीकरी के महल, दिल्ली की जामा मस्जिद, आगरे मे जोधाबाई के महल जहागीर के शासन मे बना आगरे का किला, लाहौर और काश्मीर के शालीमार बाग हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य का सुन्दर सामजस्य प्रगट करते हैं। शाहजहा के शासन काल मे ताजमहल दिल्ली के लाल किले मे दीवाने आम तथा दीवाने खास, आगरे की मोती मस्जिद मुगलकाल की श्रेष्ठतम इमारतें है। इनकी पच्चीकारी नक्काशी और बेल बूटो को देखकर ससार के कलाकार आश्चर्य चकित रह जाते हैं। जिस प्रकार प्राचीन युग मे हिन्दुओ की अतिशय धार्मिक भावनाएँ मंदिरो और मूर्तियो की उत्कृष्ट वास्तुकला मे मुखरित हुई उसी प्रकार मुगल बादशाहों की धार्मिक भावनायें मस्जिदो और मकबरो मे प्रगट हुई।

शाहजहाँ के पश्चात् शिल्पकला की प्रगति औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता के कारण अवरुद्ध हो गई। इस युग मे मुगल सम्राटो की कला परम्पराओ को राजपूत राजाओ ने आश्रय दिया। जयपुर,

ग्वालियर, जोधपुर बीकानेर, अलवर की प्राय सभी ऐतिहासिक इमारत मुगल वास्तुकला के ढग पर हैं। राजमहला से लेकर गृहस्था के निवास तक यह छाप दिखाई देती है। जसे जैसे मुगल शासन के पर दक्षिण भारत पर बढते गए, वहाँ भी कला का यही स्वरूप घर करता गया। हैदराबाद की मस्जिदो और मकबरे इसी शैली का स्वरूप प्रगट करती हैं।

अंग्रेजी राज्य काल वास्तुकला की दृष्टि से हीन युग समझा जाना चाहिये। धनिको के भवन, सरकारी इमारतें, कॉलिज भवन, कलकत्ता का विक्टोरिया ममोरियल, दिल्ली मे पार्लियामेन्ट हाउस आदि इमारतें भव्यता और एकरूपता लिए हुए हैं। धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति दिल्ली के बिडला मन्दिर म हुई है। भारतीय स्थापत्य कला का सौन्दय, आकषण और मधुरता इनमे कोसो दूर है। इन कृतिया म पश्चिमी प्रभाव है जो बडा निर्जीव और सस्ता सा लगता है। भारतीय कलाओ के धार्मिक भावना की प्रधानता दसवी शताब्दी तक मिलती है जिसमे समपण और आराधना के साथ मधुरिमा और आकषण है। बाह्य आक्रमणकारियो के सामाजिक प्रभाव से सासारिकता और शृगारिकता का कला म समावेश हुआ। भावना का स्थान कल्पना ने लिया। सजावट और बेलबूटे कला का मुख्य माध्यम बन। मध्य युग के बाद कला का मापदण्ड बदला गया। अब कला, कला के लिए न रहकर जीवन के लिए स्वीकार कर ली गई। कला की साधना उपयोगितावाद के नाम पर सस्ते दामा पर बिकने लगी। प्राचीन युग की साधना निष्ठ कला मध्ययुग की कल्पना मे विलासिता पार करके अर्वाचीन समय म आजीविका के चौराहे पर बिक रही है। विशेषता यही है कि किसी भी युग स देखें निर्माण शली और रचना शिल्प की दृष्टि से भारतीय पत्थर जहाँ भी मुखरित हुए हैं, उनम एकता के स्वर हैं। वास्तुकला, शिल्पकला और मूर्ति कला के माध्यम से एकता के स्वरो से बोलते पत्थर हमारी भावात्मक एकता के साक्षी हैं।

□□

भौगोलिक : सूत्र

१५	भारत की अविचल प्रवहमान संस्कृति "सरिताएँ"	श्री कन्हैयालाल चारण
१६	सप्त पावन पुरियां	श्री मोहनलाल त्रिपाठी
१७	तीर्थों का देश "भारत"	सुश्री राजेन्द्र प्रभात

भारत की अविचल प्रवहमान संस्कृति सरिताएँ

'कावेरी नर्मदा वेणी तुंगभद्रा सरस्वती ।
गंगा च यमुना चैव ताभ्यः स्नानार्थ ॥"

नदी लोक माता है। देश के लिये वरदान है। संस्कृति का पालना है। ऐसी विशेषताओं के साथ भारतवासी नदियों का अभिनंदन करते हैं। भारत देश की गंगा, यमुना ब्रह्मपुत्र गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, पंजाब की पांच नदियाँ राष्ट्रीय भावनात्मक एकता की सच्चे माने में प्रतीक हैं। भौगोलिक भाषा में नदी का जन्म स्थान उद्गम समुद्र में उसके मिलन का स्थान मुहाना कहलाता है। नदी किसी पर्वतीय भाग अथवा किसी झील से निकलकर, पर्वतीय, मैदानी क्षेत्र में बहती है और समुद्र या झील में गिरती है। यहाँ गिरने से पहले नदी कई त्रिभुजाकार धाराओं में बँट जाती है उस भू आकृति को डेल्टा प्रदेश कहते है।

जन्म स्थान से लेकर मिलन स्थल के बीच नदी कई पर्वतों, ग्रामों, कस्बों, नगरों, जंगलों और सुनसान स्थानों के बीच गुजरती है। तटवासियों को नदियाँ अपना अमृत सा जल पिलाती है। उनके नाना विधि उपयोग में आती है। जैसे राज्यों की सीमा बनाना आक्रमणों से रक्षा करना प्रवाह क्षेत्र को उपजाऊ बनाकर लोगों को समृद्धि करना आदि। जनजीवन में ममता और सौंदर्य के भावों को जगाने वाली नदियों के प्रति हमारी आत्मीयता के दर्शन हम इनके नामों से कर सकते हैं। कुछ नदियों के नाम भारतीय कन्याओं के नाम पर रखे गये हैं। जैसे ब्रह्मपुत्र अर्थात् ब्रह्मा की

पुत्री । यमुना यानी यम की बहिन । इसी प्रकार तमसा, सरस्वती, कर्णावती आदि । कुछ नदिया के नाम पशुओ के नामो पर हैं । गोमती और गोदावरी गाय के नाम पर । इसी प्रकार बाघमती यानी शेरनी (बाघिन के समान तेज बहने वाली) ।

जहाँ नदियों के नाम कन्याओ और पशुओं से अवतरित हुये हैं, उसी नदी तट पर बसने वाले लोगो न भी नदिया से अपने कुल और जाति प्रजातिया को अलकृत कर अपने को धन्य माना है । जसे सरस्वती नदी की घाटी के एक क्षेत्र के निवासी अपने को सारस्वत कहन म गव अनुभव करते हैं । सरयू नदी के तटवासी सरयूपारी कहलाते हैं । सिंधु नदी के किनारे बसन वाले, अच्छी नस्ल के घाडा (सैंधव) के व्यापारी सधव या सिंधी कहलाते हैं । भारत का इण्डिया नाम भी इडस (सिंधु) नदी के नाम पर पडा है । पजाब (पाँच नदियों का प्रदेश) नाम अपने आप म इसका ज्वलत प्रमाण है । भावना के साथ साथ नदियाँ देश की आर्थिक कडिया को भी जोडती हैं । भारत नदियाँ धम, अथ, काम और मोक्ष दायिनी हैं । भावना क्षेत्र मे इनका स्थान सर्वोपरि है ।

आइये ! देश की प्रसिद्ध सरिताओ का एतिहासिक एव सास्कृतिक विवचन करते हुए, भारत भूमि की इन अविचल प्रवाहमान सस्कृति सरिताओं की जानकारी करें ।

पतित पावनी गगा माता

प्रतिवष देश के कोने कोने से लाखो करोडो भारतवासी अपने अपने प्रदेश की भाषाओं मे 'जय गगा माता की' रट लगाते हुए, गगा स्नान को आते हैं । विश्व म गगा ही एसी पवित्र नदी है जिसका जल वर्षो तक पात्र म रक्खा रहने पर भी कभी नही सडता । यात्री गगा जल को देश के गाँव गाँव नगर नगर म ले जाकर पूजते है । गगा म पूवजो एव मृतक परिजनो की अस्थिया विसर्जित कर उनकी कम बधनो स मुक्ति हुई मानते है । गगा के प्रति देश के प्रत्यक प्रात मे जो अटूट श्रद्धा ह वह इस बात का प्रमाण है कि हम भारतवासी एक है और एक होकर ही रहेंगे । जब तक गगा है, गगा

के गीत महलों से लेकर झोपड़ियों तक समान श्रद्धा से गाये जाते हैं। गंगा ने इस देश को अनेक स्वस्थ परम्परायें दी हैं। बदलते युगों के साथ सतत् बदलती बहती गंगा बदलत युगा का इतिहास अपने मे समेटे है।

पुराण की कथा के अनुसार एक बार ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर गंगा को ब्रह्मलोक से मृत्युलोक मे जाने का शाप दिया। शापित गंगा ने भारत मे राजा शान्तनु से विवाह किया। गंगा ने अपने सात पुत्रो को तो जन्म के साथ ही गंगा म बहा दिया। आठवें पुत्र भीष्म हुए जो वीरता और साहस म अपूर्व थ। इ ही के वंश म राजा सगर हुए। इनके ६० हजार पुत्रा ने यज्ञ का घाडा ढूँढत समय कपिल मुनि का अपमान किया। मुनि ने क्रोधित हाकर अपन आत्मबल और तपस्या के तेज स उन सबको भस्म कर दिया। राजा सगर के ही वंश म जन्मे राजा भगीरथ स्वग से गंगा का भारत भूमि पर लाये और अपन शापित पूवजा का उद्धार कराया।

इस पौराणिक कथा के पीछ भौगोलिक यथाथ भी छिपा हुआ है। आज के वैज्ञानिक भी इन कथाओ के अतराल म छिपे रहस्या का उद्घोष करने के लिय अनक परिकल्पनाओं का आश्रय लने लग हैं। सम्भव है काल विशेष मे किसी प्रजा पालक परिश्रमी राजा सगर ने शंकर के प्रतीक किसी महान इन्जीनियर की सहायता स गंगा के प्रवाह का भारत के इस सूखे क्षेत्र स मोडकर इसे सरसब्ज बनाया हो।

गंगा का जन्म स्थल वास्तव म गंगोत्री स भी ऊपर, चीड वन स आग है। यह क्षेत्र बफ स ढका (हिम नद) है। गंगा यहाँ से शीतल जलधारा बहाती हुई सुन्दर कन्या सी अठखेलियाँ करती हुई, आग बढती है। पवतीय भाग म चीड देवदार के जगला, सकडा घाटियो, विकट कदराओ, झरनों और प्रपातो से खेलती हुई गंगा हरिद्वार के पास मैदान म बहना प्रारम्भ करती है। हरिद्वार गंगा का मुख स्थल है। यहाँ स यह कानपुर नगर से लगकर बहती हुई प्रयाग म यमुना और सरस्वती स गले मिलती है। प्रयाग की शाभा और महत्त्व पावन त्रिवणी सगम के रूप म है। प्रयाग से आगे चलकर काशी हाती हुई पाटलीपुत्र के पास गंगा बहुत बडे क्षेत्र मे फल जाती

है। राजा जनक का रामायण कालीन मगध राज्य इसी क्षेत्र मे था। यहाँ गडकी नदी भी गगा मे मिल जाती है।

पटना से गगा अपना बहाव एकदम पूव से दक्षिण की ओर मोड लेती है। आगे जाकर समुद्र मे मिलने मे पूव गगा ब्रह्मपुत्र को अपने म मिलाती है। गगा और ब्रह्मपुत्र का मिलन स्थल गोलदी के समीप है। यहाँ से डल्टा प्रारम्भ हो जाता है। गगा यहा स अनेक धाराओ म बँट जाती है। ब्रह्मपुत्र को अपने म मिलाने के स्थान पर गगा नदी पद्मा के नाम से प्रसिद्ध है। आगे बढकर पद्मा ही मेगना कहलाने लगती है। यहाँ म गगा का अनेकानेक धाराओ मे प्रवहमान होना, उस पौराणिक गाथा का साथक करता है कि इसी क्षेत्र म गगा अपने जल से राजा सगर के ६० हजार शापित पुत्रो को शाप मुक्त करके, मोक्षगामी बनाया था।

आजकल गगा का डेल्टा क्षेत्र जूट और पटसन उत्पादन म विश्व म एक है। सुन्दरवन का यह डल्टा क्षेत्र सुन्दर वृक्षों और बेंत के झुण्डों के लिय प्रसिद्ध ह। यहा जूट, पटसन के अनको छोटे बडे कारखाने है। कराडा का माल यहा (कलकत्ता बदरगाह) से बाहर विदेशो मे जाता है।

सुभाष का देश प्रम रवीन्द्र की गीताजलि और अनकानक महा पुरुषो की यह जन्म स्थली एव लीला स्थली रही ह। सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र म बाधने वाला लगभग आदोलन आजादी के इतिहास म स्वर्णाक्षरो म अकित ह। हे प्रवाहमान गगे पुन देश को एकता के सूत्र म बाध।

पुण्यतोया यमुना

यमुना यमराज की बहिन ह। श्रीकृष्ण की लीलास्थली के रूप म यमुना की पावन स्मृतिया जन जन के मानस म बसी ह। यमुना हिमालय म यमुनोत्री से निकलती है। वास्तविक उद्गम इससे कुछ ऊपर है। इस स्थान पर पानी का एक शोर करता हुआ गम बुलबुला निकलता है। बुलबुल का जल अत्यत गम होता है। इसम स्नान नहीं किया जा सकता।

यमुना गगा क उद्गम जल के बारे मे एक प्रचलित कथा है—
'असित' नाम के एक महामुनि यमुना उद्गम स्थान पर आश्रम म रहते थे।

प्रतिदिन गंगा के उद्गम स्थल पर पैदल जाकर स्नान करते थे। एक बार वृद्धावस्था में वे इतने दुर्बल हो गये कि चल फिर न सके। गंगा ऋषि के अगाध प्रेम से प्रभावित थी। उसने अपनी एक धारा ऋषि के आश्रम तक (गंगोत्री से यमुनोत्री) भेज दी जो आज भी बहती है। यमुना की पर्वतीय शोभा अचरज भरी है। अपने जन्म स्थान से आगे बढ़कर यमुना देहरादून आती है। पर्वतों से घिरे पर्वतीय भाग जिन्हें काटकर नदी बहती है, पश्चिम में दून और पूर्व में द्वार कहलाते हैं।

देहरादून यमुना का मुख द्वार है। यहीं यमुना कुरुक्षेत्र मैदान में प्रवाहित है। हरियाणा (श्रीकृष्ण की क्रीड़ा स्थली) यही क्षेत्र है। महाभारत और गीता की गाथा कुरुक्षेत्र में जुड़ी हुई है। यहाँ से आगे बढ़कर यमुना भारत की राजधानी इन्द्रप्रस्थ में पहुँचती है। यहाँ के अतीत के इतिहास की पावन यादें इसकी लहरों में समायी है। 15 अगस्त 1947 को लाल किले पर फहराते हुये स्वतन्त्रता के झण्डे को देखकर यमुना को कितना हर्ष हुआ होगा। देश की स्वतन्त्रता के सैनानी अपने लाडले सपूत स्व० बापू, नेहरू व शास्त्री जी को अपनी पावन गोदी (राजघाट) में चिरनींद सुलाये हुए यमुना यहां अमर लोरियां गाती है। यहां से आगे यमुना कृष्ण कन्हैया की रंगस्थली मथुरा, वृन्दावन की शोभा बढ़ाती है। मथुरा से आगे यमुना गोकुल होती हुई आगरा में संसार के आठवें आश्चर्य ताजमहल को सजल बनाती है। शाहजहाँ और मुमताज के अमर प्रेम की कहानी ताजमहल के रूप में साकार हो उठी है। इसी आगरे में औरंगजेब के अत्याचार, मौत का कुआं अमरसिंह राठौर की कहानियाँ यमुना उदास मन से गाती है। आगरे से आगे जाकर इससे विन्ध्याचल पर्वत से बहकर आने वाली चम्बल मिलती है। अपने यमुना संगम के समय चर्म ण्वती (चम्बल) राजा रतिदेव के त्याग रैदास के तप आदि की युग पुरानी गाथायें, यमुना को सुनाती सी प्रतीत होती हैं।

चम्बल का साथ लिये यमुना अपनी बड़ी बहिन गंगा से मिलने को उतावली हो उठती है। कानपुर और कालपी को पार कर यह प्रयागराज पहुँचती है। यहाँ सरस्वती और यमुना का गंगा से संगम होता है। तीनों की मिलन स्थली 'त्रिवेणी' संगम कहलाता है। यह तीर्थ भारत का महान पवित्र

स्थल है। यहाँ बारह वर्ष मे एक बार जब बृहस्पति व वृषभ के सूर्य मकर राशि मे प्रवेश करते हैं, कुम्भ का मेला लगता है। इसमे देश के कोने कोने से यात्री आते हैं। देश की भावात्मक एकता की यह महान प्रतीक स्थली है।

ब्रह्मपुत्र

सम्पू (ब्रह्मपुत्र) की जन्मस्थली तिब्बत के पठार म गंगा उद्गम के समीप है। यही से सिंधु और सतलज भी निकलती है। तिब्बत पठार मे यह साप सी बल खाती बहती है और सापू कहलाती है। इसके जन्म के बारे मे कई लोक गाथायें हैं। कालिका पुराण के अनुसार यह शातनु और अमाधा नाम के ऋषि दम्पत्ति के कुल मे उत्पन्न ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मा के कमण्डल से निकलने के कारण यह ब्रह्मपुत्र कहलाई ऐसी भी मान्यता है। सात सौ मील पठारा मे बहती हुई सांपू (ब्रह्मपुत्र) आगे आसाम मे प्रवेश के समय एक विशाल ब्रह्मकुण्ड (झील) मे समाहित होती है। कहते है कि परशुराम न अपनी माता की परशु से हत्या कर यही रक्त रंजित कुल्हाडा धाया था स्नान करके पापो से छुटकारा पाया था। इसे परशुराम कुण्ड भी कहत है। आज भी इस झील (कुण्ड) का रंग लाल है। यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। इस कुण्ड से निकलकर आग आसाम म बहती, ब्रह्मपुत्र क सम्बन्ध म अनेका लाक कथाये प्रचलित है। यहाँ लोग इसे ब्रह्मपुत्र के नाम स पुकारत है और सूय की बहन मानत है। परशुराम कुण्ड से आगे यह दिहाग कहलाती है।

असम की घाटियो म करीब 400 मील बहकर यह दक्षिण मे मुडती है। यहा लाहित नदी इसम त्रिवग क स्थान पर मिलती है। इसस आग इसका प्रवाह तेज हो जाता है। बरसात मे भयकर बाढें आती हैं। यह उत्तरी पूर्वी सीमात (नफा) कहलाता है। यहा मिनिया, मिसिमा, मिरी पादम जन जातिया निवास करती हैं। इसके पश्चिम भाड स्थल पर डिगबोई मिट्टी के तेल का प्रमुख क्षेत्र हैं। नहर, कटियाँ, नून माटी बरौनी क्षेत्रो मे तेल व प्राकृतिक गस उत्पादन और शाधन के केन्द्र हैं।

प्राग्ज्योतिपुर, जोरहट, रगपुर, चुवाफा, इन्द्रवशी राजा की राजधानी (ग्रह्रम) आदि पुराने युग की यादें है। जोरहट मे 1857 की क्राति के अमर सेनानी मणिराम देवान को अग्रेजो ने फाँसी पर लटकाया था। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र अपने मे युग युग के भाव भरे आगे गगा मे मिलती है।

कुमारी कन्या 'नर्मदा'

विध्य और सतपुडा दो पर्वतो के बीच मेकल नाम का पहाड फैला है। इसकी चोटी समुद्र मे 4 हजार फीट ऊँची है। इस चोटी का नाम है अमरकटक। कवि कालिदास के ग्रन्थो मे इसे आम्रकूट पर्वत कहा है। मेकल ऋषि यहा तप करते थे। इसी से यह मेकल कहलाता है। व्यास, भगु, कपिल आदि अनेक मुनियो की यह तपोभूमि है। कहा जाता है कि मेकल के भागो में जल की कमी थी। इस पर्वत से नर्मदा और सोन दो नदियाँ पास-पास से निकलती हैं। नर्मदा पश्चिम मे बहकर अरबसागर मे गिरती है। पुराणो की कथाओ के अनुसार ब्रह्माजी ने अमरकटक चोटी पर अपनी आँख के दो आँसू बहाकर नर्मदा और सोन (शोणभद्र) का जन्म दिया। नर्मदा को रेवा नदी भी कहते है। शिवजी के शरीर के पसीने से कुण्ड मे एक बालिका प्रकट हुई उसी का नाम नर्मदा, रेवा है। इसे शाकरी, (शिवपुत्री) मेकल सुता भी कहते हैं। नर्मदा (सुख देने वाली), रेवा (निरतर व शोर करने वाली) नाम भी सार्थक हैं। शाकरी या शिवपुत्री की विचित्र कथा पुराणों में है।

स्कद पुराण मे कथा है कि चन्द्रवश मे पुरुरवा नाम के चक्रवर्ती राजा, शिवजी की तपस्या कर नर्मदा को धरती पर लाये। शिव ने नर्मदा को उतारने की स्वीकृति तो दे दी लेकिन कौनसा पर्वत नर्मदा के भार को झेले यह समस्या थी। इस बीडे को विन्ध्याचल के पुत्र पर्यक ने उठाया। शिव ने नर्मदा को उतारा। पर्यक इसके भार को न झेल सका और पानी चारो ओर फैलकर प्रलय मचाने लगा। तब शिवजी ने इसे सिकोडकर एक धारा के रूप मे बहने की आज्ञा दी। दूसरी लोक कथा नर्मदा और सोन के प्रेम की है। दोनो का उद्गम

पारा पाम एक ही पवत पर होने से नमदा सोन (युवक) को प्रेम करने लगी। दोनों ने प्रणय सूत्र में बधने का मकरप भी किया लेकिन सोन पूव म दूसरी कुमारी महानदी से प्रेम करने लगा। यह देख नमदा अपना बहाव बजाय पूर्व के पश्चिम में सदा के लिए बदलकर सोन से रूठी हुई अरब सागर में जा समायी। इसीलिये यह अविवाहिता कन्या कहलाती है।

यह तो पुराणों की बातें रही। नमदा का जन्मस्थान अमरकण्टक की चोटी है। यह नमदा के कारण इतना प्रसिद्ध है। यहाँ नमदा कुण्ड से निकलती है। कुण्ड में पुराने 20 मन्दिर बने हैं। यहाँ से आधा मील पर मार्कण्डेय आश्रम तीर्थ स्थान है। उद्गम से चार मील आगे कपिलधारा प्रपात इसी पर है। यहाँ 150 फीट ऊपर से पानी गिरता है। यहाँ ब्राह्मी बूटी बहुत उगती है। इसे स्वग से लेने नारदजी आया करते थे, ऐसी पुराणों की मान्यता है। कपिल धारा से कुछ आगे 'दूध धारा' प्रपात है, क्योंकि गिरता पानी दूध सा श्वेत दिखाई देता है। इसके तट पर आगे राम नगर है जो पुरानी राजधानी थी। रामनगर से आगे नमदा म सुरपन नदी मिलती है। यहाँ सीता रपटन वाल्मीकी आश्रम दर्शनीय हैं। पति द्वारा त्यागे जाने के बाद सीता यहा रही थी। यहाँ कार्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। यहाँ से 5 मील आगे घोडा घाट (जहा राम यज्ञ का घोडा पानी पीने आया था) है। पास में योगिनी का मन्दिर है जिसन गुफा में यज्ञ का घोडा छिपाया था।

इस तरह किनारे के तीर्थों को पार करती 48 मील आगे नमदा मध्यप्रदेश के मण्डला जिले में बहती है। मण्डला से जबलपुर पहुँचने पर आगे धुआधार का सुन्दर प्रपात है। यहाँ 40 फीट ऊपर से पानी गिरता है। चाँदनी में इसकी शोभा देखते ही बनती है। दूध का पानी सगमरमर की चट्टानें, ऊपर उठती हुई धुवें सी छहराती बूँदें उसके धुआधार नाम को साथक बनाती है। जबलपुर से आगे मेडाघाट है जहाँ वाण गगा नमदा में मिलती है। वहा से विन्ध्याचल के 200 मील से अधिक लम्बे विकट माग को पार कर नमदा होशगाबाद आती है। यह देश का छोटा प्रयाग माना जाता है।

यहाँ देश के कई तीर्थ स्थल हैं, अनेक मंदिर हैं। यहाँ से घने पर्वतों में बह कर नर्मदा ओंकारेश्वर पहुँचती है। यह पवित्र तीर्थ है यहाँ शिव का ज्योतिर्लिंग है जो देश के 12 लिंगों में से एक है। यहाँ से पर्वतों को छोड़कर नर्मदा मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ मार्ग में महेश्वरी नगरी है। यह होल्कर वंश की पुरानी राजधानी थी। नदी पर अहिल्याबाई के बनाये सुंदर घाट हैं। २२ मील आगे माडूगढ है। रानी रूपमती की कहानी इस गढ से जुडी है। रानी इसी महल से प्रतिदिन नर्मदा के दर्शन करती थी। आगे करीब 600 मील बहकर नर्मदा गुजरात में प्रवेश करती है।

इस क्षेत्र में सैकड़ो तीर्थ स्थान नदी के किनारे हैं। आगे नदी समुद्र में मिलते समय काफी चौडी हो जाती है। नर्मदा के साथ अनेकों धार्मिक ऐतिहासिक कथायें जुडी हैं जो राष्ट्रीय एकता की द्योतक हैं। धार्मिक विश्वास है कि उत्तर की गंगा प्रतिवर्ष काली गाय के वेश में नर्मदा में स्नान करने आती है और स्नान के बाद पुनः श्वेत हो लौट जाती है। राष्ट्रीय एकता की यह कितनी प्यारी भावना है। त्रिपुरा–प्राचीन कलचुरी राज्य की राजधानी इसी के किनारे है। त्रिपुरा कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन भला कौन भूलेगा जिसमें सुभाष बाबू का भव्य जुलूस 52 हाथियों पर निकला था। आजादी के बाद नवनिर्माण में भी नर्मदा का योगदान बढ रहा है।

दक्षिण की गंगा (गोदावरी)

दक्षिण की गंगा गोदावरी का नाम भला कौन भारतीय नहीं जानता गंगा, गीता गायत्री के साथ गोदावरी नाम तो प्रातः स्मरणीय है। यह नदी दक्षिण में त्र्यंबक पर्वत से निकलती है। गोदावरी नाम इसलिये पड़ा क्योंकि यह गौमाता का नाम है। नासिक के पास पंचवटी जहां से सीता माता को रावण चुरा ले गया था इसी के तट पर है।

गोदावरी तट ऋषियों मुनियों की तपोभूमि रहा है। गुरु रामदास, संत ज्ञानेश्वर आदि मुनियों ने इसी के किनारे बसी पैठण नगरी में भक्ति की धारा बहाई। आज पैठण दक्षिण की काशी कहलाती है।

त्र्यंबक पर्वत से निकलकर गोदावरी 800 मील लम्बी यात्रा करती हुई समुद्र में गिरती है। नदी बहुत टेढी मेढी बल खाती बहती है। त्र्यंबक

पवत से इसका मुहाना यदि सीधा चला जाय तो 71 मील से अधिक दूर नही है। जनकल्याण के लिय ही यह पहले उल्टी पश्चिमी घाट को बहकर फिर वापस पूर्वी घाट मे आ गिरती है। इस पर दौलतेश्वर के पास बाध बाधकर कई नहरें निकाली गयी हैं। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद इस पर कई नयी योजनायें बनाई जा रही हैं। इससे इसके जल का उपयोग जन जन के आर्थिक कल्याण मे होने लगा है। प्रयाग, हरिद्वार (गगा तट पर) म जिस प्रकार बारह वप मे कुम्भ मेला लगता है, उसी तरह इसके किनारे पर भी राज महेन्द्री मे पुष्कर का स्नान करने के लिये 12 वप मे मेला लगता है। सस्कृत के प्रसिद्ध कवि भवभूति ने अपनी उत्तर रामचरित मानस मे गोदावरी की सुन्दरता विस्तार से गायी है।

साबरमती

'साबरमती के सत तूने कर दिया कमाल' पूज्य बापू की प्रशस्ति म लिखी कवि की ये पक्तिया साबरमती के साथ बापू का यशगान है। साबरमती का तट अनेक सतो की कथाओ को अपने मे छिपाये है। इस नदी के अनेको नाम हैं। सतयुग मे यह कृतवती कहलायी। त्रेता मे मणिकर्णिका। द्वापर मे चिधवती और कलियुग मे साबरमती। इसका वतमान नाम साबरमती इसलिये पडा है क्योकि इसके किनारे हिरण और साभर (साबर) बहुत हैं।

यह नदी अरावली की पहाडियो से निकलती है। इसके किनारे आदिवासी गुजर रहते है। वे इस नदी के जन्म की कथायें कहते नही अघाते। कहा जाता है कि इस क्षेत्र मे एक बार भयकर अकाल पडा। जन व पशुधन चींटियो सा मरने लगा। लोग इधर उधर भागने लगे। तब कश्यप मुनि ने शिवजी की पूजा कर उन्हें प्रसन्न किया। शिवजी की आज्ञा से गगा को लेकर कश्यप मुनि अरावली पहाडियो पर आये। उन्होने इस 6 धाराओ मे बहाया। उसमें से एक साबरमती है। अपने जन्म स्थान से बहती हुई यह नदी गुजरात प्रात को हजारो वर्षों से सीच रही है। इस प्रदेश की यह पूज्य

गया है। शौनय, वशिष्ठ, वामदेव, गौतम, गालव, भारद्वाज, कश्यप, भृगु, दधीचि आदि हजारों ऋषियों ने इसके तट पर साधनायें की हैं।

अहमदाबाद से आगे इसमें चन्द्रभागा मिलती है। देवों के कल्याण के लिये अस्थि दान करने वाले दधीचि का आश्रम यहीं था। यहीं सम्पूर्ण देश से विद्यार्थी आ आकर उनके पास पढ़ते थे। यहाँ से आगे बढ़कर नदी समुद्र में गिरने से पहले साबरमती के संत, महात्मा गाँधी की अमर गाथा गाती है। साबरमती आश्रम यहाँ है। देश की आजादी के लिये जन जन में प्राण फूँकने वाले सत्य अहिंसा का पाठ पढ़ा कर देश को प्रेम और एकता के सूत्र में बाँधने वाले आजादी के आंदोलन का प्रारम्भ यहीं से हुआ था।

कृष्णा नदी

दक्षिणी सह्याद्रि जंगल के महाबलेश्वर पर्वत से निकलकर यह सतारा तक प्रायः सीधी बहती है। इसके किनारे के पत्थर चिकने, काले, ठण्डे और सुहावने हैं। चिकने कंकरों पर कत्थई रंग की धारियाँ मन को मोह लेती हैं।

कृष्णा में माहुली के पास वेरया नदी मिलती है। इससे यह स्थान तीर्थ बन गया है। ज्यों ज्यों कृष्णा आगे बढ़ती है कई नदियाँ उतावली से इसमें मिलती जाती हैं। कृष्णा को महाराष्ट्र की माता भी कहते हैं। इसकी चौड़ी कछारें, कगारें हैं। इस नदी के कछारों में तरबूज, खरबूजे, ककड़ियाँ आदि खूब होते हैं। खेती भी होती है। सांगली (तट की नगरी) के पास सुंदर घाट बने हैं। सुंदर मंदिर, अखाड़ों के बड़े बड़े हाथी मांगलों के महाराष्ट्री वैभव को गाते हैं। यह नदी महाराष्ट्र की आराध्य देवी है, परम पवित्र मानी जाती है। समर्थ गुरु रामदास शिवाजी, बाजीराव सरदार घोरपडे, पटवर्द्धन, नाना फडनवीस, राम शास्त्री प्रभृति कृष्णा नदी के परिवार में ही फले और फूले हैं। पंढरपुर में जो चन्द्रभागा नदी है वही आगे भीमा नाम से कृष्णा में मिलती है। आगे जाकर तुंगभद्रा भी कर्णाटक क्षेत्र में इसी में समा जाती है। महाराष्ट्र कर्णाटक और आंध्र के ऐतिहासिक क्षेत्रों को एकता के सूत्र में बांधने वाली कृष्णा नदी ही है। सन् 1921 में

सम्पूर्ण स्वराज्य का बीड़ा उठाने वाले देश भक्तो, स्वराज्य जन्मसिद्ध अधिकार बताने वाले तिलक की स्मृति को तरोताजा करने वाली मातृदृष्णे ! तू कोयना भीमा, तुगभद्रा के समान सारे देश में एकत्व की भावना पर देश प्रेम की प्रेरणा जन-जन मे भर दे।

चम्बल

चम्बल का पौराणिक नाम चमन्यवती है। इसके जन्म की पौराणिक कथाएँ रन्तिदेव तथा रैदास सन्तो से जुड़ी हैं। चम्बल का उद्‌गम मऊ के पास विन्ध्याचल पवत के उत्तरी ढलान से हुआ है। कोटा नगर से 60 मील दक्षिण की ओर चोरासीगढ के निकट राजस्थान मे प्रवेश करने से पूव चम्बल मध्यप्रदेश मे करीब 225 मील बहती है। मध्यप्रदेश मे बहने वाली मुख्य नदियाँ रीतम, कालीसिन्ध, क्षिप्रा, गभीरी आदि हैं। मालवा की उपजाऊ भूमि के मदानी क्षेत्र मे बहती हुई चम्बल चौरासीगढ के पास पठारी भाग म प्रवेश करती है। वहा से प्राय 50 मील तक का लम्बा भाग पठारी है जो आगे कोटा तक चला गया है। राजस्थान मे चम्बल का बहाव क्षेत्र करीब 190 मील है। राजस्थान मे चम्बल की सहायक नदिया काली सिन्ध, मेजा पावती व बनास मुख्य हैं। चम्बल नदी धौलपुर के पास उत्तर प्रदेश मे प्रवेश करती है। आगे चम्बल उत्तर मे इटावा के पास जमुना मे मिल जाती है। भूगभ वेत्ताओ के अनुमान से चम्बल की उम्र 90 लाख वप है। इस अवधि मे वह अपने पुरातन से लेकर आधुनिक इतिहास समेटे है। इस पर चम्बल घाटी विकास परियोजना राजस्थान तथा मध्यप्रदेश दोनो की मिली-जुली योजना बनाई गई है। यह योजना चार चरणो मे विभक्त थी। जिसमे दो चरण पूरे हो गये हैं। पहले चरण मे गाँधी सागर व कोटा बेराज (अवरोधक बाँध) तथा दूसरे मे राणा प्रताप सागर बाध, (रावत भाटा) बन चुके है। यह बाँध ▮ फरवरी को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने राष्ट्र को समर्पित कर दिया है। इसमे 140 लाख एकड भूमि की सिंचाई व 239 मैगाटन बिजली पदा होती है। तीसरे चरण म कोटा से 16 मील दक्षिण म 147 फुट ऊँचा जवाहर सागर बाध है।

कावेरी

कावेरी नदी कुर्ग प्रान्त में ब्रह्मगिरि नामक पर्वत से उत्पन्न होकर तामिलनाडु के त्रिचनापल्ली और तंजौर जिलों में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में विलीन होती है। कावेरी से अति प्राचीन काल से ही अनेक नहरें निकाली गयी गयी हैं। इन नहरों के कारण सारे तामिलनाडु प्रदेश की खेती सदा फली फूली रहती है। उत्तर भारत में गंगा नदी की महत्ता जिस प्रकार मानी जाती हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कावेरी और ताम्रपर्णी, तामिलनाडु की गंगा और यमुना है। इन दो नदियों के कारण तामिलनाडु पुण्यभूमि बन गया है। इन दो नदियों के किनारे तामिलनाडु में असंख्य पुण्य क्षेत्र बसे हुए हैं।

पंचनद

पंजाब प्रदेश में सिन्धु, सतलज, रावी, व्यास, चिनाब नदियाँ प्रवाहित हैं। इसी कारण यह प्रदेश 'पंचनद प्रदेश' कहलाता है। सभी नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलकर प्रथम पश्चिम दिशा में फिर मुड़कर दक्षिण में बहती हैं। इन नदियों का जल परस्पर मिलकर सिन्धु नदी में समाता है जो एक विशाल नदी के रूप में अरबसागर में समाहित हो जाती है। इनके प्रभाव से पंजाब प्रदेश अत्यन्त उपजाऊ तथा गेहूँ की खेती के लिए भारत प्रसिद्ध है। वर्तमान में इन नदियों पर अनेक बाँध तथा विद्युत उत्पादन गृह बने हैं जो देश की आर्थिक समृद्धि के साधन हैं। प्रसिद्ध भाखरा नांगल बाँध सतलज नदी पर इसी प्रदेश में है। इन्हीं नदियों के प्रभाव से पंजाब अनाज के साथ दही दूध का सम्पन्न क्षेत्र है। अनेक तीर्थ और प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्थानों को समेटे पंचनद भारत की भावात्मक एकता का सदैव शंख-नाद करता रहा है।



सप्त पावन पुरियाँ

भारतीय परम्परा म समन्वयतात्मक एकता का योग रहा है। आज इस पर राजनीतिक स्वार्थों ने अपवित्र हाथ डाल रखा है एवम् जन मानस को दूषित कर विभाजनो मे बांटा जा रहा है। इस सस्कृति महासरोवर की राजनीतिक स्वाथ रूपी काई को हटा कर देखें तो सम्पूरण भारत धरा पर निमल अगाध पावन पय रूपी सनातन सस्कृति के दशन होंगे।

भारतीय सनातन सस्कृति की सप्त नगरी या पुरी जनमत की भावना ही नही किन्तु विशाल देश की भावात्मक एकता को प्रतिपादित कर रही है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तते मोक्षदायिका ॥

मुमुक्षु पुरुषो के लिय सदव मोक्षद्वार खुला रखने वाली नगरियो का महत्व इनके दशनो म निहित है।

नगरी अयोध्या (उत्तर-प्रदेश)

धम पूत पुरी एवम् तुलसी की अनन्य आराधन स्थली अयोध्या अपना स्वय का भारतीय इतिहास मे अक्षुण्य एवम् अविस्मरणीय स्थान रखती है।

ऐतिहासिक विचार से पुरातन भारत की यह पावनपुरी अपना गौरव मय स्थान ही नही रखती अपितु अनेक दिग्विजेता सम्राटो को जन्मदातृ जन कल्याण मे रत व दान देने म रिक्त राज कोषागार तथा मृत्तिका पात्र से पान करने वाले सम्राट रघु की उद्दीप्त कीर्तिगाथा आज भी गा रही है।

अयोध्या देश की आदि नगरी कहलाती है। यही सूयवशीय मनु ने सृष्टि आरम्भ की थी। जल प्लावन के पश्चात् यही भू भाग उभर कर स्थित

हुआ था। जहाँ इस नगरी का धार्मिक महत्व है वहीं राजनैतिक महत्व भी कम नहीं क्योंकि इससे प्रतापी राजाओं की तालिका जुड़ी हुई है। पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार वंश परम्परागत केवल सूर्य वंशीय 123 राजाओं ने अखण्ड राज्य किया बताया जिसका कालक्रम 2204 वर्ष निकलता है। पौराणिक मत से मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को उत्पन्न हुए ६ लाख वर्ष माना जाता है। जन शास्त्रों से इसकी स्थिति और भी पुरातन सिद्ध होती है तथा 76 अरा म गणना समाप्त होती है। मनु वंश मे राम 64वीं पीढ़ी म अवतरित हुये बताये जाते हैं।। उस युग मे यह नगरी चरम उत्कर्ष पर थी। त्रेता युग के बाद इस नगरी का महत्व कम हुआ तथा महाभारत काल म तो ऐतिहासिक मात्र रह गया। बौद्ध धर्मियों न तो अयोध्या नगरी को स्वयं सम्भूत कहा है। जैन 24 तीर्थकरो म 24 सूर्यवंशी थे तथा आदि तीर्थकर रिखबदेव यहीं अवतरित हुये थे। सिक्ख सम्प्रदाय म भी इसको पूजित नगरी कहा है। बाद मे मुसलमान भी इसकी महत्ता पर आकृष्ट हुये और अपना तीर्थ बनाना चाहा तथा 75 से अधिक हमले भी हुये। प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय ने इसको अपने साथ जोड़कर गौरव अनुभव करना चाहा।

रामायण काल म इसकी स्थिति 12 योजन (96 मील) लम्बी तथा 3 योजन। (24 मील) चौड़ी थी। यह विभिन्न देशों का सांस्कृतिक केन्द्र रही है। वैदिक अयोध्या तथा रामायणकालीन अयोध्या काल के गर्त म विलीन हो गई। यहाँ की मिट्टी व जल बड़े मीठे है। यहाँ गन्ना अधिक होता था। इसी कारण सम्भव है अयोध्या के राजवंश को इक्ष्वाकु वंश कहा गया था। यह बाहरी यात्रियों का वर्ण्य विषय भी अधिक रही है। काल गति से यह नगरी वीरान हो चुकी थी। सम्राट वीर विक्रमादित्य ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर यहाँ तीन सौ साठ मन्दिर बनवाये तथा नगरी का परिशोधन करते हुये पुनः प्रतिष्ठापना की। इसकी रक्षा साधु संतो व वैरागियों ने अत्यधिक की। नवाब वाजिद अलीशाह न तो फकीरों और मौलवियों के फतवों की धमकी के आगे न झुक कर उसकी धार्मिक रक्षा की थी।

आज की अयोध्या सबका तीर्थ है। सम्पूर्ण जनता की इसमे आस्था है। अनेक दर्शनीय स्थल यात्रियों का मन मोहते हैं। आज भी अनेक सिद्ध

महात्मा अपनी साधना सरयू तट पर कर रहे हैं। कनक भवन भारतीय सेना द्वारा निर्मित राम जानकी मंदिर भारतीय मन्दिरों में विशेषता रखता है।

रामनवमी का पुण्य पर्व विशेष रूप से मनाया जाता है। सरयू को साक्षात जलस्वरूप ब्रह्ममाना गया है। इसी कारण जल रूपेण ब्रह्म व सरयू मोक्षदा सदा कहा गया है। यह नगरी कवियों की काव्य धारा से भी पतित पावनी रसधारा बनकर अवतरण करती है।

मथुरा

अयोध्या की भाँति ही जहाँ के कारागृह में अजन्मा का आविर्भाव हुआ वही मथुरा नगरी अनिर्वचनीय महिमा मयी है। यहाँ मोक्षदा नगरी का महत्व है। यहीं स्वयं भक्तराज ध्रुव ने ध्रुवपद प्राप्त करने के साथ धरातल पर इस स्थल को पुण्य स्थल बनाया था। ऐतिहासिक परम्पराओं में यह नगरी अत्यंत प्राचीन है।

मथुरा को भावुक विद्वानों ने तीन लोक से न्यारी कहा है तथा 'मथुरा' शब्द में तीन अक्षर तीन वेदों से बढ़ कर कहे हैं क्योंकि वेदत्रयी तो परब्रह्म के पीछे दौड़ता है। मथुरा का वर्णन अनेक ग्रंथों में अनुपम और विशद गाया गया है।

सूर्य सुता, कलिमल मर्दिनी कालिन्दी के कूल पर स्थित मथुरा के भव्य प्राचीर एवं भव्य मंदिर जनमानस को सदैव शान्ति एवं शाश्वत सुख का आभास कराते हैं एवं स्वर्ग सोपान से अवस्थित हैं। सूरदास की मधुपुरी वैकुण्ठ से भी अधिक गरीयसी है।

इसका इतिहास युग युगान्तर से उज्जवल रहा है। यह नगरी एक समय संस्कृति और कला का बहुत बड़ा केन्द्र रही है।

मध्य काल में अनेक आक्रमणों में यह ध्वस्त हुई और इसका करुण रोदन आज भी लाल पत्थरों से प्रकट हो रहा है। तथापि जहाँगीर के शासन काल में औरछा नरेश द्वारा निर्मित भव्य मंदिर अपनी कीर्ति गाथा गा रहा है।

वृन्दावन व आसपास के क्षेत्र की क्रीडा स्थली होने से यह करोड़ों मनुष्य का सांस्कृतिक और त्याग व तपस्या के साथ धार्मिक केन्द्र बना हुआ है।

हरिद्वार

हरिद्वार हिंदू तीर्थों में प्रसिद्ध तीर्थ है। इसका अत्यधिक पौराणिक महत्व है। इस नगरी के कई नाम हैं। हरिद्वार, हरद्वार, गंगाद्वार, कुशावर्त, मायापुरी, कनखल, ज्वालापुर आदि। सात पुरियों में से मायापुरी हरिद्वार के विस्तार में आ जाती है। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष जब सूर्य और चन्द्र मेष में बृहस्पति कुम्भ राशि में स्थित होते हैं तब यहां भारत का सर्वश्रेष्ठ धार्मिक मेला लगता है। उसके छठे वर्ष अर्द्ध कुम्भ होता है।

पद्म पुराण और महाभारत में हरिद्वार को स्वर्ग सोपान के समान बताया है। कोटि तीर्थों के स्नान का फल हरिद्वार में एक बार गंगा स्नान से प्राप्ति का वर्णन मिलता है। नारद पुराण में यहाँ रह कर व्रत उपवास और यज्ञ आदि करने का अत्यधिक महत्व बताया है। यहाँ आस पास का सम्पूर्ण क्षेत्र दर्शनीय व पौराणिक महत्व का है जिसमें ऋषिकेश, ब्रह्मकुण्ड या हरि की पौड़ी गऊ घाट, कुशावर्त घाट, राम घाट विष्णु घाट, गणेश घाट, नारायणी घाट, नीलधारा, चण्डी देवी अंजनी, गौरी शंकर मन्दिर, बिल्वकेश्वर कनखल दक्षेश्वर महादेव, सती कुण्ड कपिल स्थान, चौबीस अवतार, सप्तधारा, वीर भद्रेश्वर आदि हैं। इनका यत्र तत्र विभिन्न प्रकार की तपश्चर्याओं और पौराणिक कथाओं से विशद वर्णन मिलता है।

काशी पुरी

यह पुरी ऐतिहासिक दृष्टि से संसार की सबसे प्राचीन नगरी है। इसका वेदों में कई जगह उल्लेख है। पौराणिक दृष्टि में भी यह आद्य वैष्णव स्थान है। शिव को ब्रह्महत्या से मुक्ति देने वाला कपालविमोचन तीर्थ भी यहीं है। काशी खण्ड में इसी के 12 नाम है - काशी, वाराणसी, अविमुक्त, आनन्द-कानन, महाश्मशान, रुद्रवास काशिका, तप स्थली मुक्ति भूमि और शिवपुरी अथवा त्रिपुरा राज नगरी इसका तीन लोक से न्यारी त्रिलोक पावनी देवताओं से सेवित विश्वनाथ की नगरी कहा है। यहाँ देह त्यागने का मुक्ति से सम्बन्धित बताया है।

काशी भारत का प्राचीनतम विद्या केन्द्र और सांस्कृतिक नगर रहा है। यह सम्पूर्ण मानव समाज की नगरी कहलाती है। भारत के सभी प्रान्तों

के निवासियों के यहाँ मुहल्ले हैं। काश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम से कच्छ तक के लोग स्थाई रूप से यहाँ रहते हैं। यहाँ प्रान्तीयता एवं संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है।

द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा 51 शक्ति पीठों में से यह एक है। यह नगरी अर्द्ध चन्द्राकार रूप से भगवती गंगा के बायें तट पर बसी है। यह राज नगरी भी रही है इस पर कई बार आक्रमण हुये हैं। काशी नगरी में गंगा के शतश घाट इसकी कलित कीर्ति के द्योतक हैं तथापि 41 घाट विशेष महत्व के हैं। यहीं तुलसीदास ने राम की उपासना करते हुये देह त्याग किया। पंडितराज जगन्नाथ ने अपनी स्तुति से गंगा मां को प्रसन्न कर मुक्ति प्राप्त यहीं की। भगवान बुद्ध ने सारनाथ में ज्ञान गंगा बहाई थी। जैनों के सातवें व 23 वें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथजी का यहीं जन्म हुआ था। यहीं प्रसिद्ध मन्दिर व स्याद् वाद विद्यालय है।

भारत की प्रमुख शिक्षा संस्था हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी विद्यापीठ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, नवीन कालेज, संस्कृत विश्वविद्यालय व सरस्वती पुस्तकालय दर्शनीय है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की सत्य कथा भी यहीं जीवन कथा के रूप में प्रकट हुई।

कान्ची (तमिलनाडु)

दक्षिण भारत में मद्रास से 35 मील दूर पर शैव और वैष्णव धर्म और संस्कृति की नगरी कान्ची सर्वमुख तीर्थ स्थली है। इसका नाम कान्चीपुरम् है तथा एक ही नगर के दो भाग माने जाते हैं। शिवकान्ची एवम् विष्णु कान्ची।

शिवकान्ची—सर्व तीर्थ सरोवर ही शिवकान्ची में सर्वमुख्य तीर्थ है। यहीं अनेक मन्दिरों में काशी विश्वनाथ का मन्दिर मुख्य मन्दिर है। यह प्राचीन शिल्प कला का भव्य भण्डार है और 10 मंजिल ऊँचा है। इसकी दोनों परिक्रमाओं में अनेक प्रसिद्ध मन्दिर हैं। इसी के प्रांगण में पार्वती ने आम्रवृक्ष के नीचे शिव तपस्या की थी।

कामकोटि या कामाक्षा देवी मन्दिर प्रथम शक्ति पीठ आदि शंकराचार्य द्वारा निर्मित कहा जाता है। यहां के समस्त वैष्णव व शैव मन्दिर इस ढंग

से निर्मित किये गये हैं कि सबका मुख कामकोटि पीठ की ही ओर है। राजा बलि की श्रुतलिश्रुत कथा के आधार पर त्रिविक्रम भगवान वामन मन्दिर तथा उसके सामने सुब्रह्मण्य मन्दिर व उसमें भव्य मूर्तियां हैं। इनके अतिरिक्त अनेक श्रेष्ठ मन्दिरों के साथ साथ एक सौ आठ शिव मन्दिरों की भव्य शृंखला है। इससे इनका नाम आभासित होता है।

विष्णु कांची—शिवकांची से कुछ दूर पर विष्णु कांची है। यहाँ वरद राज या देवराज का विशाल मन्दिर है। मन्दिर की निर्माण कला अति उत्तम है। दक्षिण भारत का सबसे बड़ा ब्रह्मोत्सव वैशाख पूर्णिमा को मनाया जाता है। श्री रामानुजाचार्य की आठ में से एक प्रधान पीठ व महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य की बैठक यहीं है जिनकी कीर्ति दक्षिणोत्तर भारत सदैव गाता रहेगा।

अवन्तिका (मध्य प्रदेश)

क्षिप्रा नदी के तट पर कीर्ति शालिनी अवन्तिका (उज्जैन) । भारत हृदय महाकाल नगरी बसी हुई है। यह स्थल पृथ्वी का नाभिस्थल कहलाता है। सप्त पुरियों में उसका महत्व अधिक है। यहीं श्रीकृष्ण और बलराम ने सान्दीपन के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। यह महाराज विक्रमादित्य के समय भारत की राजधानी थी। देश में ज्योतिष विद्या का यह केन्द्र रहा है। प्रति 12 वें वर्ष कुम्भ व छठे वर्ष अर्द्ध कुम्भ का मेला लगता है। मेघदूत में कालिदास ने महाकाल की मनोरम स्तुति की है। स्वामिभक्त व राजस्थानी भूमि का सपूत वीरवर दुर्गादास राठौर महाकाल के सम्मुख पंच भौतिक शरीर को छोड़कर शिवपुरी का अतिथि बना।

दर्शनीय स्थल अनेक हैं उनमें महाकाल मन्दिर, गणेश मन्दिर, हरि सिद्ध देवी चौबीस खम्भा गणेशपाल मन्दिर, गढ कालिका, भतृहरि गुफा, काल भैरव, सिद्धिवट, सान्दीपनि आश्रम, वेधशाला और अन्य कई देव स्थान प्रमुख हैं। महाकाल का वर्णन तो महिमा मयी है।

आकाशे तारकं लिंग पाताले हाटकेश्वरम्।
मृत्युलोके महाकालम् लिंगत्रय नमोऽस्तुते ॥

सान्दीपनि आश्रम के पास चित्रगुप्त तीर्थ भी कायस्थ वर्ग का उत्कृष्ट तीर्थ स्थल है। यहाँ यम द्वितीया को मेला लगता है। जैन धर्म के चौबीसवें

तीर्थंकर महावीर स्वामी ने यहीं तपस्या की थी। उज्जैन नाम भी जैन शासन काल म पडा।

पुरी द्वारावती (द्वारका धाम) गुजरात

यहा आवास करने मात्र से कीट, पतग, पशु, पक्षी, सरीसृप योनिया मे पड़े प्राणिमात्र को तथा द्वारिका की रज पापियो को मुक्ति देती है इसलिए इसे साक्षात स्वर्गद्वार बताया गया है। यह सब तीर्थों मे उत्तम और भगवद् भक्ति का कोटि गुना अक्षय फल एव मोक्षदायिनी कही गई है।

कहा जाता है कि भगवान कृष्ण की राजनगरी काल का ग्रास होकर कलि के कारण समुद्र मे विलीन हो गई है। द्वारिका के विलीन हो जाने पर अनुमानित स्थलो को मूल द्वारिका कहा जाने लगा।

वर्तमान द्वारिका गोमती द्वारिका कही जाती है। यह काठियावाड म पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित है। गोमती के उत्तरी तट पर अनेक घाट बने हुए है। गोमती और समुद्र सगम के मोड पर सगम घाट बना हुआ है। यहा अनेक सुरम्य मन्दिर है।

दर्शनीय स्थलो म श्री रणछोडरायजी का मन्दिर मुख्य है। इस मन्दिर पर पूरे थान की ध्वजा उडती है। विश्व की यह सबसे बडी ध्वजा है। मन्दिर के दक्षिण मे भगवान त्रिविक्रम के मन्दिर राजा बलि तथा सनकादि चारो कुमारो की सुन्दर मूर्तिया हैं।

शारदा मठ जगद्गुरु शकराचार्य की शारदा पीठ है।

कहा जाता है कि भगवान श्री कृष्ण ने विश्वकर्मा से कुशस्थली द्वीप पर द्वारिकापुरी बनवाई तथा वे मथुरा से सम्पूर्ण यादव कुल को यहाँ ले आये थे। श्रीकृष्ण का निज भवन नही डूबा। यही श्रीरणछोडराय के मन्दिर की प्रतिष्ठा है।

□□

तीर्थो का देश भारत

भारत को तीथ भूमि कहना काई अतिशयोक्ति नही है। यह वह पुण्य भूमि है जहाँ देवता भी जन्म लेन के लिय तरसते हैं। भारत के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा अर्पित करते हुए श्री मद्भागवत्कार तो आत्मविभोर हो, यह गा उठे—

कल्पायु षा स्थानजयातु पुनर्भवात,
क्षणायुंजां भारत भूमयो वरम।
—श्री मद्भा० 5। 19। 23

अर्थात् इस स्वग की ता बात ही क्या एक कल्प की आयु वाले ब्रह्मलोक आदि लोको की अपेक्षा भारत मे छोटी आयु प्राप्त करके भी जन्म लेना अच्छा है।

भारत की प्रत्यक तीथ की अपनी अलग अलग और अपना अलग महत्त्व है। यहाँ असख्य तीथ हैं। इन तीर्थों की महिमा इस कारण है कि इनम महापुरुषों ने जन्म लिया है। निवास किया है अथवा भगवान ने विभिन्न अवतारो के रूप मे प्रकट होकर उन क्षेत्रो म अपनी लीला का विस्तार किया है।

यहाँ पर तीथ शब्द का अथ जान लेना उपयुक्त हागा। "तृ" धातु स 'थ" प्रत्यय जोडने पर 'तीथ" शब्द बनता है। इसका शाब्दिक अथ है कि "जिसके द्वारा तरा जाय।' जन विद्वानो की मान्यता है कि—जिस स्थान पर काई पूज्य वस्तु विद्यमान हो जहाँ तीथकर या आत्मज्ञानी विभूतियाँ निवास करती हो या जहाँ पर उन्होने निर्वाण प्राप्त किया हो, वे स्थान तीथ कहलाते हैं। पद्म पुराण मे लिखा है कि "तरतिपापादिक यस्मात" अर्थात्

जिसके द्वारा मनुष्य पाप आदि से छूट जाए, उसे तीर्थ कहते हैं। एक विद्वान ने तीर्थ शब्द का अर्थ पवित्र करने वाला बताया है।

हिमालय के कलाश पर्वत से कन्या कुमारी तक कामाख्या से लेकर कच्छ की सम्पूर्ण भूमि तीर्थ है। यहाँ की धरती का प्रत्येक कण भगवान भक्ति और विश्ववंद्य विभूतियों की चरणरज से पुनीत है।। प्राचीन काल से आज तक अनेक विभिन्नताओं के होते हुये भी भारत मे जिस सांस्कृतिक एकता के दर्शन होते हैं उसमे तीर्थों का अत्यधिक योगदान है। तीर्थों में पूर्वजो की महानता और गौरव के अनेक रत्न छिपे पड़े हैं। उन्हें खोजकर उनके दिव्य प्रकाश में सफल जीवन के राज मार्ग पर अग्रसर होना ही तीर्थ यात्रा का मुख्य लक्ष्य है। भारत के उन्ही असंख्य तीर्थों में से कुछ प्रमुख तीर्थों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

भारत के चार धाम

(1) श्री बदरीनाथ धाम

श्री बदर्याश्रमं पुण्यं यत्र यत्र स्थितः स्मरेत्।
स याति वैष्णवं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितः ॥
—वराह पुराण

"आप कहीं भी हो, बदरीनाथ का स्मरण करने से भयरहित होकर वैष्णवधाम के अधिकारी हो जाते हैं।"

पर्वतराज हिमालय के मनोरम क्रोड में तीर्थ शिरोमणि बदरी विशाल का पवित्र धाम है। सांस्कृतिक दृष्टि से देश की भावात्मक एकता के सूत्र में ग्रथित करने वाले भारत के चार कोनों में स्थापित चार धामों में बदरीनाथ तीर्थ प्रथम है। यह पुण्य सलिला अलकनन्दा के तीर पर स्थित है। यहीं पर नर-नारायण पर्वत है जिन्होंने अति प्राचीन काल में सहस्रकवच राक्षस से भारतीयों की रक्षा की थी। आज भी ये सीधे सपाट पर्वत उत्तर की ओर से महत्त्वाकांक्षी चीनी आक्रान्ताओं को रोके हुए हैं। सम्भव है इसी भावना से अभिभूत हो वराह पुराण में उपर्युक्त निर्भयता का उद्घोष किया गया है।

बदरीनाथ के विश्वविख्यात मंदिर में शालग्राम शिला से निर्मित भगवान बदरीनाथ की चतुर्भुज मूर्ति ध्यानावस्थित मुद्रा में प्रतिष्ठित है। प्राचीनकाल में देवताओं द्वारा प्रतिष्ठापित इस मूर्ति के प्रधान पुजारी नारद हुए। बौद्ध काल में बौद्ध इस मूर्ति को भगवान बुद्ध की मूर्ति मान कर पूजते रहे। एक सहस्र वर्ष पूर्व देश की भावात्मक एकता को पुनः सुदृढ़ करते हुए जब आदि जगद्गुरु शंकराचार्य बदरीनाथ तीर्थ में पहुँचे तो ज्ञात हुआ कि चीनी आक्रमण के भय से पुजारियों ने मूर्ति को नारदकुण्ड में फेंक दिया है। शंकराचार्य ने कुण्ड के गहरे हिम शीतल जल में गोता लगाकर उस दिव्य मूर्ति को निकाला और उसकी मंदिर में प्रतिष्ठा की। उन्होंने केरल के एक विद्वान ब्राह्मण को पुजारी के रूप में नियुक्ति की। आचार्य श्री ने मंदिर के पास ही उत्तर भारत के धर्मानुशासन को एकता और सुव्यवस्था के सूत्र में बांधने के लिये ज्योतिर्मठ की स्थापना की।

मंदिर में श्री बदरीनाथ की मुख्य मूर्ति के दाहिने ओर देवताओं के धनाध्यक्ष कुबेर की पीतल की मूर्ति है। उनके सामने उद्धवजी हैं तथा उद्धवजी की उत्सव मूर्ति है। उद्धवजी के पास ही चरणपादुकाएँ हैं। बायीं ओर नर नारायण की मूर्तियाँ हैं। इनके साथ ही श्री देवी और भूदेवी की मूर्तियाँ हैं। मुख्य मंदिर से बाहर मंदिर के अहाते में शंकराचार्य की गद्दी और मंदिर का कार्यालय है।

(2) श्री रामेश्वर धाम।

जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढाइहिं। सो सायुज्य मुक्ति नर पावइहिं॥
—तुलसी

भगवान श्री राम द्वारा निर्मित कराये गये रामेश्वर तीर्थ को स्कन्द पुराण ने सभी तीर्थों और सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ बताया है। तमिलनाडु की राजधानी मद्रास से धनुषकोटि तीर्थ तक जाने वाली रेलवे लाइन पर पाम्बन स्टेशन है। वहाँ से एक लाइन सीधी रामेश्वर तीर्थ तक जाती है। रामेश्वर तीर्थ एक *11* मील लम्बे तथा *6* मील चौड़े एक द्वीप पर बसा हुआ है जो रेलवे पुल से भारत भूमि से जुड़ा हुआ है।

रामेश्वर तीर्थ भारत के चार धामों में से दक्षिण में स्थित धाम है। त्रेता युग में भगवान राम ने रावण पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि से भी रामेश्वर ज्योतिर्लिंग की स्थापना की थी। इस प्रसंग में दक्षिण भारत में एक अन्य कथा प्रचलित है कि श्रीराम ने रावण वध के बाद जब भारत भूमि पर पैर रखा तो ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त होने के लिये उन्होंने रामेश्वर महादेव की स्थापना की थी। यह महान तीर्थ तमिलनाडु राज्य में है।

रामेश्वर का विशाल और भव्य मन्दिर द्वीप के उत्तर पूर्वी समुद्र तट पर लगभग 70 हजार वर्ग फीट के घेरे में बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर एक ऊँची प्राचीर है। इसमें दो द्वार हैं। पूर्व और पश्चिमी द्वारों पर क्रमशः 100 फीट और 70 फीट ऊँचे गोपुरम बने हुए हैं। मुख्य मन्दिर का परिक्रमा पथ जो तीसरे प्रकार के अन्दर है भारतीय स्थापत्य का अद्भुत नमूना है। 1200 स्तम्भों पर आधारित इसके ऊँचे बरामदे मदुरा के नायक राजाओं द्वारा निर्मित हैं। ये कुल 4000 फीट लम्बे और 30 फीट तक ऊँचे हैं। बरामदे के दोनों ओर के विशाल स्तम्भों की दिव्य और मनोरम निर्माण कला देखने योग्य है।

मन्दिर के सम्मुख एक स्वर्ण मंडित स्तम्भ के पास एक मंडप है। एक श्वेत पत्थर की नंदी की 8 फीट लम्बी और 13 फीट ऊँची विशाल मूर्ति है। मन्दिर में भगवान रामेश्वर स्वयं एक अत्यन्त सुन्दर पारदर्शी स्फटिक लिंग के रूप में विराजमान हैं। मूर्ति का नित्य गंगाजल से ही अभिषेक होता है। मन्दिर की उत्तर की ओर उसी से सटा हुआ हनुमदीश्वर (विश्वनाथ) का मन्दिर है। यह लिंग हनुमानजी का लाया हुआ है। सर्व प्रथम इनका दर्शन पूजन करके ही लोग रामेश्वर लिंग पर गंगाजल चढ़ाते हैं। मन्दिर के अहाते में 22 तीर्थ और हैं। मन्दिर की परिक्रमा में अनेक देव मूर्तियों के दर्शन होते हैं। मन्दिर के क्षेत्र में ही उत्तर भारत के तीर्थों के नाम के कुण्ड हैं। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीन काल से ही इस महान देश की संस्कृति और इतिहास एक ही हैं।

श्री रामेश्वर मन्दिर से 1 मील दूर गन्धमादन पर्वतीय क्षेत्र है, जहाँ से हनुमान जी ने समुद्र पार कर लंका जाने का अनुमान लगाया था। आस-

पास के क्षेत्र मे रामझरोखा, साक्षी विनायक, जयतीथ, सीताकुण्ड सीतातीथ और रामतीथ आदि दर्शनीय स्थल हैं।

(3) श्री द्वारिका धाम.

पासवो द्वारकीया वै वायुना समुद्रीरिता ।
पापिनां मुक्तिदा प्रोक्ता किं पुनर्द्वारिकामुवि ।।
—स्कन्दपुराण ।

अर्थात् वायु द्वारा उड़ाई द्वारिका की धूल भी पापियो को मोक्ष देने वाली है फिर साक्षात् द्वारिका की तो बात ही क्या है ।

भारत के चार धामो मे द्वारिका तीथ तीसरा धाम है। इसे सब तीर्थों मे उत्तम माना गया है। द्वारिका को द्वापर युग मे भगवान कृष्ण की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ था। द्वारिका पश्चिमी भारत की धरती का अन्तिम छोर है। इसके बाद ही लहराते हुए अरब सागर के दर्शन होते हैं। यह महातीथ गुजरात राज्य म है। पश्चिमी रेलवे की दिल्ली अहमदाबाद लाइन पर मेहसाणा स्टेशन है वहाँ से सुरेन्द्रनगर आकर सुरेन्द्रनगर ओखा लाइन पर स्थित द्वारिका स्टेशन के लिये गाडी पकडनी पडती है।

गोमती द्वारका

द्वारका पहुँच कर यात्री सब प्रथम गोमती द्वारका मे स्नान करते हैं। गोमती द्वारका का तीथ समुद्र की एक खाडी है जिसमे ज्वार का पानी भरा रहता है। स्नान के लिये खाडी पर 9 पक्के घाट बने हुए हैं।

रणछोडरायजी का मन्दिर

गोमती की 56 सीढियाँ चढ़कर श्री रणछोडरायजी का विश्व विख्यात मन्दिर है। यही द्वारका मुख्य तीथ है। मन्दिर विशाल और भव्य है। मदिर की ऊँचाई 175 फीट है। यह सात मजिला है। विश्व की सबसे बडी पताका जो पूरे-पूरे थान से बनाई जाती है इस मन्दिर के कलश पर फहराई जाती है। मन्दिर की मुख्य वेदी पर भगवान रणछोडराय की श्यामवर्ण चतुर्भुज मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह तीन फीट ऊँची है।

बेट द्वारका

यहाँ का मन्दिर राजमहल जैसा विशाल और भव्य है। ऐसा किंवदन्ती है कि गोमती द्वारका में तो श्री कृष्ण का राजदरबार लगा करता था और बेट द्वारका उनका निवास था। ऐसा कहा जाता है कि द्वारका की रणछोड़जी की मूर्ति तो आजकल डाकोर जी के मन्दिर में है। रणछोड़जी की एक दूसरी मूर्ति द्वारका के मन्दिर में प्रतिष्ठित है। द्वारका क्षेत्र में और भी अनेक तीर्थ विद्यमान हैं।

शारदा मठ

सम्पूर्ण भारत की पैदल यात्रा पर निकले हुऐ जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने द्वारका में भी पदार्पण किया था। उन्होंने भारत को एकता के सूत्र में बांधने के लिये चारों दिशाओं में मठ स्थापित किये उनमें से एक द्वारका वाला मठ शारदा मठ कहलाता है। यह रणछोड़जी के मन्दिर के घेरे में ही बना हुआ है।

(4) श्री जगन्नाथ धाम

"जगन्नाथ के भात को जगत पसारत हाथ"

श्री जगन्नाथपुरी का तीर्थ भारत के चार पवित्र धामों में से चतुर्थ धाम है। बहुत प्राचीन काल से यह तीर्थ नीलाचल के नाम से भी प्रसिद्ध है। बौद्ध काल में भी इस तीर्थ की बड़ी प्रतिष्ठा थी। यहाँ के प्रसाद की महिमा महान है। बिना किसी छुआछूत के भेद भाव के यह महाप्रसाद सभी को वितरित किया जाता है।

जगन्नाथपुरी का यह भुवन विख्यात तीर्थ उड़ीसा राज्य में है। पूर्वी रेलवे की हावड़ा वाल्टेयर लाइन पर कटक स्टेशन से 29 मील दूर खुरदा रोड स्टेशन से एक रेलवे लाइन जगन्नाथपुरी तक जाती है। यह तीर्थ अनेक बड़े नगरों से बस मार्गों से भी जुड़ा हुआ है। मन्दिर से समुद्र एक मील दूर है।

जगन्नाथजी का वर्तमान मन्दिर बहुत विशाल है। इसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में राजा अनन्त वर्मा द्वारा कराया गया। यह दो प्राचीरों

से घिरा हुआ है। चारो दिशाओ मे चार महाद्वार हैं। पूव म सिंह द्वार पश्चिमी मे व्याघ्र द्वार, उत्तर मे हस्तिद्वार तथा दक्षिण मे अश्व द्वार है। मुख्य मन्दिर के तीन भाग हैं। सबसे ऊँचा विमान (श्री मन्दिर) है। उसके सामने जगमोहन और मुखशाला है। जगन्नाथ जी का विग्रह अपने बडे भाई बलराम व बहिन सुभद्रा के साथ विमान मे प्रतिष्ठित है। साथ मे सुदशन चक्र, नील-माधव, लक्ष्मी व सरस्वती की छोटी मूर्तियाँ हैं। दशनार्थी दिन मे केवल एक बार मूर्तियो का चरण स्पश कर सकते हैं। अन्य धर्मावलम्वी भी इनके दशन कर सकते हैं।

मन्दिर के सिंहद्वार के सामने एक ऊँचा अरुण स्तम्भ है। जगमोहन मे एक गरुड स्तम्भ है। श्री चतन्य महाप्रभु यहाँ से भगवान के दशन किया करते थे। 9वी शताब्दी मे जगद्गुरु शकराचाय के यहाँ से पूव इस तीथ मे बौद्ध धर्म का प्रभाव था। जब आचाय श्री दिग्विजय करते हुए यहाँ पहुचे तो पुरी की लोकप्रियता देखकर उन्होंने इस क्षेत्र मे गोवधन मठ की स्थापना की और भगवान जगन्नाथजी को हिन्दुओ के परम आराध्य देवता के रूप मे प्रतिष्ठित किया। पुरी के क्षेत्र मे छोटे बडे अनेक तीथ और भी हैं।

जगन्नाथपुरी का यह तीथ सच्चे अर्थों मे एक राष्ट्रीय तीथ है। भारत के प्राय सभी धार्मिक सम्प्रदाय पुरी के प्रति श्रद्धा रखत हैं। यवन हरिदास और सालबेग जसे मुसलमान भी जगन्नाथजी के बहुत बडे भक्त थे। गुरु नानकजी भी एक बार यहाँ दर्शनाथ पधारे थे। इस कारण सिक्ख लोग भी यहाँ आकर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

जगन्नाथजी की रथयात्रा आषाढ शुक्ला द्वतीया को प्रारम्भ होती है और गुण्डीचा मन्दिर तक जाती है। यह रथ यात्रा एक अन्तर्राष्ट्रीय महोत्सव बन गया है। पिछले कुछ वर्षों से इग्लैंड की राजधानी लन्दन व अमेरिका मे भी रथ यात्रा महोत्सव वहाँ के अग्रेज भक्तो द्वारा उत्साह से मनाया जाता है, जिसम वही के हजारो नर नारी सम्मिलित होते हैं। पुरी मे भी यह देखने देशवासियो के अतिरिक्त सहस्रा विदेशी पर्यटक आते है।

पशुपतिनाथ मन्दिर (नेपाल)

उत्तर प्रदेश के उत्तर में हिमालय की रमणीक उपत्यका में बागमती नदी के किनारे भारत के पड़ोसी देश नेपाल की राजधानी काठमांडू में भगवान पशुपतिनाथ का विशाल और भव्य मन्दिर है। महाशिवरात्रि के अवसर पर यहाँ विशाल मेला लगता है जिसमें भारत व नेपाल के कोने कोने से लाखों यात्री दर्शन करने आते हैं।

कैलाश (हिमालय प्रदेश)

भगवान शंकर का यह पवित्र निवास स्थान मान सरोवर से 20 मील दूर है। तिब्बती लोग भी कैलाश पर्वत का अत्यधिक आदर करते हैं। यह अन्य हिम शिखरों से पृथक् अलग और दिव्य है। शिवलिंग जैसी आकृति वाला यह पर्वत अन्य पर्वतशृंगों के मध्य कमल पखुड़ियों के मध्य भ्रमर जैसा प्रतीत होता है। सारा पर्वत ठोस कसौटी के काले पत्थर का है जो सदा बर्फ से ढका रहता है। आसपास के सारे पर्वत कच्चे लाल मटमैले पत्थर के हैं। इसकी परिक्रमा 32 मील की है। कैलाश समुद्रतल से 19000 फीट ऊँचा है।

अमरनाथ (काश्मीर राज्य)

यह भगवान शंकर का परमपावन क्षेत्र है। पहलगाव से अमरनाथ तीर्थ 27 मील है। अमरनाथ की गुफा 16000 फीट ऊँचाई पर है। इसके भीतर हिम के प्राकृतिक आसन पर हिम से निर्मित प्राकृतिक शिवलिंग है जो स्वतः ही हिम से निर्मित होता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण होता है और स्वतः ही अमावस्या तक क्षीण होता चला जाता है। पास में एक गणेश पीठ व एक पार्वती पीठ भी हिम से निर्मित होती है। पार्वती पीठ की गिनती 51 शक्ति पीठों में है। आश्चर्य की बात है कि शिवलिंग तथा हिम का आसन ठोस पक्की बर्फ का होता है जबकि गुफा से बाहर सर्वत्र कच्ची बर्फ मिलती है। गुफा के ऊपर पर्वत पर श्रीराम कुण्ड है। गुफा के नीचे ही अमर गंगा की

धारा बहती है। उसमे स्नान करके ही सारे यात्री अमरनाथ के दर्शन करते हैं। राज्य सरकार यात्रा का उचित प्रबंध करती है।

वैष्णवी देवी (काश्मीर राज्य)

भगवती लक्ष्मी का यह प्रसिद्ध तीर्थ काश्मीर राज्य के जम्मू नगर से 46 मील उत्तर पश्चिम मे एक ऊँचे पहाड पर एक अत्यंत अँधेरी गुफा मे है। जम्मू से कटरा नामक बस्ती तक मोटरें चलती हैं। वहाँ से पैदल यात्रा करनी पडती है। यात्रा मार्ग म हाथी मत्था की चढ़ाई कठिन है। चढ़ाई के बाद 3 मील उतरने पर वैष्णवी देवी का गुफा मन्दिर है। गुफा द्वार नीचा व सकडा होने से लेट कर अन्दर जाना पडता है। डेढ सौ फीट भीतर जाने पर महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मूर्तियो के चरणो से प्रवाहित जलधारा बाण गंगा कहलाती है। यह सिद्ध पीठ है। वैष्णवी देवी के मन्दिर के आसपास का प्रदेश बडा मनोरम है।

ननकाना साहब (पश्चिमी पंजाब)

सिक्ख सम्प्रदाय का यह मुख्य तीर्थ अब पाकिस्तान मे है। यहाँ गुरुनानक का जन्म हुआ था। जन्म भूमि पर एक विशाल गुरुद्वारा बना हुआ है। नानक जयन्ती पर पाकिस्तान सरकार की विशेष आज्ञा से कुछ सिक्ख यात्री ही यहाँ पहुँच सकते हैं।

पंजा साहब (पाकिस्तान)

गुरु नानक के अद्भुत चमत्कार का अमर प्रतीक यह तीर्थ पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब मे है। यहाँ पर कठिनता से ही जाने की आज्ञा मिलती है।

अमृतसर

यह सुप्रसिद्ध तीर्थ पंजाब राज्य मे पवित्र व्यास नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यह उत्तर रेलवे का बडा जंक्शन है। नगर के मध्य अमृतसर नामक सरोवर है। इसके नाम पर ही नगर का नाम है। अमृत सरोवर तीर्थ का प्राकट्य चतुर्थ गुरु श्री रामदास जी व पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव जी की कृपा से हुआ था। त्रेता युग मे भगवान श्री राम के पुत्र लव कुश ने अश्वमेध

यज्ञ का अश्व पकड़ लिया था। उसी प्रसंग में युद्ध हुआ जिसमें श्रीराम, उनके भ्राताओं व हनुमान आदि की मूर्च्छा दूर करने के लिए लव कुश ने देवराज इन्द्र से अमृत प्राप्त किया। उन्होंने उसका पान कराकर सबको चेतन्य किया तथा शेष अमृत घड़े में रखकर यहीं भूमि में गाड़ दिया। उसी स्थान पर गुरु रामदास जी ने सरोवर खुदवाया। बाद में अर्जुनदेव जी ने इसका पुनरुद्धार कराया। इस स्थान की भूमि सम्राट अकबर ने गुरु को निःशुल्क प्रदान की थी।

इसी अमृत सरोवर के मध्य 65 फीट लम्बे चौड़े भूखण्ड पर स्वर्ण मन्दिर का निर्माण हुआ। गुरुद्वारे की दीवारें सब ओर से स्वर्ण पत्रों से मढ़ी हुई हैं। भगवान भास्कर की रश्मियों से चमकते हुये स्वर्ण मन्दिर की दिव्य आभा स्नानार्थियों पर अनुपम प्रभाव डालती है। नगर में कई गुरुद्वारे और हैं। नगर में सरोवर के मध्य बने हुऐ और भी कई मन्दिर हैं जिनमें दुर्गाजी, लक्ष्मीनारायण व सत्यनारायणजी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। आधुनिक राष्ट्रीय तीर्थ जलियान वाला बाग भी यहाँ है। यह भारत का प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल है।

ज्वालामुखी का मन्दिर

यह प्रसिद्ध तीर्थ पंजाब के होशियारपुर जिले में है। मन्दिर में मूर्ति के स्थान पर एक हवनकुण्ड बना हुआ है इसमें तथा मन्दिर की दीवारों पर ज्योति चमकती है। छोटी सी लुटिया में दूध भरकर भोग लगाया जाता है। दूध तो उसी क्षण समाप्त हो जाता है और ज्योति लुटिया में आ जाती है। बादशाह अकबर ने ज्योति के ऊपर पानी की नहर बहाकर उसकी परीक्षा ली किन्तु ज्योति नहीं बुझी। यह चमत्कार देखकर अकबर ने एक रत्नजटित सोने का छत्र देवी को भेंट किया।

साधुबेला तीर्थ

अखंड भारत के सिंध राज्य का यह तीर्थ अब पाकिस्तान में है। सिंध डेल्टा के बीच की ऊँची पहाड़ी पर सन् 1823 ई० में योगीराज बनखंडी महाराज ने साधुबेला तीर्थ की स्थापना की थी। उस समय से

1947 ई० तक यह तीर्थ साधु सन्ता के वनवास के लिये भव्य और विशाल आश्रम था। पाकिस्तान से पूर्व इस तीर्थ ने सिंध प्रदेश के शिक्षा प्रचार मे अनुपम सहयोग दिया था।

हिंगलाज तीर्थ

सिंध प्रदेश का यह प्रसिद्ध तीर्थ अब पश्चिमी पाकिस्तान में है। बिलोचिस्तान में मकरान के दर्रे से आगे एक पहाड़ी गुफा मे पृथ्वी मे से निकलती हुई ज्योति के भगवती हिंगलाज के रूप मे दर्शन होते हैं। पास में काली माँ की मूर्ति है। यह सिद्ध पीठ है। पाकिस्तान निर्माण के बाद से आज तक कोई हिन्दू इस तीर्थ में नही जा सका है।

प्रयाग तीर्थराज

पद्म पुराण में लिखा है "जिस प्रकार ग्रहों मे सूर्य तथा तारागणो मे चन्द्रमा है वैसे ही तीर्थों मे प्रयाग सर्वोत्तम है।" प्रयाग को सब तीर्थों का राजा कहा गया है। यह महान तीर्थ गंगा यमुना और सरस्वती (जो अब उद्दृश्य है) के पवित्र संगम पर स्थित है। यह उत्तर प्रदेश राज्य का एक बड़ा नगर है।

प्रयाग में माघ के महीने में मेला लगता है। प्रति बारहवें वर्ष जग विख्यात मेला कुम्भ पर्व भरता है। 6 वर्ष के बाद अर्द्ध कुम्भ भरता है। लाखो भारतीय इन पर्वों पर संगम क्षेत्र में स्नान करने आते हैं। सम्राट हर्ष प्रति पाँच वर्ष बाद यहाँ आकर दानोत्सव मनाया करते थे।

वृन्दावन तीर्थ

कृष्ण भक्तो का यह महान तीर्थ उत्तर प्रदेश राज्य के मथुरा मण्डल के अन्तर्गत है। यह भगवान कृष्ण की दिव्य लीला भूमि रही है। दिल्ली बम्बई लाइन पर मथुरा जंक्शन से 6 मील दूर वृन्दावन है। यहा लगभग ढाई हजार छोटे बड़े मंदिर हैं। अत इसे मन्दिरो का नगर कहते हैं। मदन *मोहन मंदिर, अष्टसखा मंदिर, बांके बिहारी मंदिर, राधा वल्लभ मन्दिर,* सेवाकुंज, कुंजगली, बिहारी मन्दिर, निधिवन, राधारमण मन्दिर, रंगजी का

मंदिर, गोविन्ददेव मंदिर, शान गुदड़ी, ब्रह्मकुंड, श्रीराम मंदिर, जमाई बाबू का मंदिर प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।

लुम्बिनी

यह तीर्थ भगवान बुद्ध की जन्मभूमि है। यह उत्तर प्रदेश की सीमा पर नेपाल राज्य की तराई में गोरखपुर गोंडा रेलवे लाइन के नौगढ़ स्टेशन से 10 मील दूर है। प्राचीन विहार नष्ट हो गये हैं। यहाँ एक अशोक स्तम्भ है जिस पर अंकित है कि भगवान बुद्ध का जन्म यहाँ हुआ था।

सारनाथ

विश्व प्रसिद्ध विद्वानों की नगरी काशी में बनारस सिटी रेलवे स्टेशन से तीस मील दूर सारनाथ नामक प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ है। भगवान बुद्ध ने अपने प्रथम पाँच शिष्यों को यही पर प्रथम उपदेश दिया था। यहाँ पर भगवान बुद्ध का मन्दिर, धमेख स्तूप चौखंडी स्तूप, मूलगंध कुटी, नवीन विहार, वस्तु संग्रहालय, अशोक का चतुर्मुंज सिंह स्तम्भ दर्शनीय स्थल है। यह तीर्थ उत्तर प्रदेश राज्य में है।

कुशी नगर

यह प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ उत्तर प्रदेश के गोरखपुर नगर से 36 मील दूर है। यहाँ 80 वर्ष की आयु में भगवान बुद्ध ने महानिर्वाण प्राप्त किया था। यहां बुद्ध स्मारक व विहार स्तूप दर्शनीय हैं।

मगहर तीर्थ

जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोर" उक्त पंक्तियों के गायक तथा हिन्दू मुस्लिम एकता के महान राष्ट्रीय साधक कबीर ने यहाँ अपना शरीर त्यागा था यहां उनका सुन्दर समाधिस्थल है। दूर दूर से कबीर पंथी यहाँ दर्शन हेतु आते हैं। मगहर तीर्थ उत्तर प्रदेश के गोरखपुर स्टेशन से 17 मील दूर छोटा सा रेलवे स्टेशन भी है।

गया पितृतीर्थ

यह भारतवर्ष का मुख्य पितृ तीर्थ है। यह बिहार राज्य में है। गया पूर्वी रेलवे की दिल्ली कलकत्ता लाइन पर मुख्य स्टेशन है। यहां का प्रत्येक

स्थान तीर्थ है। पद्म पुराण में लिखा है कि "मनुष्य बहुत से पुत्रों की इस कारण कामना करता है कि उनमें से कोई गया हो आये"। वह उनका श्राद्ध करे। पिंडदान से पितरों की अजेय तृप्ति होती है। गया का प्रधान मन्दिर विष्णुपद है। फल्गु नदी के किनारे पर स्थित इस विशाल मंदिर मे भगवान विष्णु के चरणचिन्ह अंकित हैं। मंदिर के बाहर सभा मंडप और श्राद्ध करने के लिये दो बड़े मंडप हैं। पास के मंदिर में गरुडजी की एक विशाल प्रतिमा है। पास में ब्रह्म सरोवर है। इस क्षेत्र मे अन्य अनेक तीर्थ और सरोवर हैं।

गया तीर्थ से 7 मील दूर बौद्ध गया है। यहाँ भगवान बुद्ध का विशाल मंदिर है। यहीं बोधि वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था।

पावापुरी तीर्थ

यह प्रसुसिद्ध जैन तीर्थ बिहार राज्य में है। यह स्थान पटना नवादा बस मार्ग पर है। यहाँ अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया था। निर्वाण स्थल पर सरोवर के मध्य मंदिर बना हुआ है।

सम्मेत शिखर (पारसनाथ तीर्थ)

जैन सम्प्रदाय का यह प्रधान तीर्थ है। यह बिहार राज्य में है। पूर्वी रेलवे की हावड़ा गया लाइन पर गोमो से 12 मील दूर पारसनाथ स्टेशन है। गया से यहाँ तक बस मार्ग भी है। स्टेशन से 14 मील पर पारसनाथ पहाड़ी है। उसके नीचे मधुबन बस्ती है।

सम्मेत शिखर सिद्ध क्षेत्र है। यहाँ 20 तीर्थंकर व असंख्य मुनियों ने मोक्ष प्राप्त की है। ऐसा कहा जाता है कि जो इस पर्वत की वन्दना करता है, उसे नरक नहीं मिलता। मधुवन से पर्वत की पूरी 18 मील की यात्रा है। पर्वत के विभिन्न शिखरों में पारसनाथ शिखर गौतम स्वामी का शिखर, चन्द्रप्रभुजी का शिखर अभिनन्दननाथ का शिखर व पार्श्वनाथ शिखर के दर्शन किये जाते है। पार्श्वनाथ शिखर सबसे ऊँचा है। इस पर निर्मित मंदिर नयनाभिराम है। तलहटी में बने जलमंदिर स्थित तीर्थंकरों की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर (बंगाल) •

दक्षिणेश्वर कलकत्ता महानगर का ही एक स्टेशन है और गगा नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ रानी रासमणि का बनवाया हुआ अत्यन्त भव्य काली मन्दिर है। यह परमहस रामकृष्ण की साधना भूमि रही है।

बेलूर मठ (बगाल)

दक्षिणेश्वर के पास गगापार कुछ दूर ही बेलूर मठ है। इसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने की थी। स्वामी विवेकानन्द की समाधि तथा श्री रामकृष्ण मिशन का प्रधान कार्यालय भी यही है।

कामाख्या देवी (असम)

शक्ति सम्प्रदाय का यह सुप्रसिद्ध तीर्थ गोहाटी रेलवे स्टेशन के पास है। कामाख्या देवी का मन्दिर नील पर्वत पर स्थित है। यह आधुनिक मन्दिर कूच बिहार के राजा द्वारा बनवाया गया है। मन्दिर के समीप मे एक छोटा सा सरोवर है। मन्दिर मे देव मूर्ति के दर्शन व उपासना से सर्वविघ्नो की शांति होती है। नवरात्रा म यहाँ बहुत बडा मेला लगता है। यह सिद्ध-पीठ है।

रणकपुर (राजस्थान)

यह सुप्रसिद्ध जन तीर्थ है। अहमदाबाद दिल्ली रेलवे लाइन पर रानी पुर स्टशन स रणकपुर जाया जाता है। यहा का विशाल मन्दिर भगवान आदिनाथ की स्मृति म निर्मित किया गया है। भारतीय शिल्प की इस अनुपम कलाकृति का विदेशी पर्यटक भी देखने आते है। इस पृथ्वी का दीपक कहा गया है।

राजस्थान म आबू का देलवाडा जन मन्दिर, उदयपुर केशरियानाथ व सवाई माधोपुर के महावीर जी भी दर्शनीय है।

नाथद्वारा (राजस्थान)

उदयपुर से १२ मील दूर वल्लभ सम्प्राय का महान तीर्थ नाथद्वारा है। यहाँ पर श्रीनाथजी का विशाल मन्दिर है। राजस्थान व गुजरात म इनकी बडी मान्यता है।

जगदम्बा करणी का देशनोक तीर्थ (राजस्थान)

बीकानेर नगर से 20 मील दूर देशनोक रेलवे स्टेशन है। पास में ही करणी माताजी का सगमरमर से निर्मित भव्य मन्दिर है। करणीजी के आशीर्वाद से जोधपुर व बीकानेर राज्यों की स्थापना हुई थी। ये बीकानेर राजवंश की कुलदेवी हैं। मन्दिर का सबसे बडा आकर्षण वहाँ सवत्र उन्मुक्त विचरण करते हुए सहस्रो चूहो का जमघट है। इन्हे काबा भी कहा जाता है। मन्दिर के बजट मे इन चूहो के लिये दूध और लड्डुओ की व्यवस्था है। इस आधिभौतिक युग म यह आश्चर्य की बात है कि देशनोक मे आज तक भी प्लेग जसी महामारी नही फली।

पुष्करराज (राजस्थान)

इस तीर्थ को सम्पूर्ण तीर्थों का गुरु माना गया है। यह अजमेर स ७ मील दूर है। पौराणिक कथा के अनुसार सृष्टि के आदि मे पुष्कर स्थान पर वज्रनाम राक्षस रहता था जो बालको को मार देता था। उस युग म एक बार ब्रह्माजी वहाँ यज्ञ करनेकी इच्छा से आये और अपने हाथ का कमल वज्रनाम पर फेंककर उसे मार दिया। वह कमल जिस स्थान पर गिरा वहाँ सरोवर बन गया जो पुष्कर कहलाया। यह भारत के पवित्र सरोवरो म सवश्रेष्ठ है। सरोवर के किनारो पर गौ घाट, ब्रह्मघाट, कोटि तीर्थ, करणीघाट आदि पक्के घाट हैं। कई वर्ष पूर्व सरोवर म बडे बडे मगर थे। उनसे सुरक्षित रहकर स्नान करने की दृष्टि स परमहस टाटबाबा महाराज ने जालियो वाले करणीघाट का निर्माण कराया ताकि जल क साथ मगर भीतर न आ सकें।

यहाँ के मन्दिरो म ब्रह्माजी का मन्दिर मुख्य है। नये व पुराने रगजी के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। दो पहाडी चोटियो पर सावित्री व गायत्री के मन्दिर हैं। समीप म यज्ञ पवत और नाग पवत पर अनेक तीर्थ स्थल हैं।

ख्वाजा साहब की दरगाह अजमेर (राजस्थान)

मुसलमानो के मुख्य तीर्थ मक्का और मदीना अरब देश म है। भारत मे सूफी सन्तो के समाधिस्थल (दरगाह) ही भारतीय मुसलमानो के पवित्र

दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर (बंगाल) •

दक्षिणेश्वर कलकत्ता महानगर का ही एक स्टेशन है और गगा नदी के किनारे वसा हुआ है। यहाँ रानी रासमणि का वनवाया हुआ अत्यन्त भव्य काली मन्दिर है। यह परमहस रामकृष्ण की साधना भूमि रही है।

बैलूर मठ (बगाल)

दक्षिणेश्वर के पास गगापार कुछ दूर ही बैलूर मठ है। इसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने की थी। स्वामी विवेकानन्द की समाधि तथा श्री रामकृष्ण मिशन का प्रधान कार्यालय भी यही है।

कामाख्या देवी (असम)

शक्ति सम्प्रदाय का यह सुप्रसिद्ध तीर्थ गौहाटी रेलवे स्टेशन के पास है। कामाख्या देवी का मन्दिर नील पवत पर स्थित है। यह आधुनिक मन्दिर कूच विहार के राजा द्वारा बनवाया गया है। मन्दिर के समीप मे एक छोटा सा सरोवर है। मन्दिर मे देव मूर्ति के दशन व उपासना से सब विघ्नो की शाति होती है। नवरात्रा मे यहाँ बहुत बडा मेला लगता है। यह सिद्ध पीठ है।

रणकपुर (राजस्थान)

यह सुप्रसिद्ध जन तीथ है। अहमदाबाद दिल्ली रेलवे लाइन पर रानी पुर स्टेशन स रणकपुर जाया जाता है। यहाँ का विशाल मन्दिर भगवान आदिनाथ की स्मृति म निर्मित किया गया है। भारतीय शिल्प की इस अनुपम कलाकृति को विदेशी पयटक भी दखने आते हैं। इस पृथ्वी का दीपक कहा गया है।

राजस्थान म आबू का देलवाडा जन मन्दिर, उदयपुर केशरियानाथ व सवाई माधोपुर के महावीर जी भी दशनीय हैं।

नाथद्वारा (राजस्थान)

उदयपुर स १२ मील दूर वल्लभ सम्प्राय का महान तीथ नाथद्वारा है। यहाँ पर श्रीनाथजी का विशाल मन्दिर है। राजस्थान व गुजरात म इनकी वडी मान्यता है।

जगदम्बा करणी का देशनोक तीर्थ (राजस्थान)

बीकानेर नगर से 20 मील दूर देशनोक रेलवे स्टेशन है। पास में ही करणी माताजी का सगमरमर से निर्मित भव्य मन्दिर है। करणीजी के आशीर्वाद से जोधपुर व बीकानेर राज्यो की स्थापना हुई थी। ये बीकानेर राजवश की कुलदेवी हैं। मन्दिर का सबसे बडा आकर्षण वहाँ सर्वत्र उन्मुक्त विचरण करते हुए सहस्रों चूहा का जमघट है। इन्हे काबा भी कहा जाता है। मंदिर के वजट मे इन चूहो के लिये दूध और लड्डुओ की व्यवस्था है। इस आधिभौतिक युग म यह आश्चय की बात है कि देशनोक में आज तक भी प्लेग जसी महामारी नही फली।

पुष्करराज (राजस्थान)

इस तीथ को सम्पूर्ण तीर्थों का गुरु माना गया है। यह अजमेर स ७ मील दूर है। पौराणिक कथा के अनुसार सृष्टि के आदि मे पुष्कर स्थान पर वज्रनाम राक्षस रहता था जो बालको को मार देता था। उस युग म एक बार ब्रह्माजी वहाँ यज्ञ करनेकी इच्छा से आये और अपने हाथ का कमल वज्रनाम पर फेंककर उसे मार दिया। वह कमल जिस स्थान पर गिरा वहाँ सरोवर बन गया जो पुष्कर कहलाया। यह भारत के पवित्र सरोवरा मे सवश्रेष्ठ है। सरोवर के किनारा पर गौ घाट, ब्रह्मघाट, कोटि तीथ करणीघाट आदि पक्के घाट हैं। कई वप पूव सरोवर मे बडे-बडे मगर थ। उनसे सुरक्षित रहकर स्नान करन की दृष्टि से परमहस टाटबाबा महाराज ने जालियो वाले करणीघाट का निर्माण कराया ताकि जल के साथ मगर भीतर न आ सके।

यहाँ के मंदिरो मे ब्रह्माजी का मंदिर मुख्य है। नये व पुरान रगजी के मंदिर भी दशनीय हैं। दो पहाडी चोटियो पर सावित्री व गायत्री के मंदिर है। समीप मे यज्ञ पवत और नाग पवत पर अनेक तीथ स्थल है।

ख्वाजा साहब की दरगाह अजमेर (राजस्थान)

मुसलमानो के मुख्य तीथ मक्का और मदीना अरब देश म हैं। भारत म सूफी सन्ता के समाधिस्थल (दरगाह) ही भारतीय मुसलमानो के पवित्र

श्रवणबेलगोल (मैसूर)

मैसूर नगर से 62 मील व बैंगलोर से 102 मील दूर यह महान जनतीर्थ है। इसे गोमम्ट भी कहते हैं। श्रवणबेलगोल गाँव दो पर्वतों के मध्य बसा हुआ है। गाँव के पास एक झील है। पर्वत के ऊपर श्री बाहुबली की विशाल मूर्ति है। 57 फीट ऊँची वह दिगम्बर मूर्ति विश्व की सबसे बड़ी मूर्ति है। यह मीलों दूर से दिखाई देती है। राजा चामुण्डराय ने इसका निर्माण कराया था।

कोटि तीर्थ (आन्ध्र)

यह तीर्थ गोदावरी रेलवे स्टेशन से एक मील दूर है। यहाँ गोदावरी तीर पर शिव मन्दिर में कोटि लिंग स्थापित है। कुम्भ मेले के समान 12 वर्ष में एक बार यहाँ आन्ध्र राज्य का सबसे बड़ा मेला लगता है।

मीनाक्षी मन्दिर (तमिलनाडु)

कहते हैं इसके सामने ताजमहल का सौन्दर्य भी फीका है।

दक्षिण रेलवे की त्रिचनापल्ली—तूतीकोरन लाइन पर त्रिचनापल्ली से 96 मील दूर वेगा नदी के किनारे मदुरा नगर है। यह दक्षिण की मथुरा है। यूरोपियन पर्यटकों के शब्दों में यह दक्षिण भारत का एथेंस है। नगर का मुख्य आकर्षण मध्य में स्थित मीनाक्षी देवी का भव्य और कलात्मक मन्दिर है। यह मन्दिर एक करोड़ 20 लाख रुपयों की लागत से लगभग 120 वर्ष में बनकर तयार हुआ। इसमें छोटे बड़े 27 कलात्मक गोपुर हैं।

मुख्य मन्दिर में मीनाक्षी देवी की दिव्य मूर्ति के दर्शन होते हैं। मीनाक्षी के नेत्रों में अनुपम आकर्षण और सजीवता है। मन्दिर से बाहर सुन्दरेश्वर (शिव) का एक छोटा सा मन्दिर है। मन्दिर की प्रशंसा में सेठ गोविन्ददास ने लिखा है कोई देशी पर्यटक हो या विदेशी, आस्तिक हो अथवा नास्तिक किन्तु मीनाक्षी मन्दिर का कला कौशल उसके हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ देता है। तब उसका मन सहसा आगरा के ताजमहल से मीनाक्षी मन्दिर की तुलना करने पर बाध्य हो उठता है और मन्दिर के गगनचुम्बी

गोपुरों, आकर्षक प्रतिमाओं और वास्तुकला की भव्यता को देखकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये बाध्य हो जाता है कि संसार का सातवाँ आश्चर्य ताजमहल नहीं मीनाक्षी देवी का मन्दिर ही है।"

चिदम्बरम् मन्दिर (तमिलनाडु)

यह दक्षिण भारत का प्रमुख तीर्थ है। मद्रास—धनुष्कोटि लाइन पर विल्लुपुरम् से 50 मील दूर चिदम्बरम् स्टेशन है। यहाँ भगवान नटराज शिव का विशाल और भव्य मन्दिर है। काले पत्थर के मन्दिर पर स्वर्ण मण्डित शिखर है। मन्दिर में नृत्य करते भगवान शंकर की स्वर्ण निर्मित बड़ी आकर्षक और दिव्य मूर्ति है। पास में पार्वती, नारद व तुम्बुरु की छोटी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इस मन्दिर की भित्तियों पर नृत्य मूर्तियों की प्रचुर सम्पत्ति अंकित है।

कन्या कुमारी तीर्थ

भारत के अंतिम दक्षिणी छोर पर तमिलनाडु राज्य में कन्याकुमारी देवी का सुंदर मंदिर है। इसके एक ओर बंगाल की खाड़ी, दूसरी ओर अरब सागर और सामने हिन्द महासागर है। यहाँ तीनों सागरों का संगम है। मंदिर के पास ही समुद्र में स्नान करने के लिए एक सुरक्षित घेरा व पक्का घाट बना हुआ है।

मंदिर में देवी की मूर्ति प्रभावोत्पादक एवं भव्य है। विशेष उत्सवों पर देवी पर हीरे आदि रत्नों से शृंगार होता है। यह 51 शक्तिपीठों में से एक है। चैत्र पूर्णिमा को सायंकाल यदि बादल न हों तो इस स्थान से एक साथ बंगाल की खाड़ी में चन्द्रोदय तथा अरब सागर में सूर्यास्त का अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। बादल न होने पर समुद्रतल से ऊपर उठते चन्द्र तथा समुद्र जल में पीछे जाते सूर्य बिम्ब का दर्शन बहुत भव्य एवं आकर्षक लगता है।

विवेकानन्द शिला:

[illegible] समुद्र में एक शिला दीखती है [illegible] शिला। [illegible] यहाँ आये तो समुद्र में तैर कर [illegible]

[illegible]

पहुँच गये। तीन दिन तक वहाँ ध्यान मग्न रहे। अब उनकी स्मृति म भारत की जनता की ओर से भव्य स्मारक का निर्माण किया गया है जो एक दर्शनीय स्थल तथा तीर्थ है।

भारत जिस प्रकार गाँवों का देश कहा जाता है उसी प्रकार तीर्थों का भी देश है। उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त भी पचवटी (नासिक) चित्र कूट, नैमिषारण्य, मिश्रित तीर्थ, गंगासागर, उत्तरकाशी, गंगोत्री, यमनोत्री, केदारनाथ आदि अनेक छोटे-बड़े तीर्थ हैं। सभी तीर्थ आध्यात्मिक महत्ता के साथ भारतीय शिल्प की अनुपम कलाकृतियाँ प्रदर्शित करते हुए भारत की भावात्मक एकता के प्रहरी रहे हैं। सम्पूर्ण देशवासी इन तीर्थों के प्रति आस्थावान हैं और यहाँ आते जाते रहकर अन्तर्प्रादेशिक सद्भावना बनाए रखते हैं। तीर्थ किसी भी मत विशेष से सम्बन्धित हो, कहीं भी स्थित हो, सभी भारतीय उनके प्रति श्रद्धानवत हैं और वहाँ पहुँचकर पारस्परिक सहयोग तथा भावनात्मक एकता को बनाए रखकर भारत की सांस्कृतिक एकता को मुखरित करते रहते हैं।



जन जीवन के प्रेरक सूत्र

भारत के राष्ट्रीय पर्व

भारत राष्ट्र की चिरजाग्रत चेतना ने जहाँ जीवन की क्षणभंगुरता को बतलाया वहा उसने आत्मा की अमरता का भी सदेश दिया। आत्मा को सत् चित्, आनन्दमय वहन वाली मनातन चित्तवृत्ति इसलिए नश्वर जगती के बीच भी शाश्वत आनन्द की लालसा बनाये रही और इस लालसा की पूर्ति के साधन स्वरूप भारत के राष्ट्रीय पर्वों का उदय हुआ जिनका सम्बन्ध एक ओर सीधा आध्यात्म से रहा तो दूसरी ओर जनसामान्य के उत्साह से और तीसरी ओर राष्ट्रीय एकता म। अधिकाश पव ऋतु परिवतन के समय आत हैं जिनका शारीरिक स्वास्थ्य मे सीधा सम्बन्ध है।

भौगोलिक विविधता से युक्त भारत देश का पूण महाद्वीप की सज्ञा दी जाती है। हमारे राष्ट्रीय पर्वों न जहा भौगोलिक परिवेश स समन्वय किया है वहाँ उसने राष्ट्र की आत्मा का भी बिम्बित किया। इसीलिए व पव उत्सवो, समारोहो का सहज स्वरूप होकर जन मन म रम गये, प्रबुद्ध से अज्ञ व अल्पज्ञ तक सबकी निधि बन गये। ये पव भारत के विभिन्न भागो म मेला, पूजा व त्यौहार के रूप मे मनाये जात हैं। भारत के राष्ट्रीय पर्वों मे मुख्य पव निम्न प्रकार हैं—

नववर्षारम्भ एव नवरात्रा

चत्र कृष्णा प्रतिपदा को विक्रम के नये वष का प्रारम्भ माना जाता है। सनातनधर्मी तथा समस्त वेद विश्वासी इस दिन को बडी धूमधाम स धार्मिक आचार के साथ मनाते हैं। लोग इस दिन रात्रि जागरण कर धार्मिक ग्रन्थों के पारायण, प्रवचन आदि करते हैं। सिन्धी व पजाबी लोग इस दिन

शवर भगवान का पूजन करते, शीतल व मधुर जल की प्याऊ विठाते तथा उबले हुए मूँग व गुड का प्रसाद बाँटते है।

इसी तिथि से सम्पूर्ण भारत के लोग नवरात्रा के व्रत प्रारम्भ कर धार्मिक ग्रन्थो के पारायण व पूजन, व्रतादि म नौ दिन तक निष्ठापूवक सक्रिय रहते हैं। रामनवमी के दिन नवरात्रा के व्रत सम्पूर्ण होते हैं।

वैशाखी

यह पजाब का प्रमुख पव है। सूय के विषवत् रेखा म प्रवेश करने के समय यह पव मनाया जाता है। बहुत बडा मेला लगता है। साम्प्रदायिक भेदभाव को भुलाकर सारी जनता एक मस्ती मे डूब जाती है। युवतिया पानी भरती, भेडें हाँकती मटक मटक कर गीत गाती और युवक तथा प्रौढ भागडा नत्य की मस्ती म खो जाते हैं। उस मस्ती की कल्पना गीत की इस पक्ति स सहज की जा सकती है कि 'लागडदा पल्ला सावा पीला खेनू नी म रावी विच रोड्या अर्थात् धोती का पल्ला, हर और पीले रग की खण्डवी को रावी के बीच बहा दिया है। इस दिन उत्तर भारत मे जगह जगह मेले लगते हैं। लाखो लोग गगा यमुना आदि सरिताओ म स्नान करते हैं।

गगा दशमी या गगा दशहरा

सारे उत्तर भारत मे यह पव 'गगा दशहरा' के नाम स विख्यात है। इसका सम्बन्ध गगावतरण की कथा से जुडा है। मन्दिरो म फव्वारे छोडकर, जल भर कर उसमे रुई की बतखें आदि बनाकर तराई जाती है। शीतल जल की प्याऊएँ स्थान स्थान पर स्थापित करने की परम्परा है। यह पव ज्यष्ठ शुक्ला दशमी को मनाया जाता है।

रथ यात्रा

यह पव प्रमुखत जगन्नाथपुरी (उडीसा) मे तथा सामान्य उत्साह के साथ सम्पूर्ण भारत मे मनाया जाता है। श्री जगन्नाथपुरी म रस्सो के द्वारा 4000 व्यक्ति 35 फुट चौडे और 45 फीट ऊँचे श्री जगन्नाथजी के रथ को

एक जुलूस के साथ खींचते हुए नगर के प्रमुख मार्गों से निकालते हैं। भगवान श्री जगन्नाथजी का यह जुलूस नरेन्द्र सरोवर तक ले जाया जाता है। साथ मे श्री बलराम एवं सुभद्रा के दो लघु रथ चलते हैं। सरोवर में मूर्तियों को स्नान करवाकर चन्दन चर्चित किया जाता है। पुरी मे यह पर्व इक्कीस दिन तक धूमधाम से मनाया जाता है। इस रथ यात्रा के अनुकरण पर उत्तर भारत के प्रमुख नगरो मे भी रथयात्रा व हरिकीर्तन होता है। अब तो लन्दन मे भी कृष्ण भक्तो ने रथयात्रा प्रारम्भ कर दी है। इससे लगता है कि कुछ वर्षो मे ही भारत का यह राष्ट्रीय पर्व अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लेगा। रथयात्रा आषाढ कृष्ण तृतीया को निकाली जाती है।

नोगक्रम उत्सव

यह उत्सव विशेष रूप से खासी लोगो का है। जेठ के महीने मे मनाया जाने वाला उत्सव है। इसकी तैयारी बहुत समय पहले से की जाती है। एक बैंत का छल्ला नाच की सूचनार्थ गाँव गाँव मे भेजा जाता है। यह फसल के समय मनाया जाने वाला त्यौहार है, इसलिए फसल के समय वाले अन्य त्यौहारो की मस्ती इसमे भी रहती है। सब मिलकर बकरे का बलिदान करते, फिर शराब पीते और चँवर, ढाल तलवार लेकर नाचते हैं। पुरुष और महिलाएँ सम्मिलित रूप से नृत्य मे भाग लेती हैं।

मिंजूर उत्सव

मिंजूर हिमाचल प्रदेश की चम्बाघाटी का प्रसिद्ध त्यौहार है। श्रावण के दूसरे सप्ताह से प्रारम्भ होकर यह एक सप्ताह तक चलता है। बहुरंगी पोशाकें, पहनकर लोग वरुण की पूजा करते है। इस उत्सव पर विविध प्रकार के नृत्य, गायन आदि किये जाते है।

वर लक्ष्मी पूजा

यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध त्यौहार है। आधी जोलाई से अगस्त तक अर्थात् श्रावण मास मे यह त्यौहार मनाया जाता है। इसे आडीमास का त्यौहार भी कहते हैं। घरो का स्वच्छ किया और सजाया जाता है। यह

मुख्यत गृहणियों का त्योहार है। गृहणियाँ समस्त पारिवारिक जन के साथ गाती-बजाती हैं। इस त्योहार के साथ एक कथा जुड़ी हुई है। कहते हैं पार्वती ने चारुमति के रूप में जन्म लिया और शंकरजी को वर रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या की। लक्ष्मी और विष्णु ने चारुमती को दर्शन देकर वर दिया कि उसे पति के रूप में शंकर प्राप्त होंगे। स्त्रियों का विश्वास है कि कन्याओं को इस व्रत की सिद्धि पर श्रेष्ठ पति और अखण्ड सुहाग प्राप्त होता है। 'लक्ष्मी पधारो मेरे घर' के आशय का गीत गृहणियाँ इसीलिए इस अवसर पर गाती हैं।

स्वाधीनता दिवस

यह समूचे भारत का नवविकसित राष्ट्रीय पर्व है। इसवी सन् के अनुसार 1947 को भारत वर्ष ने दो सौ वर्ष की अंग्रेजी पराधीनता से मुक्ति पाई थी। इसी उपलक्ष में यह पर्व सम्पूर्ण भारत में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। दिल्ली के लाल किले पर देश के प्रधानमन्त्री द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाता है और राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित किया जाता है। लाखों की संख्या में लोग समारोहों में भाग लेकर ध्वजारोहण और सेना की परेड देखने हेतु दिल्ली में एकत्र होते हैं। राष्ट्र के विभिन्न भागों की सांस्कृतिक झांकियाँ निकाली जाती हैं। विगत वर्षों की राष्ट्रीय प्रगति की परिचायक झाँकियाँ भी निकाली जाती हैं। यह राजकीय स्तर पर मनाये जाने वाला राष्ट्रीय पर्व है।

रक्षाबन्धन

सांस्कृतिक होने के साथ साथ यह हिन्दू मुसलमानों के बीच एकता के सूत्र रूप में ऐतिहासिक महत्त्व का राष्ट्रीय पर्व है। श्रावण की पूर्णिमा के दिन यह पर्व मनाया जाता है। यह भाई बहिन के पुनीत प्रेम का प्रतीक है। रक्षा बन्धन पर बहिन भाई के राखी बांधती है। राखी का बन्धन इस विश्वास का प्रतीक होता है कि किसी भी विपत्ति के समय भाई अपनी बहिन की रक्षा का यथाशक्ति प्रयास करेगा। इतिहास के अनुसार जब चित्तौड़ पर विदेशी

आक्रमण हुआ, रानी कर्मवती ने दिल्ली में सम्राट हुमायूँ को राखी भेजी थी। सम्राट हुमायूँ राखी प्राप्त करते ही चित्तौड़ की रक्षा को चल पड़ा। उसके पहुँचने मे इतना विलम्ब हो गया कि वह जब पहुँचा तब तक चित्तौड के किले में जौहर हो चुका था। आक्रामक लौट चुके थे। चिता की राख के ढेर किले म लगे थे। हुमायूँ ने विलम्ब का पश्चाताप करते हुए आँसू बहाये और चिता की राख को मस्तक पर लगाया। इस घटना से जुडकर रक्षाबन्धन के पर्व ने विशेष राष्ट्रीय महत्त्व पा लिया है।

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव

भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिन की स्मृति में यह पर्व भाद्र कृष्णा अष्टमी को मनाया जाता है। श्रीकृष्णलीला की अनेकानेक झाँकियाँ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह पर्व सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाया जाता है। कृष्ण भक्त सनातियो का यह सबसे बडा उत्सव है।

गणपति उत्सव

यह प्राचीन भारत के गणतन्त्र युग की याद को पुनरुज्जीवित करने वाला पर्व है। भाद्र शुक्ला चतुर्दशी (अनन्त चतुर्दशी) तक यह पर्व निरन्तर दस दिन तक मनाया जाता है। गणपति की पूजा व रात्रि जागरण, भजन, कीर्तन प्रवचन आदि होते हैं। महाराष्ट्र में यह पर्व सर्वाधिक उत्साह से मनाया जाता रहा है। स्वर्गीय श्री बालगंगाधर तिलक ने आदिकाल से चले आए इस राष्ट्रीय पर्व को बड़ा व्यापक स्वरूप दे दिया था। तबसे इसका प्रसार और अधिक हो गया है। अनन्त चतुर्दशी के दिन गणपति का जुलूस धूमधाम से निकाला जाता है और प्रतिमा जल में विसर्जित की जाती है।

दशहरा और दुर्गा पूजा

भगवान राम की लंका विजय और रावण वध की स्मृतियों में यह त्यौहार आसोज शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। यह पर्व रूप में आसोज शुक्ला १ की नवरात्रि से प्रारम्भ होकर दशमी तक चलता है। पूर्वी भारत मे इसी समय दुर्गा पूजा का पर्व मनाया जाता है। घर घर दुर्गा की सुन्दर

मूर्तियों की पूजा होती है। दशहरा कोटा (राजस्थान) तथा मैसूर राज्य का बड़ा विख्यात है। कोटा में दशहरा का मेला पचमी से प्रारम्भ होकर लगभग बीस दिन तक चलता है। इस अवसर पर रामलीला का विराट आयोजन किया जाता है। दिल्ली में रामलीला बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। जिसमें रावण परिवार के बड़े बड़े पुतले जलाये जाते हैं।

विशु

हिमाचल प्रदेश का प्रसिद्ध त्यौहार है। मुख्य रूप में यह धनुर्विद्या का पर्व है। वैशाख की प्रविष्टि पर विशु का मेला अनेक, पर्वतीय स्थानों में लगता है। लोग रंग बिरंगे कपड़े पहनते हैं। मेले का मुख्य स्थान ढूण्डी देवी का मैदान और घाटी है। कौरव और पाण्डव के प्रतीक दो दलों में लोग बँट जाते हैं। ये लोग पाशी और शाठी दलों के होते हैं। 'ठोडा' खेल खेलते हैं। जिनमें विरासन से बैठकर निर्धारित लक्ष्य पर बाण संधान किया जाता है। कोई चिल्लाता है, शीशी टूल के मरिय पट वाइये मेरी जुबडी की' अर्थात् हे साठ भुजाओं वाली दुर्गा! शीघ्र ही मेरे इस रणांगन में आओ मेरी विजय में सहायक होओ'' कोई किसी और को पुकारता है। इस उत्सव के अधीक्षक देव भगवान शिव के पुत्र कुमार कार्तिकेय माने जाते हैं। वीरों के शक्तिदाता के रूप में यह पर्व प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस पर्व पर घर आँगन दीपावली की तरह सजाए जाते हैं।

तीज

अक्षय तृतीया, श्रावण मास की छोटी तीज व भादों की बड़ी तीज व गौरी तीज के त्यौहार राजस्थान में उत्साह पूर्वक मनाये जाते हैं। बूँदी में भादों की तीज पर बड़ा मेला लगता है। तीज त्यौहार मुख्य रूप से श्रृंगार का त्यौहार है जिस पर महिलाएँ लहरिए पहनती व अखण्ड सौभाग्य की मंगल कामना करती हैं।

धनतेरस व दीपावली

यह सम्पूर्ण भारत का राष्ट्रीय पर्व है जो कार्तिक की अमावस्या को मनाया जाता है। मुख्य रूप से यह त्यौहार तीन दिन तक मनाया जाता है।

इसके दो दिन पूर्व धनतेरस को लोग नये बर्तन खरीदना शुभ मानते हैं। दीपावली के दूसरे दिन अन्नकोट व तीसरे दिन भाईदूज का त्यौहार मनाया जाता है। दीपावली का पर्व भगवान राम के लंका विजय के पश्चात् अयोध्या लौटकर राज्यारोहण की स्मृति में मनाया जाता है। घरों को इस दिन के लिये लीपा पोता जाता है। लक्ष्मी पूजन किया जाता है और मिठाई बाटी जाती है तथा पटाखे छुडाये जाते है। दीपावली के बाद गाय, बैल आदि को रंगो से चर्चित कर उनकी पूजा की जाती है।

नाग पंचमी

नाग पंचमी भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कालिया दमन की स्मृति में मनाई जाती है। इसे मल्ल विद्या का प्रतीक भी मानते हैं। इस दिन नाग पूजा की जाती है।

बसन्तोत्सव

बसन्त पंचमी का दिन सरस्वती पूजा का प्रतीक है। प्रकृति में इस समय पीले फूलों की छटा दर्शनीय होती है। यह उत्सव सम्पूर्ण भारत में मनाया जाता है। महाकवि निराला का जन्मोत्सव भी इसी तिथि को मनाया जाता है।

होली

यह सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पर्व है जो फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह मस्ती का पर्व है। इसके दूसरे दिन अपने बैर भाव को भूलकर घर घर जाकर रंग गुलाल डालने की परम्परा है। पौराणिक कथा के आधार पर इसका सम्बन्ध हिरण्याकश्यप की बहिन होलिका के दाह से जोड़ा जाता है। उसी की स्मृति में होलिका दहन किया जाता है। इस दिन लोग मूर्खतापूर्ण कार्य करने में बड़ी रुचि लेते हैं। दिल्ली तथा अनेक स्थानों पर मूर्ख सम्मेलन एवं हास परिहास गोष्ठियां की जाती हैं। होली नई फसल के तैयार समय का पर्व है, इसलिए इस पर्व पर ठेठ देहाती जनता से लेकर बड़े शहरों तक के लोग समान उत्साह से खुशियाँ मनाते है।

गणतन्त्र दिवस

यह त्योहार 26 जनवरी को मनाया जाने वाला राजकीय एव राष्टीय धम निरपेक्ष पव है । 26 जनवरी सन् 1930 को रावी के तट पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस न देश की पूण स्वाधीनता का सकल्प व्यक्त किया था । उसी स्मृति म 26 जनवरी 1951 को देश का विधान लागू कर भारत को पूण गणराज्य घोषित किया गया । 26 जनवरी सन् 1950 से यह पव भारत गणराज्य की वषगाँठ के रूप म मनाया जाता है । इस दिन लाल किले पर भारत के राष्ट्रपति राष्ट्रीय ध्वज फहराते हैं व राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हैं । सेनाओ के करतब व विभिन्न झाकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं । राष्ट्र पति का जुलूस निकाला जाता ह ।

पोगल

यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध त्योहार है जो तामिलनाडु म पागल' के नाम से पुकारा जाता है । उत्तर भारत मे इसे मकर सक्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है । इस दिन तमिलनाडू मे फसलो के देवता सूय की पूजा होती है और पागल नाम का मिष्ठान बनाया जाता है । इस दिन सूय मकर रेखा पर आकर उत्तर को सक्रमण करने लगता है । इस दिन कही कही बलो की पूजा की जाती है । यह राष्ट्रीय होन के साथ अन्तर्राष्ट्रीय त्यौहार भी है । इस दिन तिलदान एव तिल खाद्य का विशेष महत्त्व माना गया है । यह लगभग सभी धर्मावलम्बियो का त्योहार है जिसे वे विविध प्रकार से मनाते है ।

मदुराई का जलोत्सव

मदुरा की मीनाक्षी प्रतिमा को शृगारित कर सोन स जडी हुई पालकी म प्रतिष्ठित किया जाता ह । हाथी घोडा और बाजा के साथ प्रतिमा का जुलूस नगर म घुमान के वाद तिप्रक्ल नहर मे प्रतिमा का नौका विहार कराया जाता है । नहर म पुजारियो द्वारा विधि पूवक प्रतिमा की पूजा कराई जाती है । नगर मे दीपोत्सव होता है । सध्या को नहर म दीप तराय जात है । सजी धजी नौकाएँ नहर म सध्या समय तरती हुइ वडी भली लगती हैं ।

ओणम :

[illegible]

[illegible] देवताओं के [illegible] । [illegible] के अवसर [illegible] । [illegible] घर के सभी कमरों और [illegible] को सजाया जाता है। [illegible] करते हैं।

वस्तुतः ओणम फसल का पर्व है। [illegible] और [illegible] स्वाभाविक है। इसलिए दक्षिण के काश्मीर केरल को यह मस्ती इस पर्व के रूप में स्वाभाविक रूप से फूट पड़ती है।

गणगौर

यह मुख्य रूप से राजस्थान का पर्व है। बड़ी धूमधाम से मनाया जाने वाला पर्व है। गणगौर को शिव पार्वती का रूप माना जाता है। इसलिए कुमारी कन्यायें इच्छित वर प्राप्ति के लिए तथा सुहागिनें अपने अखण्ड सौभाग्य के लिए गणगौर (शिव पार्वती) की पूजा करती है।

होली के दूसरे दिन से होली की राख द्वारा गणगौर की मूर्ति निर्मित की जाती है। मूर्ति के साथ दूब, फल आदि भेंट करना [illegible]

गणतन्त्र दिवस

यह त्यौहार 26 जनवरी को मनाया जाने वाला राजकीय एवं राष्ट्रीय धम निरपेक्ष पव है। 26 जनवरी सन् 1930 को रावी के तट पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने देश की पूण स्वाधीनता का संकल्प व्यक्त किया था। उसी स्मृति मे 26 जनवरी 1951 को देश का विधान लागू कर भारत को पूण गणराज्य घोषित किया गया। 26 जनवरी सन् 1950 से यह पव भारत गणराज्य की वषगाठ के रूप मे मनाया जाता है। इस दिन लाल किले पर भारत के राष्ट्रपति राष्ट्रीय ध्वज फहराते हैं व राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हैं। सेनाओ के करतब व विभिन्न झांकियां प्रस्तुत की जाती हैं। राष्ट्रपति का जुलूस निकाला जाता है।

पोंगल

यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध त्यौहार है जो तामिलनाडु मे 'पोंगल' के नाम से पुकारा जाता है। उत्तर भारत मे इसे 'मकर सक्रान्ति' के नाम से पुकारा जाता है। इस दिन तमिलनाडू मे फसलो के देवता सूय की पूजा होती है और पोंगल नाम का मिष्ठान बनाया जाता है। इस दिन सूय मकर रेखा पर आकर उत्तर को सक्रमण करने लगता है। इस दिन कही कही बैलो की पूजा की जाती है। यह राष्ट्रीय होने के साथ अन्तराष्ट्रीय त्यौहार भी है। इस दिन तिलदान एवं तिल खाद्य का विशेष महत्व माना गया है। यह लगभग सभी धर्मावलम्बियो का त्यौहार है जिसे वे विविध प्रकार से मनाते हैं।

मदुराई का जलोत्सव

मदुरा की मीनाक्षी प्रतिमा को शृंगारित कर सोने से जडी हुई पालकी मे प्रतिष्ठित किया जाता है। हाथी घोडा और बाजो के साथ प्रतिमा का जुलूस नगर मे घुमाने के बाद तिरुक्कल नहर मे प्रतिमा का नौका विहार कराया जाता है। नहर मे पुजारियो द्वारा विधि पूवक प्रतिमा की पूजा कराई जाती है। नगर मे दीपोत्सव होता है। सध्या को नहर मे दीप तराये जाते हैं। सजी धजी नौकाएँ नहर मे सध्या समय तरती हुई बडी भली लगती हैं।

ओणाम

चारो ओर अजीब सी हलचल, चहल पहल और मस्ती। यह ओणाम का पर्व है दक्षिण भारत का विशेष रंगीन पर्व। दावतें, नौकाओं की दौड, नृत्य और गायन तथा रंगा रंग कार्यक्रम इस पर्व की विशेषताएँ है। यह पर्व चार दिन तक मनाया जाता है।

कथा है कि पौराणिक राजा बलि के शासन में केरल उन्नति के शिखर पर था। प्रजा सुखी व वैभव सम्पन्न थी लेकिन जब देवताओं के आग्रह पर विष्णु ने वामन रूप धर कर राजा बलि को छला और उसका सम्पूर्ण राज्य दान में ले लिया तो बलि राजा पाताल लोक में रहने लगे। लोगों की आस्था है कि 'तीरू ओणाम' को अर्थात् त्यौहार के तीसरे दिन महाराज बलि अपनी प्रजा का हाल देखने को पाताल से आते है। वे केरल के घर घर में जाकर देखते हैं। इसी विश्वास के आधार पर बलि राजा के स्वागतार्थ केरल के घर घर को सजाया जाता है। घर के सामने फूलों और रंगों से सजावट की जाती है। बालाएँ पैरो में घुँघरू बाँध कर कथकली नृत्य करती हैं।

वस्तुत ओणाम फसल का पर्व है। फसल कटकर इस समय घरों और खलिहानो में आ जाती है तब तबीयत में मस्ती आ जाना स्वाभाविक है। इसलिये दक्षिण के काश्मीर केरल की यह मस्ती इस पर्व के रूप में स्वाभाविक रूप से फूट पडती है।

गणगौर

यह मुख्य रूप से राजस्थान का पर्व है। बडी मस्ती से भरा रंगीला पर्व है। गणगौर को शिव पार्वती का रूप माना जाता है। इसलिए कुमारी कन्यायें इच्छित वर प्राप्ति के लिए तथा सुहागिनें अपने अखण्ड सौभाग्य के लिए गणगौर (शिव पार्वती) की पूजा करती हैं।

होली के दूसरे दिन से होली की राख द्वारा गणगौर की मूर्ति निर्मित की जाती है। मूर्ति के साथ दूब, फल आदि लेकर कन्याओ की टोली विविध

शृंगार कर कुओं, तालाबो, उपवनो आदि पर गीत गाती हुई गौरी पूजनार्थ जाती है। यह त्यौहार सोलह दिन का मनाया जाता है।

अन्तर कथा है कि बूंदी के नरेश ईश्वरसिंह के साथ उदयपुर के राणा वीरमदेव की पुत्री गणगौर का विवाह हुआ किन्तु वे शत्रुओं का पीछा करते हुए गणगौर सहित अपना घोडा लेकर चम्बल मे कूद पडे तो वापस नही निकल सके। उन्ही की स्मृति म यह त्यौहार चल पडा। अब यह बडी मस्ती का पव माना जाता है। जयपुर मे इस सर्वाधिक उत्साह से मनाया जाता है। गणगौर पर गाये जाने वाले गीतो म एक प्रमुख गीत के बोल इस प्रकार है

"हरी हरी दूब ल्या, गणगौर पूजल्या।
रानी पूजे राज ने, म्ह पूजा सुहाग ने।
रानी का राज तपतो जाय, म्हा का सुहाग बढतो जाय।।'

इन पंक्तियो म इस त्यौहार की आत्मा उतर आई है।

उपयुक्त पर्वों, त्यौहारो के अतिरिक्त डोल यात्रा एकादशी, शीतला पूजन, ऋषि पचमी रामनवमी, महावीर जयन्ती बुद्ध पूर्णिमा आदि के पव भी उत्तर भारत के जन जीवन म रम हुए हैं।

भारत राष्ट्र का भावात्मक एकता के सूत्र मे बाधने वाल इन पर्वों का सीधा सम्बध पूरी सस्कृति स ह। इस दश की मिट्टी पर एक हजार वष स आज तक ऐसी जातिया भी आकर बस गई हैं जिनकी सस्कृति भिन्न है लेकिन जो देश के हवा पानी म रम कर न जाने कब से इसी की बन चुकी है। उनके पव भी इस दश के पव बन गये ह और जन सामान्य उनम बडी रुचि से आनन्द लेता है। इन पर्वों म बारह बफात, रमजान, इदुलफितर, इदुलजुहा, मोहरम और निसमिस आदि क पव आत है।

भारत की मिट्टी का स्वभाव है, पचाकर यह सबको एक कर दती है। समन्वय की भावना इसकी हवा म उडती है पानी म रमती है। देश के ये विभिन्न पव त्यौहार विविधरूपा सस्कृति की विशाल शृंखला म समन्वय की ही कडिया हैं।



राष्ट्रीय भावात्मक एकता का माध्यम

भारतीय संगीत तथा नृत्य

भारत एक विशाल देश है। इतने बड़े देश में भिन्न भिन्न प्रकार के धर्म, भिन्न भिन्न भाषायें भिन्न भिन्न खान पान रहे तो कोई आश्चर्य नहीं, फिर भी भारत की संस्कृति एक रही। समान संस्कृति के कारण ही भारत में एकता भाव जागृत रहा। इस सांस्कृतिक एकता के पुष्टिकरण में संगीत का बड़ा योगदान रहा है। राष्ट्रीय एकता किसी एक ऐसे माध्यम से होती है जो समान रूप से देश में व्याप्त हो जिसके ऊपर सबको गर्व हो, जो सबका मान्य हो, जिसकी महत्ता से सारा राष्ट्र अपने को गौरवान्वित समझता हो। भारत के भिन्न प्रदेशों में लिपियाँ, भाषायें, रहन सहन भिन्न भिन्न होने हुए भी संगीत राष्ट्र भर में सार्वजनिक है समान है।

केवल पुण्य भूमि भारत में ही नहीं, प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में संगीत का जीवन में एक विशिष्ट स्थान रहता है। हमारे देश के किसानों के धान कटाई के गीत नदी के चंचल प्रवाहित वक्ष पर नाव बहाते हुए माझियों के माँझी गीत, बाउल का एक तारा के स्वर में मिलाकर सुकण्ठ गायन न जाने किस अतीत में शुरू हुए और आज भी प्रचलित है।

संगीत लोगों को एक दूसरे के निकट लाता है—यह विचार स्वर कारों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में जो चकोस्लोवाकिया की राजधानी में हुआ, भाग लेने वालों में से कई लोगों ने व्यक्त किया। मानव अपना सुख दुख संगीत द्वारा प्रकट करता है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में संगीत का स्थान है। सभी धार्मिक व सामाजिक कार्य संगीत द्वारा ही पूर्ण

होते हैं। अनाज का उगना, फसल का काटना आदि पर सबके गान हैं। इन गीतों में स्वाभाविकता एवं प्राकृतिकता का मेल है एवं इनमें एकता की आत्मा छिपी हुई है। आरकेस्ट्रा में कई व्यक्तियों के साथ बैठकर बजाने से उनमें एकता की भावना का विकास होता है। सगीत के विद्यालयों में विभिन्न जाति विभिन्न धर्म के व्यक्ति आते हैं व साथ सीखते हैं। इससे उनके विचारों का आदान प्रदान होता है तथा एकता स्थापित होती है।

भारत में राष्ट्रीय एकता का एक सशक्त माध्यम सगीत रहा है। सगीत का प्राण है स्वर। मुख्य स्वर सात हैं। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान पारसी हो या सिक्ख जैन हो या बौद्ध और मद्रासी हो या पंजाबी, काश्मीरी हो या बंगाली राष्ट्र भर में सभी सातों स्वरों को एक ही नाम से अभिहित करते हैं। षड्ज, रिषभ, गंधार मध्यम, पंचम, धैवत। ऐसा नहीं है कि बिहारी और बंगाली इन्हें किसी और नाम से जानते और कहते हों और आंध्र और केरल प्रदेश के निवासी किसी और नाम से। भारत भर में कहीं चले जाइए, स्वरों के नाम यही सुनने को मिलेंगे। स्वरों की इस समान सज्ञा से हम स्वाभाविक रूप में एकता का अनुभव करते हैं।

भारतीय सगीत के दो आधार है राग और ताल। देश भर में कोने कोने में सगीत राग और ताल पर आश्रित है। राग और ताल की अवधारणा भी सारे देश में एक ही है। राग वह ध्वनि विशेष है जो स्वर और वर्ण से विभूषित होकर जन मन का रजन करती है। देश भर में कहीं चले जाइए राग की यही अवधारणा मिलेगी। ऐसा नहीं है कि देश के किसी भाग में राग के कुछ स्वरूप हों और अन्य भागों में कुछ और। इसी प्रकार ताल की अवधारणा मात्राओं के विशेष विन्यास और विभाग देश भर में समान रूप से एक है। देश में कहीं चले जाइए, राग और ताल सगीत के मुख्य सघटक के रूप में मिलते हैं जो सुनने वालों के हृदय में एकता का भाव जाग्रत करते हैं।

जब भारत में मुसलमान आये तो उन्होंने भी इसी देश का सगीत अपनाया और कुछ ईरानी धुनें अवश्य भारत में प्रचलित हुई परन्तु उनका वर्ताव विस्तार भारत के ही रागों के विस्तार के समान होने लगा। जिला, जीलफ

इत्यादि धुनो ने भारत के रागो का बाना पहिन लिया। यहाँ तक की कव्वाली भी भैरवी 'देश' इत्यादि रागो मे गाई जाने लगी। मुहरम के दिनो मे 'सोज' पीलू मे गाया जाने लगा। स्वर, राग, ताल आदि सभी हिन्दू और मुसलमानो मे समान है। वाद्यो मे भी वीणा या वीन, सारगी व मृदग इत्यादि उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम भारत भर मे एक ही हैं। ढोल या ढोलक सारे भारत मे इतने प्रचलित हैं कि यह लोक सगीत का एक सार्वजनिक वाद्य बन गये हैं।

हमारे सगीत का विकास चाहे उत्तर मे हो या दक्षिण मे क्रमश श्रुति स्वर ग्राम मूच्छना जाति और राग के रूप म हुआ है। सगीत का सारा इतिहास यही बतलाता है कि देश भर मे सगीत के विकास का यही क्रम रहा है। वर्तमान म ही नही, अतीत स सगीत सारे देश की एकता के सूत्र मे बाँधता रहा है।

सगीत की हिन्दुस्तानी और कर्नाटक पद्धति की गायकी मे बहुत कुछ समानता है। हिन्दुस्तानी पद्धति म राग का गायन आलाप से प्रारम्भ होता है, कर्नाटक मे भी आलाप से प्रारम्भ होता है। हिन्दुस्तानी पद्धति म राग के बर्ताव मे तानें लेते है। कर्नाटक पद्धति म भी राग के बर्ताव मे ताने लेत हैं। आधुनिक काल मे भारतीय सगीत को जन जीवन देन वाले महामहिम भातखण्ड जी ने हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक सगीत के समन्वय से राष्ट्रीय सगीत की कल्पना की थी। सगीत के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के लिए भारतीय सविधान की मान्यता प्राप्त चौदह प्रादेशिक भाषाओ मे समूह गान सिखाया जाता है। आकाशवाणी के कार्यक्रमो मे सभी भाषाओ का मिला-जुला कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। युगलबन्दी की परम्परा का भी पर्याप्त प्रचार हो रहा है जिससे कलाकारो म सहयोग की भावना को बढावा मिलता है। प० रविशकर और अली अकबरखाँ की सितार तथा सरोद की युगलबन्दी वी० पी० जोग और बिस्मिल्ला खाँ की वायलिन और शहनाई की युगलबन्दी भावात्मक एकता बढाने के अच्छे उदाहरण हैं। इस प्रकार आरकेस्ट्रा मे एकता की भावना ही निहित है।

संगीत की भाँति नृत्य की परम्परा भी राष्ट्रीय एकता बनाये रखने में सफल हुई है। लोक नृत्य प्रादेशिक विशेषताएँ अवश्य प्रकट करते हैं, परन्तु शास्त्रीय नृत्य शैली की चार प्रमुख धारायें भारत नाट्यम्, कथकली, कत्थक तथा मणिपुरी देशव्यापी महत्त्व स्वीकार किए हुए हैं और पवित्र स्रोतस्विनी के रूप में विघटन की प्रवृत्तियों की कालिमा कला के संगम पर नष्ट कर सांस्कृतिक एकता के स्वर उद्घोषित करती है। दक्षिण का भारत नाट्यम, राजस्थानी शृंगार का मूर्तमान कत्थक तथा पूर्व का मणिपुरी जन रुचि की दृष्टि से सार्वदेशिक है। पौराणिक गाथायें कथकली के माध्यम से देश भर में दर्शकों को भाव विभोर करती हैं। ताल, लय, परण, तोड़े, सम आदि के विचार से एक आत्मा का ही विभिन्न रूपों में निखार है। नृत्य कला किसी भी शैली में मुखरित हो, वह भारत की भावात्मक एकता के आदि रूप ताण्डव और लास्य का ही प्रकाश है।

इस प्रकार भारत में संगीत और नृत्य से काश्मीर से कन्याकुमारी तथा असम से सौराष्ट्र तक संस्कृति की एक ही आत्मा का स्फुरण है। वस्तुत ये कलायें आत्मा का ऐसा व्यापार है जो प्रत्येक प्राणी के तन, मन को झंकृत करते हुए सम्पूर्ण जन मन की एकता का कारण बन जाता है। यह व्यापार देश और काल की सीमायें लाँघकर मानव मात्र को एकता के सूत्र में पिरोता है। यह एक ऐसी भाषा है जो विभिन्न राष्ट्रों एवं जातियों को पारस्परिक मैत्री के मधुर बन्धन में आबद्ध करती है। नृत्य और संगीत के संसार में कोई शीतयुद्ध अथवा जाति भेद नहीं पनपता। यहाँ तो प्रेम, सौहार्द, सहनशीलता और भ्रातृत्व की पावन धारा बहती है। देवभूमि भारत में नारद की वीणा उदयगिरि पर पवन की सन् सन् ऋषिकेश गंगोत्री में जाह्नवी की कल कल और कैलाश पर नीलकण्ठ के डमरू में समवेत स्वर मिलाती हुई सर्वत्र भावात्मक एकता का माधुर्य प्रसारित करती रही है।

□□

भारत के लोक नृत्य

प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति होती है। इस संस्कृति के निर्माण में उस देश के लोकगीत एवं लोकनृत्यों का महत्वपूर्ण योगदान हुआ करता है। इनमें वहाँ के जन मानस का स्पष्ट प्रतिबिम्ब उभरता दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति व सभ्यता के निर्माण में भी लोकनृत्यों का विशेष महत्व है। भारत के विभिन्न राज्यों के महत्वपूर्ण लोकनृत्यों का संक्षिप्त विवेचन करना अभीष्ट होगा। हमारे देश में पर्वोत्सवों पर विविध रूपों में रूपायित लोकनृत्यों की परम्परा अति प्राचीन है। इन लोकनृत्यों में निश्छल जनजीवन का निर्मल, सजीव और मनोरम चित्र परिलक्षित होता है।

प्रकृति का अपना अलग विधान है। तदनुसार लोक मानस में सृजित होती हुई विभिन्न भावनाएँ अनेक लोकनृत्यों व गीतों में फूट पड़ती हैं। प्रदेशों के प्राकृतिक विभेद के कारण भारत के प्रत्येक जनपद की लोक परम्पराओं में स्वतः ही परिवर्तन हो जाता है। इस कारण भारत जैसे महान और विशाल देश में लोकनृत्यों के भी अनेक रंग बिरंगे और मनमोहक रूप दिखाई देते हैं किन्तु जहाँ तक देश की संस्कृति में रागात्मक एवं भावात्मक एकता की आवश्यकता है, इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारत के लोक नृत्यों में एक ही मूलभूत आत्मा व्याप्त है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोकनृत्य भारत की राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से राष्ट्र भवन की आधारभित्ति में स्नेह एवं प्रेम के सुदृढ़ प्रस्तर खंड हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों के सर्वप्रिय लोकनृत्यों की संक्षिप्त झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

काश्मीर

धरती के स्वर्ग काश्मीर के निवासी संगीत एवं नृत्य के बड़े रसिया हैं। वहां के ग्रामीण अंचलों में निवास करने वाले लोग जब भी अवसर मिलता है, सामूहिक नृत्य करने लगते हैं। विवाह, पुत्र जन्म, फसल पकने और मेलों के अवसर पर तो ये नृत्य अनिवार्य हो जाते हैं।

रोफ नृत्य काश्मीर का यह लोकनृत्य बहुत प्रसिद्ध है। रात्रि के सामूहिक भोजन के पश्चात प्रायः यह नृत्य किया जाता है। इसे समाज ने धार्मिक नृत्य की मान्यता दे दी है। यह नृत्य विशेष रूप से स्त्रियाँ करती हैं। रंग बिरंगी ओढ़निया सिर पर डाले कुर्ते और सोने चाँदी के आभूषणों से सजी धजी स्त्रियाँ कुछ अंतर से दो पंक्तियाँ बनाकर खड़ी हो जाती हैं फिर गीत गाती हुई एक दूसरे की ओर बढ़ती हैं।

लद्दाखी नृत्य काश्मीर की घाटी के पश्चिम प्रदेश में बौद्ध धर्मावलम्बी प्रदेश लद्दाख है। यहाँ बौद्ध पर्वों पर पहाड़ी चोटी पर पायजामे और लम्बे चोगे तथा मस्तक पर विचित्र टोपियाँ लगाये लद्दाखी गायक द्वारा लोकगीत की कड़ी छेड़ते ही नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। संगीत की तान पर नृत्य प्रारम्भ होने के साथ साथ नर्तकों के हाथ में लिए हुए लम्बे रंग बिरंगे रूमाल लहराने लगते हैं। समस्त वातावरण में मस्ती का आलम छा जाता है।

हिमाचल प्रदेश

दीवाली नृत्य भारत के उत्तर शीर्ष में गगनचुम्बी नगाधिराज हिमालय के मनोरम अंचल के इन भोले भाले निवासियों में अनेक मनभावन लोकनृत्य प्रचलित हैं। यहाँ नृत्य के कार्यक्रम बड़ी सजधज के साथ प्रारम्भ होते हैं। दीपावली की रात में इस प्रदेश की नवयुवतियों के हृदय चंचल हो उठते हैं। परदेश गये प्रियतम के अभी तक न लौटने से विरहिणी के कोमल कंठ से एक विरही गीत की स्वर लहरी उस रमणीय पर्वत्य प्रदेश की ढलानों पर गूंज उठती है। उसका साथ देने के लिए स्त्री पुरुष हिलमिलकर नृत्य करना प्रारम्भ कर देते हैं।

वियोग नृत्य हिमाचल प्रदेश के जनजातियों में वियोग नृत्य अधिक प्रचलित हैं। इसमें स्त्री पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। प्रेमिका के मधुर कटाक्ष पर अपने को न्योछावर करने वाला हिमाचलवासी प्रेमी युवक अपना घर बार खेती वाडी आदि सभी कुछ छोड़कर मधुर कल्पना में डूबा हुआ ममस्पर्शी गीत की धुन छेड़ देता है। उसका साथ देते हैं उसके समवयस्क साथी। गले से पैरों तक श्वेत परिधान पहने, सिर पर सफेद पगड़ियाँ बांध तथा हाथ में रंग बिरंगे रुमाल लिए गोल घेरे में थिरकते हुए मस्त हो जाते हैं। ढोलक की थाप उनके नृत्य को गति देती है तो बांसुरी की मधुर ध्वनि पर्वतीय जन जीवों में उल्लास का सचार करती है। स्त्रियाँ भी अपने सिर पर रंग बिरंगे रुमाल बांधे तथा रंगीन परिधान पहन स्वर्गलोक की सुन्दरियों का सा दृश्य उपस्थित कर देती हैं।

नागालैण्ड

श्रोजापाली नृत्य नागा लोगों में शक्तिपूजा के समय जो नृत्य किया जाता है वह श्रोजापाली नृत्य कहलाता है। ये लोग बीच में आग जलाकर चारों ओर वृत्त बनाकर नृत्य करते हैं। नृत्य करते समय यह लोग गीत गाते हैं। नृत्य के समय ढोल बजता रहता है। नृत्य में स्त्री पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। श्रोजा लोग नृत्य में पायजामा तथा सिर पर लबी पगड़ी पहनते हैं। हाथ में विशेष चूड़ियाँ व कान में कुंडल पहनते हैं। मस्तक पर तिलक लगाते हैं।

नोगक्रम नृत्य खासी पहाड़ी के खासी लोग एक महत्वपूर्ण नृत्यपूर्ण उत्सव मनाते हैं जो नागक्रम कहलाता है। इसमें देवता की पूजा होती है। यह नृत्य ज्येष्ठ मास में एक पूर्व निश्चित दिवस पर आयोजित होता है। निम्न भिन्न गाँवों के लोग प्रधान पुरोहित के घर पर एकत्रित होते हैं। बकरा की बलि के बाद मदिरा पान होता है। बलि वेदी के सामने 22 खासी पुरुष ढाल तलवार एवं चँवर लेकर नृत्य करते हैं। फिर एक विस्तृत प्रांगण में दूसरा नृत्य प्रारम्भ होता है। यह युवकों व युवतियों का सामूहिक नृत्य होता है। ये लोग अपने अपने शरीर पर मूल्यवान रेशमी वस्त्र पहने होते हैं। गले में

मूगो की माला तथा अन्य अनेक आभूषण पहन कर नृत्य करते हैं। उस समय बासुरी, भाझ और ढाल जसे वाद्य यन्त्र बजाये जाते हैं।

मणिपुर

थावल चौम्बा नृत्य मणिपुर भारत वर्मा की सीमा पर स्थित केन्द्र प्रशासित प्रदेश है। स्वतन्त्रता से पूव यह एक देशी राज्य था। मणिपुर की घाटी प्राकृतिक सौन्दय से पूण समृद्ध है। होली यहाँ का सबसे अधिक लोक प्रिय और महत्वपूण त्योहार माना जाता है। उक्त दिवस पर मणिपुर निवासी भाव विभोर होकर घटा कृष्ण मन्दिर म नृत्य एव गायन करते हैं। मणिपुर की रसमयी धरती पर पग रखते ही मृदग की थाप पर कृष्ण कीतन की मधुर ध्वनि सुनाई पडती है। मणिपुर नृत्य का मुख्य आधार भगवान कृष्ण की मधुर लीलाए हैं।

मणिपुर के प्रत्येक ग्राम म फाल्गुन मास की पूर्णिमा को चन्द्रमा की स्नेह स्निग्ध चादनी म युवक युवतिया मिलकर थावल चौम्बा नृत्य करते हैं। यह नृत्य होली के 15 दिन बाद तक चलता रहता है। यह लोक नृत्य एव विशेष गीत की लय पर प्रारम्भ हो जाता है। गीत की लय प्रारम्भ मे धीमी और बाद म तीव्र हो जाती है। बसन्त के यौवन का त्योहार होने से यह नृत्य युवा हृदया की मस्ती का प्रतीक भी है। इस कारण थावल चौम्बा के दिनो म बहुत से नवयुवा हृदय गन्धव विवाह करके परस्पर प्रणय बन्धन म बँध जाते हैं।

असम

असम के लोकनृत्य काफी समृद्ध और दीघकालिक परम्परा से सम्पन्न हैं। आज से पाँच सौ वप पूव श्री शकर देव ने अपने वष्णव धर्म के सिद्धान्तो के प्रचार व प्रसार के लिये वहाँ की जन जातिया के सगीतात्मक लोकनृत्यो का सहारा लेकर इन्ह और अधिक सँवारा है। कुछ प्रसिद्ध लोकनृत्य इस प्रकार हैं

केलिगोपाल नृत्य इस नृत्य म कृष्ण की बाल लीलाओ का सुन्दर प्रदशन किया जाता है। इसमे बकासुर वध की लीला विशेष रूप से प्रदर्शित की जाती है।

कुबुई नृत्य असम राज्य में कुबुई नाम की एक घुमक्कड़ जाति निवास करती है। इसका लोकनृत्य कुबुई कहलाता है। जब फसल पककर कटने लगती है या कुबुई युवक शिकार खेलने जाता है तब उस समय पर कुबुई जाति के युवक व युवतियाँ एक साथ मस्ती में भरकर यह नृत्य करते हैं। नृत्य में प्रमुख वाद्य घंटा व बाँसुरी है। इस समय हाम्रोपुंग नामक एक धौंसा बजता है जो वीर रस के संचार के साथ नाचने वालों के थिरकते पावों में उत्साह भरता है।

बिहू नृत्य यह असम का प्रमुख लोकनृत्य है। असमी नववर्ष के अवसर पर सारे आसाम में यह नृत्य उल्लास और प्रसन्नता के साथ किया जाता है। यह मुख्यतः पुरुषों का नृत्य है। वाद्य यंत्रों में बाँसुरी, ढोलक, झाँझ और मजीरे प्रमुख हैं। जब यह नृत्य पूर्ण गति पर होता है उस समय ताल पर थिरकते पर तथा वाद्य यंत्रों से गूँजती हुई ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो सहस्र कोकिल कंठी किशोरियाँ खिलखिला उठी हों।

चिराउ नृत्य असम की एक अन्य जनजाति लुशाई भी विभिन्न उत्सवों पर चिराउ नामक नृत्य का आयोजन करती है। यह नृत्य विशेषकर स्त्रियों का है। गाँव के किनारे खुले स्थान पर चाँदनी रातों में स्त्रियाँ आकर एकत्र हो जाती हैं। वहाँ भूमि पर बाँसों को चौखानों के रूप में रख दिया जाता है। संगीत की मधुर स्वर लहरियों पर इन्हीं बाँस के चौखानों के मध्य चिराउ नृत्य किया जाता है। यह नृत्य बिना अभ्यास के सरलता से नहीं किया जा सकता।

पंजाब

भंगड़ा नृत्य पंजाब का सर्वाधिक प्रिय लोकनृत्य भंगड़ा है। गुजरात के गरबा नृत्य की भाँति यह भी भारत के पुरुषों का राष्ट्रीय लोकनृत्य बन गया है। विदेशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इस नृत्य का सम्बन्ध गेहूँ की नई फसल से है। पंजाब का मदमाता हुआ यौवन फसल के पकते ही भंगड़ा नृत्य के रूप में थिरक उठता है। विशेषकर वैशाखी या किसी भी खुशी के अवसर पर यह नृत्य किया जाता है। गाँव में अथवा

उसके ग्राम पास किसी भी खुली जगह पर पजाबी युवा किसाना का दल एकत्र हो जाता है और गोल घेरा बनाकर नृत्य प्रारम्भ कर देता है। ढोल को बजाने वाला व्यक्ति घेरे के मध्य खडा होकर ढोल बजाने लगता है।

ढोल की उभरती हुई ध्वनि के साथ साथ नत्य करते हुए परो की गति तज हो जाती है। जसे जसे नत्य की गति बढती है नाचने वाला के अग प्रत्यगो म भी बिजली की सी तेजी भर जाती है। नाचने वाले शरीर को मोड मरोड कर ऊँचे उछल उछल कर वत्ताकार गति मे नाचने लगते हैं। बीच बीच म वे अपने दोना हाथो को ऊपर करते हुए एक पर से ऊँचे उछलते हुए बल्ले बल्ले, ओए आए कहते हुए ताली बजाकर नाचते हैं। परो मे बँधे हुऐ घु घरुओ की मधुर ध्वनि से एक अद्भुत समा बँध जाता है।

भगडा करने वाले नतको की वेशभूषा बहुत ही रगीन और भडकीली होनी है। उस समय कमर मे रगीन तहमद लपेटे पूरी बाँह के लम्बे रेशमी कुर्तो पर गहरे लाल या चमकीले नीले रग की खुबसूरत वास्कट पहने तथा सिर पर रगीन फुन्लेदार या सादा साफा बाँधे हुए पजाबी लोक नतका की यह मस्ती दशनीय होती है।

भगडा की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि जीवन के रस को मस्ती से छलकाने वाला यह नत्य पजाब की धरती मे उत्साह की लहर दौडा देता है। *भगडा के बारे मे किसी पजाबी लोक गीत का यह भाव कितना साथक है* जीवन बास की लम्बी लाठी है, जिसम जगह जगह दु ख की गाँठे हैं और भगडा उन गाठो को ढीला करन मे सहायता देता है।

गद्दी नृत्य पजाब की कागडा घाटी के ऊपरी भागो का नत्य है। दिन भर के परिश्रम के बाद रात्रि को जब भी अवसर मिलता है स्त्री पुरुष एक साथ मिलकर यह नत्य करते हैं। इस नृत्य मे 25 से 30 तक स्त्री पुरुष भाग लेते है। स्त्रिया चूडीदार पायजामा चोला व कमरबध और पुरुष नगडी का प्रयोग करत हैं। नत्य के समय प्रणय सम्बन्धी लोकगीतो की धुनें नगाडा, ढालक, शहनाई तथा बाँसुरी के माध्यम से बजाई जाती है।

गिद्धा नृत्य पंजाब की स्त्रियों का लोक नृत्य गिद्धा है। यह नृत्य नई फसल आने, विवाहोत्सवों, पुत्र जन्म तथा मेलों के अवसर पर किया जाता है। सावन में तीज के त्योहार पर ससुराल से पीहर आने वाली स्त्रियाँ अपनी सखियों के साथ यह नृत्य करती हैं।

कुल्लू का दशहरा नृत्य हिमालय के बीच में प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर मनोरम कुल्लू घाटी का दशहरा लोक नृत्य अधिक प्रसिद्ध है। दशहरे के अवसर पर कुल्लू नगर के पास मैदान में लोग 300 देवी देवताओं के विमान एकत्र करके कुल्लू की घाटी के देवता श्री रघुनाथ जी की वन्दना करते हैं। इस कारण यह घाटी देवताओं की घाटी कहलाती है। पाँच दिवस के इस उत्सव में जिन देवताओं के विमान कुल्लू नगर की परिक्रमा करते हैं, उस समय स्त्रियाँ लम्बे रंगीन चोगे (गाउन) पहन तथा सिर पर लाल रुमाल बाँध कर देवताओं के आगे नृत्य करती चलती हैं। पुरुष ढीले चूड़ीदार पायजामे पूरी बाँहों की बंडियाँ पहने और कमर में फेंटा बाँध जिमनास्टिक के से करतब दिखाते हुए नृत्य करते हैं। लोक संगीत की ध्वनि दूर दूर तक कुल्लू की रंगीन घाटियों में गूंज कर उसे और अधिक रंगीन बना देती है। नृत्य और संगीत का यह कार्यक्रम चन्द्रमा के अस्त होने तक चला करता है। रात्रि में मशालों के प्रकाश में यह कार्यक्रम एक स्वप्न लोक की सी सृष्टि कर देता है। संगीत में ढोल, नगाड़े, तुरही, बाँसुरी व घटियाँ बजती रहती हैं।

हरियाणा

होली नृत्य यह लोकनृत्य हरियाणा राज्य के जन जीवन की मस्ती का प्रतीक है। लोगों की इस मस्ती के दर्शन होली के अवसर पर नाचती हुई स्त्रियों के पैरों में बँधे घुंघरूओं तथा डफ की मधुर ध्वनि के माध्यम से होते हैं। इस नृत्य में स्त्री व पुरुष भाग लेते हैं। गोलवृत्त बनाकर नृत्य का आयोजन किया जाता है। स्त्रियाँ रंग बिरंगी ओढ़नियाँ, आधी बाँह की चोलियाँ, और लहँगे पहने, पुरुष धोती और अंगरखे पहने व साफा बाँधे तथा कमर में फेंटा कसे हुए बड़े उत्साह से इस कार्यक्रम में भाग लेते हैं। नृत्य के अवसर पर उसे गति देने व जीवन में उत्साह भरने हेतु बाँसुरी, अलगोजे, मंजीरे युक्त चिमटे और छोटे छोटे ढोल बजते रहते हैं।

कुमायूं का पूजन नृत्य कुमायूं का प्रदेश हिमालय की पवित्र गोद मे प्राकृतिक सौन्दय सम्पन्न प्रदेश है। यहाँ के प्रत्येक नगर व गाँव म भाद्रपद की नन्दाष्टमी का त्यौहार बडी धूमधाम से मनाया जाता है। इसे राधाष्टमी भी कहते है। कुमायूं की घाटी के प्रसिद्ध नगर अलमोडा म यह त्यौहार विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। नन्दा देवी के पूजन व उनकी शोभा यात्रा के समय अनेक स्थानो पर मेले भरते हैं। मेले के अवसर पर कुमायूं की भूमि का सारा वातावरण लोक नृत्यो स ओत प्रोत हो जाता है। स्त्रिया विशेष रूप से रगीन वस्त्र एव आभूषण पहनकर नृत्यो म भाग लेती हैं। उक्त अवसर पर देवर भाभी मधुर गीतो मे रस मग्न दिखाई देते है। गोलवृत्त बनाकर डफ की ताल पर गीत की धुन के साथ नृत्य प्रारम्भ हो जाता है।

थारुओ का वर्षा नृत्य प्रदेश के तराई प्रदेश म, जो हिमालय राज्य का निचला भाग है, विशाल थारू जन जातिया निवास करती हैं। थारू की राणा उपजाति के लोग सलूका पहनते है। सिर पर किश्तीनुमा या गुम्बज दार टोपी लगाते है। ननीताल जिले के थारू पुरुष अँगरखा, कुर्ता और धोती पहनते है। राणा उपजाति की स्त्रिया आधी बाँह की ब्लाउजनुमा चोली और लहँगा पहनती हैं। सिर पर दुपट्टा ओढती हैं। ये वस्त्र रग बिरगे होते है। थारू जाति दीपावली के त्यौहार को वर्षा उत्सव के रूप म मनाते हैं। मृतात्माओ को शाति पहुचाना इस उत्सव का मुख्य उद्देश्य है। थारुओं का विश्वास है कि मृतात्माएँ अदृश्य रूप म भूमि पर आकर अपने परिवार के लोगो के साथ नृत्य करती है। इस अवसर पर नृत्य के साथ सगीत का विशेष आयोजन किया जाता है।

खिचडी नृत्य थारुओ मे होली का त्यौहार अधिक महत्व रखता है। यह इनका सर्वाधिक मस्ती से भरा रगीन त्यौहार है। प्रकृति म प्रागण म वसतागमन के साथ ही माघ की पूर्णिमा स ही नित्य रात्रि को थारुओ का होली नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। नृत्य म स्त्री पुरुष सभी भाग लेते है।

इसमें एक पुरुष के बाद एक स्त्री एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए वृत्ताकार घूमते हुए पद प्रक्षेप करते हैं। ढोल की थाप पर एक झमाके के साथ पहले पुरुष लोकगीत की पंक्ति गाते हैं और स्त्रियां उस कड़ी को दुहराती है। यह लोकनृत्य और गीत उत्साह, उमग, सरलता और सहयोग की भावना का अनुपम प्रतीक है।

शोखी नृत्य थारू जाति के लोकनृत्य की यह दूसरी शैली है। इस नृत्य म पुरुष नही नाचते। वे केवल डफ पर थाप देते हैं और स्त्रियां वाद्य यन्त्रों की धीमी और तीव्र होती हुई लय ताल के साथ अपने पगों की ध्वनि मिलाते हुए वृत्ताकार थिरकती हैं। सारा वातावरण मधुर हो उठता है।

घसिया जाति का 'करमा' नृत्य विन्ध्याचल और कैमूर के पर्वतीय क्षेत्र म अनेक जन जातियाँ रहती है, जिनम घसिया जाति भी है। इसका महत्वपूर्ण लोकनृत्य करमा' है। यह नृत्य करम वृक्ष को देवता मान उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने की दृष्टि से किया जाता है। इसका कोई निश्चित समय नही है। अवकाश के समय जब भी लोग उमग मे आते हैं यह नृत्य प्रारम्भ कर देते है। नृत्य के समय मादल मजीर बजाए जाते हैं। औरते और मर्द दोनो ही पावो म पैंजनियाँ पहनकर नृत्य करते है। दोनो आमने सामने पक्तिबद्ध खडे होते है। पुरुष गीतो की टेक पर मादल पर थाप देकर प्रश्न करते हैं, स्त्रियाँ नृत्य करते हुए उनके प्रश्न का उत्तर देती है। फिर वे पुरुषो से प्रश्न करती है और पुरुष उत्तर देते है। सारी रात यह क्रम चलता रहता है।

बिहार

बिहार के संथाल परगने के पर्वतीय क्षेत्रो के निवासी और छोटा नागपुर के जंगली क्षेत्रो के निवासी कला प्रेमी है। उनके लोक गीत एव चरवाह नृत्य अपनी विशिष्टता रखते है। उनमे प्रमुख ये है।

छाऊ नृत्य यह बिहार राज्य का सर्वश्रेष्ठ लोक नृत्य है। मुख्य रूप से सिंहभूमि जिले के शेराकेला एव खारास्वान के निवासियो का यह लोकप्रिय नृत्य है। बिहार के भूतपूर्व शेराकेला राज्य के राजाओ ने राज्याश्रय प्रदान कर इस लोक नृत्य को विकसित किया। इस लोक नृत्य म रातके

मुखौटा पहनकर नाचता व गाता है। इसम नर्तक आखा एव मुखाकृति के द्वारा हावभाव प्रकट करता है। इस नत्य म स्त्रिया भाग नही लेती।

जटा जटिन नृत्य यह मिथिला क्षेत्र का नारी नत्य ह। विशेषत मानसून के अवसर पर चादनी रात मे यह नत्य किया जाता है। ढोल नगारा के साथ यह नत्य आधी रात्रि से प्रारम्भ होकर प्रात काल तक चलता है। इसमे जटा (नायक) तथा जटिन (नायिका) की प्रेम लीलाओ को लोक नृत्य के रूप म प्रकट किया जाता है।

बिहार के अन्य लोक नृत्यो म मार्चा, जादुर सरहुल, कर्मा आदि प्रमुख हैं।

वर्षा की समाप्ति पर माथा लोक गीत स्वच्छ नील गगन के तल गाय जाते है। इनमे लूजरी एव भूमर प्रमुख हैं।

बगाल

अग्रेजी शासनकाल मे प्राय सभी शिक्षित बगालियो की यह धारणा बन चली कि बगाल के अपन कोई लोकनत्य नही है। बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध म बगाल के सथाल क्षेत्र म गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टगोर न शातिनिकेतन की स्थापना की और सथाला तथा मणिपुरी लागा के लाकनृत्या की समद्ध परम्परा का खाज निकाला। यहाँ इन लोक नत्यो का सक्षिप्त वणन दिया जा रहा है

सकीतन नत्य बगाली लाकनत्या म सकातन नत्य अत्यधिक लाक प्रिय है। यह धार्मिक नत्य गौराग महाप्रभु चतन्यदव की दन है। इस नत्य म बिना किसी भेदभाव के सभी जातिया क लोग भाग लते हैं। यह नत्य बहुत सरल ह। ढोलक अथवा मदग इसम मुख्य वाद्ययत्र का काय करता है। कीतन के समय भक्तगण भाव विभोर हाकर मृदग, ढालक मजीर और कर तालें बजाते हुए वत्ताकार नत्य करते हुए कृष्ण नाम का स्मरण करत हैं।

जात्रा नत्य नवरात्रा म दुर्गा पूजा के दिना म सम्पूर्ण बगाल म इस नृत्य नाटिका की धूम रहती है। नृत्य परम्परा 400 वष पुरानी है। नौ

दिन तक नित्य रात्रि को यह नृत्य होता है। अधिकांश कथानक कृष्णलीला पर आधारित होते हैं। माँ दुर्गा की स्तुति भावविभोर होकर गायी जाती है। दशमी के दिन जगदम्बा की मूर्ति को समीपस्थ किसी नदी अथवा जलाशय म विसर्जित किया जाता है। विसर्जन से पूर्व नगर और गाँवों से दुर्गाजी की शोभा यात्राएँ निकाली जाती हैं। उस समय स्त्री पुरुष इस नृत्य म भाग लेते हैं। मृदंग और पखावज बजा बजाकर माँ अम्बा की स्तुति करते हुए यह नृत्य किया जाता है। मृदंग की संख्या 20/25 तक होती है।

बंगाल के अन्य प्रसिद्ध लोकनृत्य बाउल, गाजन, काली, रिमाछम और धान आदि हैं।

उडीसा

उडीसा राज्य म अनेक आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। ये समय-समय पर तरह तरह के नृत्य करती हैं। जिनम कुछ नृत्य अधिक लोकप्रिय हैं

जुआंग जाति के नृत्य जुआंग लोग पशु पक्षियों के अनुसरण पर अनेक नृत्य करते हैं। इनम मयूर नृत्य, हिरण नृत्य, कोयल नृत्य आदि मुख्य हैं। विवाह के अवसर पर ये लोग पत्ता नृत्य करते हैं। इस नृत्य म नाचने वाली युवतियाँ शरीर के निचले भाग म पत्ते बाँध लेती हैं। फिर परस्पर कमर मे हाथ डाल कर अर्द्ध वृत्त बना लेती है। इनके वृत्त के सामने नवयुवक खडे होकर ढफ बजाते हैं और नृत्य प्रारम्भ हो जाता है।

छाउ नृत्य उडीसा के मयूरभंज जिले म पका जाति (उडीसा की क्षत्रिय जाति), निवास करती है। वह मुखौटे लगाकर छाउ नृत्य करती है। मयूर भंज का परम्परागत छाउ नृत्य बिहार के सरायकेला (एक भूतपूर्व देशी राज्य की राजधानी) के छाउ नृत्य से विभिन्न प्रकार का है। यह पका जाति का युद्ध नृत्य है।

जादुर नृत्य मयूरभंज जिले की एक अन्य भोमिया जाति एक बडा ही मनमोहक नृत्य करती है जो जादुर नृत्य कहलाता है। गाँव के समीप पहाडी पर आयोजित इस नृत्य मे ग्रामवासी एकत्र होकर चावलों से निर्मित

मदिरा का पान करते हैं, किन्तु इससे पूव ये मदिरा को देवताओं को चढाने के निमित्त धरती पर उँडेल देते हैं।

इन नृत्यो के अतिरिक्त कोन्ड, मुरिया और सावरा जाति के भी अपन अलग लोकनत्य हैं, जो विशेष पर्वों एव उत्सवो पर किये जात हैं।

राजस्थान

वीर भूमि राजस्थान भी लोक नृत्या की दृष्टि से पूर्णतया समृद्ध है। गुजरात के गरबा की भाँति यहाँ के घूमर और झूमर नत्य जनसाधारण म अत्यन्त लोकप्रिय है।

घूमर नृत्य राजस्थान म घूमर नत्य का जन्म छठी शताब्दी म हुआ था। इस नृत्य में राजस्थानी युवतियाँ गोल वृत्ताकार खडी हो जाती हैं और घूमती हुई वाद्य यत्रो की लय व ताल के अनुसार नृत्य करती है। राजस्थानी स्त्रियाँ घाघरा पहनकर जो यहाँ का राष्ट्रीय पहनावा है, नत्य करती है। तेज गति स नृत्य करत समय घाघरा वृत्ताकार फलकर पुन सिकुडता है इसे ही घूमर कहा जाता है। इसी से इस लोक नत्य का नाम घूमर पडा है। राजस्थान म प्राय सभी भागा म यह लोकनृत्य बडा ही लोकप्रिय है। यह शृंगार प्रधान नत्य है।

झूमर नृत्य राजस्थानी नृत्य विशषज्ञा की मान्यता है कि 'झूमर' नृत्य का उद्भव और विकास पाचवी शताब्दी म हुआ था। इस नृत्य की दो शलिया हैं। प्रथम शली वह ह कि जिसम एक युवक और एक युवती एक साथ नत्य करत हैं। प्राय देव पूजन के समय यह नत्य किया जाता है। इस नृत्य म भुजा पर धातु अथवा पुष्प का झूमरा बाध कर नृत्य करन स सम्भवत इसका नाम झूमर नत्य पडा ह। इस नत्य की दूसरी शैली म एक युवती अकेली ही नृत्य करती है। उसके थक जान पर दूसरी युवती उसका स्थान ले लेती है।

भील नृत्य दक्षिणी पूर्वी राजस्थान के पवतीय अचल के आदिवासी भीला के नत्या म दीपावली का नत्य विशेष आकषक होता है। इस नत्य म स्त्री पुरुष दाना भाग लेते है नाचत समय य लोग डफ (चग) खूब जोर स बजाते है।

भवानी नृत्य राजस्थान के अनेक नगरो म विशेषत मेवाड और मारवाड म दशहरा आदि के अवसर पर आज भी राजपूत बाहुल्य बस्तियो मे इस लोक नृत्य का आयोजन किया जाता है। इस नृत्य मे पुरुष केसरिया रग की अचक्न, पायजामा, साफा या पगडी पहनकर नत्य करते है। महिलायें लहगा, केसरिया, लहरिया और आधी बाँह की चोली पहनकर पुरुषो के साथ गोल वृत्त मे नत्य करती है। पुरुष नतको के हाथो म तलवारें चमकती रहती हैं। यह नृत्य जगदम्बा भवानी की मूर्ति के सम्मुख किया जाता है। केसरिया परिधान पहनकर की जाने वाली भवानी के पूजन म मध्ययुगीन राजपूतो शौय का वह दृश्य प्रदर्शित किया जाता ह जबकि युद्ध क्षेत्र म जाते हुए राजपूत योद्धा तथा उनकी प्रेरणा स्रोत राजपूत रमणियाँ केसरिया वस्त्र पहनकर माँ भवानी की पूजा करती थी।

गुजरात

सम्पूण भारत म गुजरात के लोकनृत्य बडे ही कामल प्रकृति के और समृद्ध हैं। यहाँ के सवप्रिय लोकनृत्य गरबा, गरबी और रास है।

गरबा नृत्य यह लोकप्रिय नत्य मुख्यत नवरात्र तथा विशेष पर्वो पर किया जाता है। नवरात्र के दिना म सारा गुजरात गरबा मे गायी गई मा दुगा की इन स्तुति पक्तिया मे गूँज उठता है

"रगे रमे रे, रगे रम।
आज नव दुर्गा रगे रम॥'

गरबा एक छोटा सा मिट्टी का पात्र होता है। जिसके अन्दर एक दीप जला कर रखा जाता ह। प्रत्यक घर म एक गरबा हाता ह। सध्या को मुहल्ले की सारी लडकियाँ अपना अपना गरबा मिर पर रखे सामूहिक रूप म नृत्य करते हुये घर घर घूमती हैं। वहा गृह स्वामिनिया द्वारा उनका स्वागत किया जाता ह। इन दिनो गुजराती महिलाएँ रात्रि म शीघ्रता से गृह काय से निवृत्त होकर पडास के नत्य मण्डप म एकत्र हो जाती हैं। वहाँ अम्बा माता की पूजा करके हाथ की ताल पर व नृत्य प्रारम्भ कर देती हैं। कुछ स्त्रिया गीत गाती हैं अन्य स्त्रियाँ वृत्ताकार पूजा नत्य करते हुए गीत को दोहराती हैं। हारमानियम और ढोलक की धुन के साथ लय और ताल की गति के अनुसार नृत्य अद्ध रात्रि के बाद तक चलता रहता है।

गरबो नृत्य पुरुषों द्वारा किया गया नृत्य गरबो कहलाता है। यह नृत्य विभिन्न उत्सवों पर किया जाता है। गरबो नृत्य के साथ गरबा गीत भी चलते हैं, जिनमें प्रायः अम्बा माता की महिमा का बखान होता है।

रास (डाडिया रास) नृत्य गुजरात की गुजर जाति के इस रास नृत्य में भगवान कृष्ण की रसस्निग्ध लीला माधुर्य के दर्शन होते हैं। जन्माष्टमी, नवरात्र और पूर्णिमा को इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। कोई एक व्यक्ति कृष्ण रूप में मध्य खड़ा होता है उसके चारों ओर गोल घेरे में स्त्री पुरुष हाथों में डाडिया लेकर उन्हें परस्पर बजाते हुए नृत्य करते हैं। गुजरात के ग्राम ग्राम और नगर नगर में गूजर और गूजरिया के यौवन के गदराते अंगों से फूटती हुई रास गरबा की मधुर छवि तथा भोले मुख से निसृत मधुर रागिनी जनमानस को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। शरद पूर्णिमा एवं नवरात्र की उजली मदमाती चांदनी रातों में होने वाले इस रास नृत्य में ताल की तरंगों पर मचल मचल कर झूमती नाचती गाती गूजरी सुन्दरियों के कमनीय केश सौष्ठव में बसन्त का अनूठा मादक सौन्दर्य उभरता रहता है।

टिपनी (कुटना) नृत्य गुजरात (सौराष्ट्र) का यह लोकनृत्य भवन निर्माण में रत श्रमिक स्त्रियों का प्रिय नृत्य है। सोमनाथ के निकट चोरवाड की कोली स्त्रियां टिपनी नृत्य करने में बहुत कुशल होती हैं। मकान की छत कूटते समय अथवा फर्श पर चूना बिछाते समय रंगीन लहंगा, ओढ़नी व सफेद ब्लाउज धारण किए हुए श्रमिक स्त्रियां हाथ में कुटना लेकर लय व ताल के साथ सामूहिक नृत्य करते हुए कुटाई करती हैं। उस समय ढोल बजता रहता है तथा शहनाई का स्वर गूँजता रहता है। उक्त अवसर पर वे कृष्णलीला सम्बन्धी गीत गाती हैं।

झकोलिया नृत्य गुजरात में समुद्र के किनारे रहने वाली पढार जाति के मछुवाहा तथा कोलियों में यह नृत्य बहुत लोकप्रिय है। इस नृत्य में ये लोग एक गोल घेरे में बैठकर मंजीर की ताल पर गाते हैं और उसी समय आश्चर्यजनक ढंग से शारीरिक नृत्य मुद्रायें प्रदर्शित करते हैं। सागर

की लहराती हुई लहरों के समान उनके सुगठित शरीर भी अपनी सुडौल धरा पर गुजरात की उस रसमयी धरती पर थिरकते रहते है।

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश की धरती पर अनेक लोकनत्यो का जन्म हुआ। उनमे बेगा जाति का बिलमा नृत्य अधिक लोकप्रिय है।

बिलमा नृत्य मध्यप्रदेश मे स्थित मकान पवत के ढाल मे घने जगलो मे बेगा नामक आदिवासी जाति निवास करती है। इसका मुख्य लोकनृत्य 'बिलमा' है। यह शीत ऋतु म किया जाने वाला मुख्य नृत्य है। बिलमा का शब्दार्थ मिलन या सगम है। इस नृत्य म युवक और युवतियाँ बराबर से भाग लेते है। इस नत्य की यह विशेषता है कि इसमे एक गाँव की युवतियाँ दूसरे गाँव के युवको के साथ नृत्य करती हैं। इस प्रकार इस नत्य का बिलमा नाम सार्थक सिद्ध होता है।

नृत्य के समय बेगा स्त्रियाँ फूलो और आभूषणों से अपने को सजाती हैं बालो मे मोरपख लगाती हैं। ये घुटनो तक की साडी पहनती है। इनका साडी बाँधने का ढग आकर्षक है। साडी के ऊपर एक रगीन ओढनी और होती है। बेगा पुरुष लहगा पहनता है। जिसे पीछे मे कस देता है। इसके ऊपर वह अगरखा पहनता है, जिस पर मोरपख लगा होता है। वाद्ययन्त्रो म ढोलक, बाँसुरी, मादल और टिमकी मुख्य रूप से बजाये जाते है। नवम्बर से जनवरी तक बेगा गावो मे नित्य प्रति सगीत की मधुर स्वर लहरियो पर बिलमा नृत्य चलता रहता है।

माडिया नत्य मध्यप्रदेश मे बस्तर जिले की माडिया जाति मे यह नत्य अधिक लोकप्रिय है। दीपावली के आस पास यह नृत्य किया जाता है। गठे हुए सुडौल शरीर और तपे हुए ताँबे के से दहकते रग की माडिया युवतिया मूँगे और पीतल के बहु आभूषण पहनकर जब ढोल की धुन पर नृत्य करती हैं तो सिर पर सीगो वाली टोपी लगाये हुये पुरुष नतको का उत्साह दूना हो जाता है। एक विदेशी महिला ने बस्तर की माडिया स्त्रियो को देखकर लिखा था—"फ्रास के फैशन विशेषज्ञो का माडलो का चुनाव करने के लिये माडिया युवतियो से बढकर गठा हुआ सुन्दर शरीर और कही नही मिलेगा।" नत्य के

समय स्त्रियाँ एक हाथ म लाठी लिये रहती है और एक हाथ अपनी सखी की कमर म होता है। पुरुषो के हाथा म ढोलकें होती हैं।

मद्रा नृत्य क्वार के महीने मे वस्तर के मद्रा जाति के लोग एक नयी पुलक से भर जाते हैं। इस समय वे अपने रंग बिरंगे वस्त्र निकालकर पहन लेते हैं। पुरुष नर्तक परो मे घुँघरू बाधे मेढक की भाँति फुदक फुदक कर अपना पारम्परिक नृत्य करते हुये तथा मुख पर पशुओं की मुखाकृति के आकर्षक मुखौटे लगाये खुशी खुशी दशहरे का त्यौहार मनाने जगदलपुर पहुँचते हैं।

पनिहारी नृत्य मध्यप्रदेश के ग्रामीण अचलो की नारियो का यह काफी लोकप्रिय नृत्य है। यह नृत्य चाँदनी रात मे किया जाता है। इस नृत्य म पनिहारियो का कुएँ से जल खींचने का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। अपने कोमल शरीर की भावपूर्ण मुद्राओं से वे ऐसा भाव प्रदर्शित करती हैं कि माना रस्सी कमजोर है। कहीं बीच मे से ही टूट न जाए अत वे डरती डरती सी जल भरती हैं।

महाराष्ट्र

जोहो नृत्य सतपुडा पवत के जगली क्षेत्र म निवास करने वाली भिलाल जाति का जोहा नृत्य बड़ा आकर्षक होता है। इसमे मुख्य नर्तकी अपने सिर पर एक मटके म दीपक रखकर नृत्य करती है। इस नृत्य म नर्तकी के अग सचालन और देह सौष्ठव का प्रदर्शन आकर्षण की वस्तु है। अन्य नर्तकियां मुख्य नर्तकी को चारो ओर से घेर कर नाचती हैं।

मैसूर

कुनीता पूजा नृत्य यह लोकनृत्य मैसूर राज्य मे बहुत प्रसिद्ध है। मारम्मा देवी के पूजन और आराधना के समय इसका आयोजन किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि देवी पूजन और नृत्य से प्रसन्न होकर लोगो के जीवन मे सुख समृद्धि की वृद्धि करती है। इस नृत्य म कुछ भक्त अपने सिर पर मारम्मा देवी की मूर्ति रखकर नाचते हैं। देवी की मूर्ति रंग बिरंगे वस्त्रो एव आभूषणो से सजी होती है। उक्त अवसर पर कुछ नाचने वाले अपने हाथों म

रगीन कपडो से मढा हुआ 15-16 फीट लम्बा डण्डा लेकर, जिसके सिर पर धातु की छतरी सी बनी होती है, नाचते हैं, जब तक नृत्य चलता रहता है उस समय तक ढोल, नगाडे व हाथ की तालिया बजती रहती है। नाचने वाले लोग लाल रग की धोती आधी बाँह का सफेद अगरखा और सिर पर सफेद पगडी पहने रहते हैं।

केरल

इस प्रदेश मे ओएाम के अवसर पर सारे राज्य में खूब उत्सव मनाया जाता है। नौका दौड आदि खेलो के आयोजन के साथ लोग ग्रामीण अचलो मे अपने-अपने सामूहिक नृत्यो मे अपने आपको खो देते हैं। वसे इधर कुची-पुडी, जसे शास्त्रीय नत्य का अधिक प्रचलन है।

आन्ध्र

लम्बाडी नृत्य आन्ध्र राज्य म हैदराबाद नगर के आस पास के ग्रामो म पत्थर की खानो मे काम करने वाली लम्बाडी जाति निवास करती है। इसमे औरतें काय से अवकाश मिलने पर मन म उमग भरे उन्मुक्त वातावरण मे चपल पाँवो की थिरकन पर आत्म विभोर हो नत्य करती है। यह लोकनृत्य लम्बाडी नृत्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर य औरतें काँच के टुकडे टकी हुई रगीन ओढनी घाघरे और चोली पहनती हैं तथा शरीर पर कलात्मक एव आकषक आभूषण धारण करती हैं।

तमिलनाडु

कुरवशी नृत्य अलगर कुरवशी नत्य तमिलनाडु राज्य का धार्मिक लोक नत्य है। इस नृत्य मे सगीत भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लोकनृत्य एक प्रकार की नत्य नाटिका है। कुरवशी नृत्य का कथानक कुर्थी नामक एक महिला पात्र के माध्यम स आगे बढता है। कुर्थी यायावर जाति की महिला है, जो हस्तरेखा विशेषज्ञ है। वह नत्य की नायिका का हाथ देखकर उसका भविष्य बताती है।

इसी कथानक के आधार पर विभिन्न भावपूर्ण मुद्राओ म यह नत्य चलता है। नायिका की 6 से 8 तक सखियाँ होती हैं। वे भी नृत्य म भाग

लेती हैं। वे उसके सौंदय की भावभीनी प्रशंसा करते हुए कंदुक क्रीडा का मनमोहक दृश्य दर्शकों के सामने प्रस्तुत करती हैं। पैरों से बजते हुए घुंघरू दर्शकों को कल्पना लोक में पहुँचा देते हैं। नृत्य करने वाली युवतियाँ इस अवसर पर भड़कीली साड़ियाँ, चोलियाँ और आभूषणों से सज्जित होकर नृत्य करती हैं।

लोक नृत्यों की परम्परा अन्य किसी देश में इतनी समृद्ध और मोहक नहीं मिलेगी। यद्यपि लोक नृत्य स्थानीय जातियों की वेशभूषा में विभिन्नता प्रगट करते हैं तथापि जनोल्लास के साथ साथ नृत्य की विशेषताएँ—थाप, ताल, ताड़े, परण तथा वाद्यों की समानता से भारत की भावात्मक एकता का उद्घोष करते हैं। लोक नृत्यों की भावभूमि भी सभी प्रदेशों में समान है—पर्वों पर उल्लास, ऋतुओं का स्वागत, नई फसल का उत्साह, यौवन की श्रृंगारिकता अथवा कृष्ण की लीलाएँ। भारतीय संस्कृति लोक नृत्यों में इन कथानकों के माध्यम से भावनात्मक एकता के स्वरों में मुखरित है।



वर्तमान के संदर्भ में

२१ भारत की सुरक्षा के सजग प्रहरी

२२ नव निर्माण की परिकल्पना मे हमारी एकता

भारत की सुरक्षा के सजग प्रहरी

गायन्ति देवा किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते,
भवन्ति भूय पुरुषा पुरत्वात् ॥
(विष्णु पुराण 2/3/24)

"देवगण उस पुण्यमयी भारत भूमि का गान करते हैं जो स्वर्ग और मुक्ति को देने वाली है। उनका कथन है कि उसमे (भारत मे) जन्म लेने वाले भारतीय हमारी अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।' विष्णु पुराणकार ने इन शब्दों मे भारत का गौरवमय अतीत निहित है। हमारी पावन धरा पर शत्रुतावश चीन और पाकिस्तान जैसे निकटतम पडोसी राष्ट्रो ने सन् 1948, 1962 और 1965 मे आक्रमण किया था और दिसम्बर 1971 मे बगला देश के अभ्युदय के सदर्भ मे पाकिस्तान पुन भारत पर आक्रमण कर चुका है जिसमे उसने मुँह की खाई है। उस सकट काल मे हमारे देश के जवानो ने शत्रु को मुँहतोड उत्तर दिया था।

आज सम्पूर्ण भारत जाग्रत है। उसे अपने पूर्व औदार्य, शालीनता और शौर्य परम्पराओ पर गर्व है, जिन्होने सदैव विपत्तिग्रस्त राष्ट्र की रक्षा मे अपने उन्नत मानदण्ड स्थापित किये हैं।

विदेशी आक्रमण के समय "वयम् पचाधिकम शतम"—अर्थात हम पाच और सौ मिला कर एक सौ पाँच हैं—का उद्घोष करने वाले महाराज युधिष्ठिर की राष्ट्रीय भावना भारत मे पल्लवित रही है। भारतीय कूटनीति के जनक तथा सुदृढ राष्ट्रीयता के अमर प्रतीक योगेश्वर श्री कृष्ण तो भारत

के सर्वोत्कृष्ट सजग प्रहरी थे । उन्होंने महाभारत–युद्ध के माध्यम से तत्कालीन विखण्डित भारत को सगठित कर भविष्य मे ढाई हजार वर्ष तक उसे सुरक्षित रखने तथा विश्व शांति बनाये रखने मे महत् योगदान दिया । इस घटना से भी सहस्रो वर्ष पूर्व अयोध्या के युवराज राम ने अपनी साध्वी पत्नी सीता के अपहरण के प्रसग मे बिना किसी जाति भेद के विंध्याचल के दक्षिण मे निवास करने वाली ऋक्ष और वानर जातियो से स्नेह सूत्र जोड कर लका नरेश रावण द्वारा प्रेषित राक्षस घुसपठियो से पूरे दक्षिण भारत को सुरक्षित किया था । 'महाभारत' के ढाई हजार वर्ष बाद भारतीय कूटनीति के मुकुट मणि महामति आचार्य चाणक्य के पथ प्रदर्शन मे सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत को पुन एक सगठित राष्ट्र का रूप प्रदान किया और राष्ट्र रक्षा हेतु विशाल वाहिनी की सरचना की । उनके विश्वविख्यात पौत्र सम्राट अशोक ने तो भारत की सुरक्षा की इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक रीति ग्रहण की कि उनके जीते जी विश्व के दुर्दान्त शत्रुओ ने भारत की ओर आँख उठा कर देखने तक का साहस नही किया ।

देवानाप्रिय सम्राट अशोक ने भारत के सीमान्त प्रदेशो मे महत्वपूर्ण राजमार्गों पर जो शिलास्तम्भ स्थापित करवाये थे, उन पर विदेशी आक्रमणो के लिये यह चेतावनी अकित करादी थी—" प्रियदर्शी ने तलवार फेंक कर धर्म मार्ग का अनुसरण किया है, किन्तु यदि किसी भी शक्ति ने मेरी प्रजा को उत्पीडित करने का प्रयत्न किया तो वह फिर अपनी कलिंग वाली तलवार उठा लेगा" । उनके बाद शुग सम्राट पुष्यमित्र गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त मुस्लिम युग के शासक सम्राट अकबर, मराठा साम्राज्य के सस्थापक छत्रपति शिवाजी इसी प्रकार के महान् शासक और सैनिक योद्धा थे, जो बिना किसी धर्म जाति और क्षेत्रीय भेदभाव के भारत को सदैव राष्ट्रीयता के सूत्र मे बाँध कर बाह्य आक्रमणो से सुरक्षित रखते हुए उसे सबल और समुन्नत बनाने मे तत्पर रहे ।

प्राचीनकाल से ही भारत पर शक, हूण तुर्क और मगोल आदि विदेशी आक्रमण करते रहे हैं । भारत के जवानो ने इन आक्रमणो का सदा बडी बहादुरी से सामना किया, किन्तु फिर भी हमारा देश स्थायी रूप से

सुरक्षित न हो सका। इस प्रसंग में दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रो० सुभाषचन्द्र ने व्यवहारिक दृष्टिकोण से उचित ही लिखा है—"विदेशियों को बार बार भारत में घुसने का साहस इसीलिये होता रहा क्योंकि भारत की नीति कभी भी आक्रामक नहीं बस प्रतिरक्षात्मक थी। हम यही सोचते रहे कि दुश्मन का मुकाबला कैसे करें, हमने कभी आगे बढ़कर दुश्मन पर वार नहीं किया। इसलिये दुश्मन साहसी होता चला गया"। हम इस बात का दुःख है कि हमारी नीति प्रतिरक्षात्मक है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की उदात्त भावना से ओत प्रोत हम भारतीयों के लिये उक्त नीति तो सर्वथा उपयुक्त है, किन्तु हम अपने देश की रक्षा के लिये सदैव शक्तिशाली व सतर्क रहना चाहिये और हम सतर्क हैं भी। हमारे थल सेनाध्यक्ष जनरल मानकशा ने आत्म विश्वास के साथ एक घोषणा की थी, जो कुछ समय उपरान्त ही सत्य की कसौटी पर पूर्णतः खरी उतरी है। —"भारत की ओर आंख उठा कर देखने वाले शत्रु की ऐसी कमर तोड़ दी जायगी कि 20 वर्ष तक अपने पैरों पर खड़ा न हो सकेगा।'

वस्तुतः हमारी सेना के जवान राष्ट्रीयता तथा धर्म निरपेक्ष के जीते जागते प्रमाण हैं। उनकी शक्ति अजेय है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के मतानुसार—"भारतीय सेना संसार की सर्वश्रेष्ठ सेनाओं में से एक है। हमारे विरोधी उससे डरते हैं तथा उसका सम्मान करते हैं और हमारे मित्र उसके बड़े प्रशंसक हैं।' देश की स्वतन्त्रता, सुरक्षा तथा अखण्डता बनाये रखने के लिये ये वीर योद्धा ही हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं। राष्ट्र के इस कठिन सक्रांति काल में यदि हमने इनका पुण्य स्मरण नहीं किया तो अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के शब्दों में हमारे पास केवल हाथ मलना ही शेष रह जायगा—

> "मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या ?
> दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या ?

यहाँ हम महादेवी वर्मा के उस कथन को नहीं भूल सकते जो उन्होंने चीनी आक्रमण के समय भारतीय वीरों और जनता के सुदृढ़ मनोबल को देखते हुए कहा था—"हमारे राष्ट्र के उन्नत शुभ्र मस्तक हिमालय पर जब

संघर्ष की नील लोहित आग्नेय घटाएँ छा गईं, तब देश के चेतना केन्द्र ने आसन्न संकट की तीव्रानुभूति देश के कोने कोने में पहुँचा दी। इतिहास ने अनेक बार प्रमाणित किया कि जो मानव समूह अपनी धरती से जिस सीमा तक तादात्म्य कर सका है, वह उसी सीमा तक अपनी धरती पर अपराजेय रहा है।"

अपनी मातृभूमि के प्रति एक समान गहरी निष्ठा और प्रगाढ़ श्रद्धा की गहरी अभिव्यक्ति करते हुए राष्ट्र रक्षा में सन्नद्ध सजग प्रहरी के रूप में स्वतन्त्र भारत के रण-बाँकुरों ने देश पर समय समय पर छा जाने वाली संकट की घड़ियों में भारतीय जनता के अनुपम सहयोग से जिस पूर्व रण-कौशल, अदम्य साहस तथा अपराजेय मनोबल का परिचय देकर सम्पूर्ण संसार को स्तब्ध किया है, ऐसे अद्वितीय उदाहरण विश्व इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

स्वतन्त्र भारत की रक्षा-व्यवस्था में अनुपम सहयोग और विशिष्ट पथ प्रदर्शन करने वाले भारत के महान सेनाध्यक्षों तथा मन में मातृभूमि की रक्षा की उद्दाम लालसा लिये हुए रण क्षेत्र में शत्रु से जूझने वाले बाँके वीर जवानों के प्रेरणास्पद चरित्रों को अंकित करना तो विशद प्रसंग है तथापि कुछ विशिष्ट पुण्यश्लोक योद्धाओं के पुनीत नाम स्मरण का इस लेख में प्रयास किया गया है। ऐसे ही देश भक्त वीरों के चरणों में अपने श्रद्धा के सुमन अर्पित किये हैं राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने—

> तुमने दिया राष्ट्र को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा ?
> अपनी आग तेज रखने को नाम तुम्हारा लेगा ।।'

भारत के प्रधान थल सेनाध्यक्षों में जनरल करियप्पा, जनरल राजेन्द्र सिंह जी, जनरल श्रीनागेश जनरल थिमैया, जनरल थापर जनरल जयन्तनाथ चौधरी, जनरल कुमार मंगलम्, जनरल मानेकशा आदि के इस महत्वपूर्ण पद का दायित्व सँभालना यह उद्घाटित करता है कि भारत प्रादेशिक संकीर्णता से हटकर एक विशाल और संगठित देश है। इसी प्रकार वायु सेनाध्यक्ष एयर मार्शल सुब्रत मुखर्जी अस्वीमखान इंजीनियर, अर्जुनसिंह पी सी लाल आदि तथा नौसेनाध्यक्ष रामदास कटारी, भास्कर सदाशिव सामण, अधर-

कुमार चटर्जी, एडमिरल सरदारी लाल नन्दा आदि की राष्ट्र निष्ठा एव देश की सुरक्षा के लिए सजगता प्रगट करते हैं कि सम्पूर्ण भारत एकता के सूत्र म अनेक प्रदेशो की सीमाओ और आचलिक विशेषताओ को समेटे हुए है। इन अदम्य साहसी वीरो ने भारत पर बाह्य आक्रमण के समय जिस धय, कुशल मन्य सचालन और साहस का परिचय दिया उसके उपलक्ष मे इन्हे पद्म विभूषण के अलकरण तथा 'अति विशिष्ट' और 'परम विशिष्ट' सेवा पदको से सम्मानित किया गया।

राष्ट्र के प्रति निष्ठा सेनाध्यक्षो तक ही सीमित नही है। सेना का प्रत्यक जवान 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना से ओत-प्रोत रहता है। उनमे अपने जन्म स्थान के प्रदेश, धार्मिक विश्वास जाति अथवा भाषा के प्रति लगाव होते हुए भी राष्ट्रीय आस्था प्रबल होती है और यही ललक रहती है कि—

"तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित।

चाहता हूँ देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ॥

सना का जवान न हिन्दू है, न सिक्ख है न मुसलमान है, न पारसी है, न जन है न अहीर है, न राजपूत है न मराठा है न तमिल है, न बगाली है—वह ता भारतीय है–शुद्ध भारतीय जसे आग म तपा हुआ सौ टच सोना। मरणोपरान्त 'परमवीर चक्र प्राप्त हवलदार मेजर पीरूसिंह शेखावत, 'महा-वीर चक्र प्राप्त ब्रिगडियर मुहम्मद उस्मान मरणोपरान्त 'परमवीरचक्र' प्राप्त मेजर सोमनाथ शमा, परमवीरचक्र प्राप्त रामाराघव राने और लासनायक करमसिंह, मरणोपरान्त 'परमवीर चक्र प्राप्त नायक जदुनाथ सिंह और सूबेदार जोगिन्दरसिंह, 'परमवीरचक्र स सम्मानित मेजर तनसिंह थापा, मेजर शतान सिंह (मरणोपरान्त) ब्रिगडियर होशियार सिंह (मरणोपरान्त) की साहसिक गाथाएँ काश्मीर युद्ध और चीनी आक्रमण के इतिहास म अमर रहगी। इसी प्रकार भारत पाक युद्ध के अमर बलिदानी हवलदार अब्दुल हमीद, ले कनल ए बी तारापोर (मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्राप्त) मेजर रणजीत सिंह (महावीर चक्र प्राप्त), कप्तान महेन्द्रनाथ मुल्ला और

उनके सहयोगी, लास नायक एल्बर्ट एक्का (परमवीर चक्र प्राप्त) आदि अनेक वीरों के नाम उल्लेखनीय हैं जिनका बलिदान राष्ट्र की धमनियों में एकता और अखण्डता का शाश्वत स्वर गुंजरित कर रहा है।

भारत की सुरक्षा के ये सजग प्रहरी और इनके बलिदानी आदर्शों को सजोए भारतीय सेना के लाखों वीर अपने हर कदम की ताल में उद्घोषित कर रहे हैं कि 'भारत' केवल तमिलनाडु, मैसूर, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब या गुजरात की प्रादेशिक भावना में नहीं है वरन् काश्मीर से कन्या कुमारी और कामरूप से कच्छ की खाड़ी तक एक विस्तृत भू भाग की अखण्ड एकता प्रदर्शित कर रही है।



नव निर्माण की परिकल्पना मे हमारी एकता

(अ) नदी घाटी योजनाएँ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश म राजनतिक एकता का सूत्रपात हुआ। सम्पूर्ण देश के लिये एक सविधान बना और लागू हुआ। स्वतन्त्र भारत अब प्रभुत्व सत्ता सम्पन्न लोक तन्त्रात्मक गणराज्य बन गया। 26 जनवरी 1950 का इस उप महाद्वीप का एक स्वरूप, एक सविधान और एकतन्त्र सामने आया। सम्पूर्ण देश के लोगो का जीवन स्तर उठान तथा उन्ह समृद्ध एव अधिक विविधता पूर्ण जीवन के नय नये अवसर प्रदान करन के उद्देश्य से देश ने सुनियोजित विकास की प्रणाली अपनायी। देश के निर्माण उसके नागरिको के अच्छे जीवन की उपलब्धि, राष्ट्रीय आय की अभिवृद्धि के निय त्रमिक पचवर्षीय योजनाओ म देश के विकास की पृष्ठभूमि विचाराधीन है। इसम सदेह नही कि देश मे भौतिक विकास हुआ है। छोटी बडी नदी घाटी योजनायें, लघु एव बृहद् उद्योग इस देश के समुचित विकास के लिये वरदान रूप सिद्ध हुये है। इन व्यापक उपलब्धियो और सभावनाओ मे एक और भावना मिलती है जिसे हम भुला बठे है। वह है विकास योजनाओ म निहित 'राष्ट्रीय भावात्मक एकता की भावना।

हमार देश की परम्परा सदा से 'भावात्मक एकता' प्रधान रही है। हमारा दशन त्रिकालदर्शी रहा है। देश की भावना प्रधान सस्कृति ने स्वदेश के कण कण म सदा से राष्ट्रीय एकता का स्वर फूंका है। राष्ट्र म चल रहे विकास कार्यों के अन्तर म छिपे हुये 'राष्ट्रीय भावात्मक एकता' के अमूर्त भावो का सम्यक उद्घाटन कर देश का अनवय और पाथक्य के सकुचित

दायरे से निकालना आज प्रत्यक नागरिक का परम कर्तव्य है। देश में आर्थिक शान्ति और भौतिक विकास के साथ साथ वैचारिक क्रांति की आज सर्वोपरि आवश्यकता है। यहा हम देश की कतिपय विकास योजनाओं म निहित राष्ट्रीय भावात्मक एकता के तत्वा की जानकारी प्राप्त करेंगे।

देश की नदी घाटी बहूद्देशोय योजनाओं मे निहित राष्ट्रीय एकता

भारत मे अनक नदियाँ है। इनम अपार जल प्रवाहित होता है। इस जल का समुचित उपयोग करने के लिय अनेक नदी घाटी योजनायें बनाई गयी हैं। भारत की नदियाँ जहा राष्ट्र की आर्थिक प्रगति मे योगदान करती हैं, वही राष्ट्रीय एकता की प्रतीक भी हैं। वदिक मन्त्रो और भारत के धार्मिक ग्रन्था से ऐसे उल्लख सग्रहीत किये जा सकत है जिनम उत्तर भारत की महा वाही नदिया का दक्षिण भारत की अल्पवाही नदिया म मिला कर देश को हरा भरा बनाने की याजना है। साधारण भारतीय प्रात काल उठत ही उत्तर और दक्षिण भारत की प्रमुख नदिया का नाम लेना शुभ मानत हैं। भूगर्भशास्त्रिया की मान्यता है कि नदी तल के नीचे भी नदी का जल व्याप्त होता है। नदी अपहरण क्रिया के द्वारा एक नदी का जल दूसरी नदी म और दूसरी से तीसरी नदी म पहुँचता है और यह क्रम सतत चलता है। देश म कूप खनन और नल और नल कूपो क माध्यम स हम किस नदी का आदि भौतिक जल किस कूप स पी रहे हा, यह नही जानते। मौसम और जलवायु वैज्ञानिको के अनुसार 'दक्षिणी पश्चिमी मानसून अरब सागर और बगाल की खाडी की जल भाप ल जाकर सम्पूर्ण भारत और उसकी नदिया को वर्षा का जल देता ह। वही लौटता हुआ उत्तरी पूर्वी मानसून सर्दी म मद्रास व आध्र प्रदेशा का आंशिक जल दता है। गर्मिया म हिमालय की बर्फ पिघल पिघल कर नदिया की घाटिया म बहती हुई उत्तर भारत की नदियां के जलाभाव की पूर्ति करती है। देश की नदी घाटी योजनायें इसी जल पर आधारित हैं। देश के लगभग प्रत्यक राज्य म वहाँ की प्रमुख नदियां पर बांध बांध कर इन याजनाओं का कायरूप दिया है किन्तु इनम प्रमुख बहू उद्देशीय योजनाय हैं —

भाखड़ा नांगल योजना—यह पूर्वी पंजाब की एक महत्वपूर्ण योजना है। यह योजना 1946 में आरम्भ हुई थी और अब पूर्ण हो चुकी है। इस योजना के दो भाग हैं पहला भाखरा बाँध और दूसरा नांगल बाँध। दोनों बाँध सतलज नदी पर हैं। पहला रूपड़ से 80 किलोमीटर की दूरी पर भाखरा गाँव के निकट तंग घाटी पर बना, विश्व के सबसे ऊँचे बाँधों में से एक है। इस बाँध के पीछे सतलज का जल गोविन्द सागर झील में एकत्रित होता है। यहीं से कई नहरें निकाली गई हैं जिनकी लम्बाई तीन हजार किलोमीटर से अधिक है। इस बाँध की नहरों से पंजाब के अलावा हरियाणा व राजस्थान राज्यों के भागों को सींचा जाता है। सतलज नदी से रूपड़ नाम के स्थान से निकाली गयी सरहिंद नहर में जल की मात्रा इस बाँध के बनने से दस गुनी बढ़ गयी है, इससे इस नहर की कुल लम्बाई ६ हजार किलोमीटर से भी अधिक हो गयी है। इस बाँध के दोनों ओर दो शक्ति गृह हैं, जो जल विद्युत उत्पन्न करते हैं। भाखड़ा बाँध से 12 कि० मी० नीचे इसी नदी पर नांगल बाँध है जिससे हाइडेल नहर निकाल कर भाखरा नहर से मिलाई गयी है। इसी पर गंगूवाल और कोटला स्थानों के प्राकृतिक जल प्रपातों पर दो बिजलीघर बनाये गये हैं। इस योजना के चारों बिजली घर लगभग 10 लाख किलोवाट जल विद्युत उत्पन्न करते हैं। इनसे पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश व राजस्थान, व काश्मीर के अनेक नगरों व गाँवों को प्रकाश मिला है और इन राज्यों को अनेक सूती कपड़ा मिलों और वनस्पति घी आदि के अनेक छोटे बड़े कारखानों को शक्ति मिलने लगी है। इनमें उत्पन्न वस्तुओं का उपयोग देश के प्राय सभी राज्यों में होता है। इस प्रकार भाखड़ा नांगल योजना पंजाब में स्थित होते हुये भी सम्पूर्ण भारत को परोक्षापरोक्ष रूप से लाभान्वित करने वाली एक राष्ट्रीय योजना है।

दामोदर घाटी योजना—दामोदर नदी हुगली की सहायक नदी है। यह छोटा नागपुर के पठार से निकल कर 290 किलोमीटर बिहार में और 240 किलोमीटर पश्चिमी बंगाल में बहती है। प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़ों से जन धन की अपार क्षति पहुँचाने से इसको 'बंगाल का शोक' कहा जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1948 में इस पर कार्यारम्भ हुआ। इस

योजना का निर्माण संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रसिद्ध टनैसी घाटी योजना के अनुसार हुआ है। इस योजना में दामोदर और उसकी सहायक नदियों पर आठ भिन्न भिन्न स्थानों पर आठ बांध बनाये गये हैं। ये सब अब पूर्ण हो चुके हैं। इस योजना में एक सौ सत्तर करोड़ से अधिक राशि राष्ट्रीय कोष से व्यय हुई है।

इस योजना के दुर्गापुर सिंचाई बांध से करीब ढाई हजार किलोमीटर लम्बी नहरों से पश्चिम बंगाल के पांच जिलों में 5 लाख हैक्टेयर के लगभग भूमि सींची जाती है। इस योजना के पंच पहाड़ी, मैथान और तिलया तीन बांधों पर जल विद्युत शक्ति गृह और बोकारो, दुर्गापुर तथा चन्द्रपुरा में तीन ताप विद्युत गृह बनाये गये हैं। इनसे इस क्षेत्र की खानों, रेलों और कार खानों को चलाने के लिये विद्युत मिलती है। नहरों में नावें चलती हैं जो कोयला, लोहा, मैंगनीज, अभ्रक व अन्य खनिजों और इस क्षेत्र के चावल को अन्य राज्यों तक पहुँचाने में सहायक होती है। अन्ततागत्वा यह एक ऐसी राष्ट्रीय योजना है जो देश के उत्तरी दक्षिण और पूर्वी तथा पश्चिमी राज्यों के बीच आर्थिक संपर्क की कड़ियाँ जोड़ती है। व्यापक दृष्टिकोण से यह एक राष्ट्रीय गर्व और गौरव की योजना है। इस पर जितना गर्व बिहारी और बंगाली को है उतना ही गौरव उत्तर प्रदेश, असम मध्यप्रदेश, आंध्र प्रभृति राज्यों के नागरिकों का भी है क्योंकि यह भारत की आर्थिक समृद्धि की एक सशक्त प्रतीक है।

हीराकुड योजना—यह योजना उड़ीसा राज्य की है और राज्य में सबसे बड़ी है। यह योजना महानदी पर संबलपुर जिले में हीराकुड नामक स्थान पर संसार के सबसे लम्बे और बड़े बाँध के रूप में निर्मित है।। इस बाँध के नीचे दो और बाँध बनाये गए हैं। इनमें से एक पहला टिकरर बारा स्थान पर और दूसरा नराज स्थान पर। इन तीनों बाँधों में तीन नहरें निकाली गयी हैं। बाँधों के पास तीन विद्युत गृह भी बनाये गये हैं। नहरों से कृषि भूमि की सिंचाई होती है। महानदी के मुहाने से आगे सौ मील तक जलयान इस राज्य की पैदावार अन्य पड़ोसी राज्यों को पहुँचाते हैं। जिलों से राज्य के कारखानों में उत्पादन बढ़ा है, जो देश के अन्य भागों की

आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है। इनमें खनिज और चावल का उत्पादन प्रमुख है। इस योजना से उड़ीसा की आठ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई से हरित क्रान्ति और चार लाख किलोवाट विद्युत उत्पादन से अनेक उद्योग लाभान्वित और विकसित हुये हैं। इस योजना ने राष्ट्रीय विकास को गति दी है।

चम्बल घाटी योजना—यह योजना राजस्थान और मध्य प्रदेश की संयुक्त बहुमुखी योजना है। चम्बल नदी विंध्याचल पर्वत से निकल कर मध्य प्रदेश में बहती हुई राजस्थान में प्रवेश करती है। राजस्थान में बहकर यह उत्तर प्रदेश में यमुना नदी में मिल जाती है।

इस योजना के अन्तर्गत तीन बांध, तीन शक्तिगृह और एक अवरोधक बरेज का निर्माण सम्मिलित है। पहला बांध मध्य प्रदेश के मन्दसौर जिले में 'गांधी सागर बांध' के नाम से बना है। इसी के पास एक विद्युतगृह आठ लाख किलोवाट जल विद्युत पैदा करने लगा है। इस विद्युत से राजस्थान और मध्य प्रदेश राज्यों के जिले विद्युत प्रकाश से जगमगा उठे हैं। इस बांध से दो नहरें निकाली गयी हैं जो दोनों राज्यों की चौदह लाख एकड़ से अधिक भूमि सींचती है।

गांधी सागर से करीब तैंतीस मील आगे राजस्थान में इस नदी पर दूसरा बांध 'राणा प्रताप सागर' बनाया गया है। इससे भी नहरें निकाल कर करीब तीन लाख एकड़ से अधिक भूमि सींची जाने लगी है। इस बांध पर एक विद्युतगृह भी बनाया गया है जिसकी विद्युत उत्पादन क्षमता एक लाख किलोवाट के लगभग है। यहीं पर एक दो सौ मेगावाट (दो लाख किलोवाट) की शक्ति का एक अणुशक्ति केन्द्र भी बनाया गया है।

तीसरा बांध कोटा नगर से सोलह किलोमीटर दक्षिण में 'जवाहर सागर' नाम से है। यहीं एक विद्युतगृह भी है जो इक्सठ हजार किलोवाट विद्युत की क्षमता वाला है।

नगर के समीप ही इसी नदी पर कोटा बरेज एक अवरोधक बांध बनाया गया है जो उपरोक्त तीनों बांधों का जल रोकता है। यह बांध 600 मीटर लम्बा है। इससे दो नहरें दायीं और बायीं निकाली गयी है, जो

राजस्थान और मध्य प्रदेश की साढे छ लाख हेक्टयर भूमि सींचती है। इससे राजस्थान की उन्नीस और मध्यप्रदेश की बारह तहसीलो मे सिंचाई का प्रावधान है।

इस प्रकार यह भी राष्ट्रीय स्तर की योजना है। इसकी विद्युत से दोनो राज्यो मे बडे–बडे उद्योगो जसे सूती वस्त्र, सीमेट, उवरक, चीनी, छोटे पुर्जे आदि के उद्योगो को सस्ती विद्युत मिलने लगी है। इससे देश की कुछ आवश्यक वस्तुओ की माँग पूरी हुई है।

कोसी योजना—कोसी नदी हिमालय से निकल कर नेपाल से बहती हुई, भारत के बिहार राज्य मे प्रवेश करती है। इस पर दो बाध बनाये गये हैं, जिन मे से एक अपने पडोसी देश नेपाल मे है। यही एक जल विद्युतगृह भी बनाया गया है। दूसरा बाध बिहार राज्य मे इस नदी पर है जिससे दो नहरें निकाली गयी है और एक जल विद्युत गृह भी बन रहा है। बिहार राज्य मे जल यातायात, विद्युत और सिंचाई की दृष्टि से यह देश की महत्व पूर्ण योजना है।

तुगभद्रा योजना (दक्षिण भारत)—तुगभद्रा मसूर एव आंध्र राज्या की विशाल नदी घाटी योजना है। इस योजना के अनुसार तुगभद्रा नदी पर मल्लमपुर स्थान पर एक बाध बनाया गया है। इस बाँध से तीन नहरें निकाली गयी हैं, जो मसूर और आध्र प्रदेशो की लगभग एक लाख हेक्टर भूमि सींचती है। बाध के निकट एक शक्तिगृह बनाया गया है, जो दोनो राज्यो को विद्युत देकर वहा कपडे, चीनी, सीमट लोहा और कागज के कारखानो के सचालन मे योग देता है। इन कारखानो म बनी वस्तुयें देश के अन्य राज्या के उपयोग और उपभोग मे आती है। इस प्रकार तुगभद्रा मसूर और आध्र प्रदेशो की ही नही अपितु यह याजना भी समूचे राष्ट्र के लिए उपयोगी योजना है।

नागार्जुन सागर योजना—यह दक्षिण भारत की सबसे बडी योजना है। आध्रप्रदेश के जिले गतूर के नन्दीकोडा गाँव के पास कृष्णा नदी पर यह बाँध बनाया गया है। इस बाँध स दो नहरें निकाली गयी है। इनमे पहली नहर का नाम 'जवाहर लाल नेहरु नहर' है। दूसरी नहर का नामकरण

श्री शास्त्री की स्मृति मे 'लालबहादुर शास्त्री नहर' किया गया है। ये नहरें राज्य की भूमि को सींच कर कृषि उत्पादन बढाने म योग दे रही है। उत्पादन की यह श्री वृद्धि देश के अन्य राज्यो के उपयोग म आती है। इस पर एक विद्युत गृह भी बनाया गया है, जो राज्य के उद्योगो का विकास शक्ति देकर करता है। *उद्योगो से प्राप्त उत्पादन सामग्री देश के अन्य राज्यो* के लिये भी उपयोगी है।

गगा कावेरी सगम योजना
(उत्तर से दक्षिण की नदियो का मिलन)

उत्तर भारत के मदानी भाग म बहने वाली नदियाँ अधिकाश हिमालय से निकलती हैं। इनको वर्षा ऋतु म हिमालय म होने वाली वर्षा से और गर्मी की ऋतु मे हिमालय की बर्फ पिघलने से अगाध जल बारहो महीने मिलता है। अत उत्तर की नदियाँ और उन से निकलने वाली नहरें भी प्राय नित्यवाही हैं। दक्षिण भारत की नदियो म से अधिकांश पश्चिमी घाट या विन्ध्यपवत श्रेणियो से निकलती हैं। इन पवत श्रेणियो पर बर्फ नही जमती, इसीलिये इनसे निकलने वाली नदियो म गर्मी की ऋतु मे जल की कमी हो जाती है। भारतीय प्राचीन वाङमय के उद्धरणो म देश की सात नदियाँ प्रात स्मरणीय मानी गयी हैं —गगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नमदा, सिन्धु और कावेरी। इनमे गगा, यमुना, (सरस्वती अब अन्तर्वाही) उत्तर भारत की है। *ये सब मिलकर अपनी अनेक सहायक नदियो* तथा अन्य छोटी नदियो के साथ देश के सम्पूर्ण भू-भाग पर बहती हैं। भारत मे वर्षा का वितरण समान नही है। कही बहुत अधिक वर्षा होती हैं, तो कही अधिक और कही अधिक से कम भी। कुछ भाग जैसे राजस्थान का पश्चिमी भाग वर्षा के अभाव मे सूखा रह जाता है। भारत कृषि प्रधान देश है, अत यहाँ की कृषि वर्षा पर निर्भर है। वर्षा के असमान वितरण ने देश के विचारकों को सदा से इस ओर चिन्तनशील बनाया। तमिल कवि श्री सुब्रह्मण्य भारती ने 'भारत वन्दना' करते हुये देश वासियो का आह्वान किया था। कि वे बगाल की जलधारा को दक्षिणी पठार की सूखी भूमि को हरा भरा बनाने के लिये मोड दें। गगा को कावेरी से मिलाकर देश म नवजीवन नयी आशाओ को नया जन्म देने के प्रयास अब चल पडे है। देश के जल

साधनो का वितरण उचित रूप से हो, यह विचार अब कोरी कल्पना ही नही रह जायगा अपितु कालान्तर मे भव्य योजना को साकार करेगा ऐसा विश्वास किया जाने लगा है।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जो केन्द्रीय सरकार मे सिंचाई व विद्युत उपमत्री भी रहे है, ने गगा कावेरी सगम की इस योजना पर अपना एक लेख प्रस्तुत किया है। उन्होने देश के जल साधनो को राष्ट्रीय भावात्मक एकता का प्रतीक माना है। जल ही जीवन है और जल का प्रभाव देश के जन मानस पर सर्वोपरि है। इसी लिये आज देश की समस्त महत्व पूर्ण आवश्यकताओ मे सर्वोच्च प्राथमिकता देश मे जल साधनो के विकास और सिंचाई सुविधायें बढाने की व्यवस्था को दी गयी है। इस व्यवस्था के अन्तगत अनेक राष्ट्रीय योजनायें हैं। इनमे से एक महत्वपूर्ण योजना 'गगा कावेरी सगम' की योजना है।

जसा कि पहले बताया गया है, हिमालय से निकलने वाली नदिया सदा बहार हैं और उनमे जल की मात्रा अगाध है। इनसे हिमालय के दक्षिण मे प्रवाहित गगा यमुना सिन्धु और ब्रह्मपुत्र के विशाल मदान अनवरत सीचे जाते है। इन नदियो की प्रभूत जलराशि प्रतिवर्ष बाढो का रूप लेकर समुद्र मे चली जाती है। इसी जल का उपयोग दक्षिण भारत की सूखी पठारी भूमि मे हरितक्रान्ति के लिये किया जाय तो यह कितनी बडी राष्ट्रीय एकता की बात होगी ?

उक्त योजना के अनुसार पटना और सोन नदी के मध्य गगा नदी से एक नहर निकाल कर उसे दक्षिण भारत की ओर आरोहित किया जावेगा। गगा से कावेरी के मध्य दक्षिण भारत की सभी प्रमुख नदियो पर बैराज बनाये जावेगे। गगा का जल लिफ्ट करके उसे दधा और मोरहर नदिया मे डाला जावेगा। दधा और मोरहर नदिया का क्षेत्र समुद्र तल से करीब हजार फीट ऊँचा है। अत उस क्षेत्र की नदियो पर बराज जल चढाया जावेगा। मरोहर नदी से आगे कोयल नदी बहती है। दोना नदियो के मध्य का भाग पन्द्रह सौ फीट ऊँचा है। अत इस ऊँचे भू भाग तक इस नहर के जल को लिफ्ट के द्वारा उठाकर आगे बढाया जावेगा। इस प्रकार आगे जहा ऊँचाई

कम है जल दो सौ फीट से अधिक लिफ्ट नही किया जावेगा । आगे ढलान पर जल स्वत आगे बढेगा । यहाँ से यह नहर 'रिहन्द नदी' के बेसिन मे होकर आगे बढेगी । रिहन्द की अन्य सहायक नदियो मे इस ढालन के लिये सभी पर बाँध बनाना आवश्यक होगा । रिहन्द से आगे महानदी का बेसिन है । दानो बेसिनो के बीच का भू भाग भी ऊँचा है । अत जल का ऊँचा उठाने हेतु प्राविधिक स्तर पर उपाय करने होगे । महानदी और नमदा नदी के बीच का भाग ऊँचा है । इस नहर को महानदी के बेसिन मे लाने के बाद लिफ्ट करके नमदा मे छोडना आसान होगा ।

नमदा के बेसिन को पार कराने के बाद वेन गगा नदी का बेसिन प्रारम्भ होता है । यहाँ से आगे वेन गगा, फिर गोदावरी इन सभी नदियो के बेसिनो के मध्य ऊँचे भू भाग है । इन ऊँचे भू भागो से नहर को पार कराकर आगे पडने वाले नदी बेसिनो म पहुँचाने के लिये जल को स्थान पर लिफ्ट करना होगा । कहा पर जल का आरोहरण कस किया जाय ? यह तो देश के अभियन्ताओ के विचार का विषय है । किन्तु वतमान मे बन हुए पोचपाड बाँध, जायकवाडी बाँध का उपयाग गोदावरी तक पहुँचाने म हो सकेगा । पोचपाड जलाशय समुद्र से 1091 फीट ऊँचा है । यहाँ आने पर इस नहर का कृष्णा नदी पर बने श्री शैलम जलाशय तक पहुँचाना भी सभव हो सकता है । श्री शलम जलाशय समुद्र तल से 85 फीट ऊँचा है । श्री शलम जलाशय से आगे गगा नहर को चित्रावती नदी की नहर तक मिलाने के लिये यत्रतत्र बैराज बनाने आवश्यक होंगे । चित्रावती का क्षेत्र समुद्र तल से लगभग 2300 फीट ऊँचा है, अत यहाँ नहर में जल को इतना लिफ्ट करके आगे बढाना होगा ।

चित्रावती के आगे मसूर और तमिलनाडु के सूखे क्षेत्र हैं । इसी क्षेत्र मे पलार पेनार आदि छोटी अनक नदियाँ बहती हैं । इस नहर का उपयोग इन सूखे क्षेत्रो को हरा भरा बनाने मे योग देगा । चित्रावती से आगे प्राकृतिक रूप से ढालू क्षेत्र है । इस पर आगे जाकर कावेरी नदी पर बना मेट्टूर जलाशय है । नहर को इस जलाशय मे ऊपर से गिराया जावगा । यह जलाशय समुद्र तल से 796 फीट ऊँचा है, अत नहर के जल के गिरन

से बनने वाला प्रपात 'जल विद्युत' उत्पादन करने मे उपयोगी सिद्ध होगा। कावेरी नदी से आगे भारत की अंतिम महत्वपूर्ण नदी 'ताम्रपर्णी' बहती है। कावेरी मे नहर गिराने के बाद उसे ताम्रपर्णी मे भी गिराया जाना सभव हो सकेगा। राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिये तो यह योजना एक जीता जागता उदाहरण होगी।

अभी अधिक कहा जाना तो सभव नही किन्तु देश की समृद्धि और कृषि की क्रान्ति के साथ साथ देश को सच्चे अर्थ मे यह योजना मातृभाव, सद्भाव और प्रेम सूत्र मे बांध सकेगी। इससे उत्तरी भारत की बाढ समस्या और दक्षिणी भारत व राजस्थान की सूखे की समस्या हल कराने मे योग मिलेगा। यह योजना दीर्घकालीन है। राष्ट्रीय पुरुषार्थ इसे पूरा कर सकेगा—यह विश्वास है।

(ब) भारत के प्रमुख उद्योग केन्द्र तथा राष्ट्रीय समृद्धि

आधुनिक युग मे किसी देश की सम्पन्नता एव उन्नति का मापदण्ड उस देश के प्रमुख उद्योग हैं। ये उद्योग केन्द्र राष्ट्रीय भावात्मक एकता के भी ज्वलन्त प्रमाण होते हैं। एक उद्योग केन्द्र चाहे वह देश के किसी भी भाग या प्रदेश मे स्थित हो सम्पूर्ण देश की समृद्धि उसका लक्ष्य होता है। उस केन्द्र के लिये देश को कुछ राज्य खनिज देते है, कुछ विद्युत शक्ति और कुछ राज्यों से मजदूर आकर उनमे काम करते है। स्व प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू ने तो इन्हे देश के 'तीर्थस्थल' माना है। नीचे हम उदाहरण रूप मे देश के कुछ प्रमुख उद्योग केन्द्रो का उल्लेख करते हुये यह देखेंगे कि आर्थिक की वृद्धि के साथ साथ 'राष्ट्रीय भावात्मक एकता' को बढाने मे ये उद्योग केन्द्र कहा तक सहायक हुये हैं?

लोहा इस्पात उद्योग—किसी भी देश के आर्थिक विकास का मानदण्ड वहाँ स्थित लोहा स्पात के उद्योग केन्द्र माने जाते हैं। ये आधारभूत उद्योग है क्योंकि उद्योग मे काम आने वाली प्राय सभी वस्तुयें लोहा स्पात से बनती हैं। यह उद्योग एक दूसरे पर आश्रित होता है। एक राज्य इस केन्द्र को कच्चा माल देता है तो दूसरा इसके लिये मैंगनीज की पूर्ति करता है। कहीं से कोयला और कही से चूने का पत्थर आता है। सम्पूर्ण देश मे व्याप्त रेलें और

सड़कें इनको मिलाने वाली नाड़ियों का काम करती है। इस प्रकार राष्ट्रीय भावात्मक एकता का अपरोक्ष रहस्य भी इनमें छिपा होता है। इस समय देश में छः बड़े कारखाने चल रहे हैं। इनमें तीन सरकार ने लगाये हैं। इन ■ के अलावा कुछ ढलाई केन्द्र भी हैं।

1 टाटा लोहा व इस्पात वर्क्स, जमशेदपुर—यह देश का सबसे बड़ा कारखाना है। इसकी स्थापना सन् 1907 में जमशेदजी टाटा ने बिहार के सिंहभूमि जिले में स्वर्ण रेखा नदी के पास साँकची नामक छोटे गाँव में की थी। यही छोटा गाँव अब बढ़ते बढ़ते देश का बड़ा एवं आधुनिक औद्योगिक केन्द्र बन गया है। इस कारखाने को कच्चा लोहा सिंहभूमि और गुरुमाहीसनी की खानें देती हैं। झरिया की खानों में बढ़िया कोयला मिलता है। कुछ जिला की खानें चूने के पत्थर की माँग पूरी करती है, तो कुछ मैंगनीज की पूर्ति। अन्य आवश्यक वस्तुयें समीपस्थ कुम्रा मंडी आदि से प्राप्त होती हैं। देश के दूर क्षेत्रों से बह कर आई हुई स्वर्ण रेखा और खड़काई नदियाँ इसे जल और बालू रेत का उपहार देती हैं। पूर्वी रेलवे इससे सहयोग का हाथ मिलाती हुई इसके उत्पादित माल को कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और देश के अन्य भागों तक पहुँचाने और वहाँ का माल यहाँ तक लाने में योग करती है। मध्यप्रदेश बिहार, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और देश के अन्य प्रदेशों के पाँच हजार से अधिक श्रमिक और कर्मचारीगण यहाँ काम करते हैं। इस प्रकार यह एक ऐसा उद्योग केन्द्र है जो सम्पूर्ण देश में सहयोग, सद्भाव और राष्ट्रीय एकता का दीप संजोकर देश के विकास रूपी प्रकाश का निरंतर प्रसारण कर रहा है।

2 इण्डिया आयरन एण्ड स्टील कॉरपोरेशन—पश्चिमी बंगाल की दो प्रमुख कम्पनियों को एक दूसरे में विलय कर के इस कारपोरेशन का निर्माण हुआ है। इसके दो कारखाने हैं। इनमें से प्रथम कारखाना बर्नपुर में है जो पश्चिमी बंगाल में ही आसनसोल के समीप स्थित है। द्वितीय कारखाना कुल्टी में है। कुल्टी का कारखाना देश के लिये पिग आयरन बनाता है तो बर्नपुर कारखाना इस्पात तैयार करता है। दोनों उद्योग केन्द्र एक दूसरे से

लगभग ग्यारह कि० मी० की दूरी पर स्थित है। इन कारखानों में सिंहभूमि और बुदाबुरू की पहाड़ियाँ कच्चा लोहा देती हैं। रानीगज और झरिया की खानों से कोयला प्राप्त होता है। दामोदर और उसकी सहायक बाराकर नदियां से जल की आपूर्ति होती है। मैंगनीज मध्यप्रदेश की खानो से मिलता है। देश के विभिन्न राज्यो से श्रमिक यहाँ आकर काम करते हैं। देश की पूर्वी रेलवे इसको देश के विभिन्न भागो से मिलाती है। यहाँ का तयार लोहा और इस्पात देश के विभिन्न भागो में स्थित उद्योगो म काम आता है। इस प्रकार यह कारखाना देश म भावात्मक एकता का प्रतीक और आर्थिक प्रगति का साकार कल्पद्रुम है।

3 मैसूर का लोहा और इस्पात का कारखाना—यह कारखाना मैसूर राज्य मे भद्रावती स्थान पर स्थित है। भद्रा नाम की नदी इसी के निकट बहती है। इसके चारो ओर विशाल घना जगल इसको ईधन प्रदान करता है। यहा आस पास कोयला नही मिलने से कायले का काम जगल की लकडी देती है। कच्चा लोहा बाबाबूदन की पहाडी खानो से आता है। चूना माण्डी गुडा की खानें देती हैं। मैसेर म विकसित विद्युतगृह की बिजली भी इस्पात बनाने म सहयोगी बन रही है। हम ध्यान होना चाहिय कि एच० एम० टी० घड़ियाँ जिन्हे देश का नवयुवक कलाई म बाध गव करता है वह इसी कार-खान म तयार हुए लाहा व इस्पात से निर्मित हैं। यही नही आज देश के कोन कोन म स्थित बडे छोटे कारखानो म निर्मित उपहारो के दशन हम यत्र-तत्र करते हैं। इस प्रकार यह कारखाना राष्ट्रीय एकता का एक जीता जागता उदाहरण है। यह शान्ति के समय जहाँ देश के विकास म योग देता है वही युद्ध के समय देश को आयुधो म सुसज्जित कर देश का मनोबल ऊँचा उठाने म योगदान करता है।

सरकारी क्षेत्र के कारखाने

भारत सरकार न सरकारी क्षेत्र म भी तीन बडे लोहा-इस्पात कारखान विदेशी कम्पनियो की सहायता स खोले हैं —

1 राउरकेला का इस्पात कारखाना —यह कारखाना उडीसा राज्य म जमनी की एक कम्पनी के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का प्रतिफल है। उडीसा

राज्य की प्रणाली नदी के तट पर स्थित रूरकेला स्थान पर यह बनाया गया है। यह बोनाई की खानों से उत्तम लोहा प्राप्त करता है। कोयला भरिया के कोयला क्षेत्र से मगाया जाता है। महानदी और वैतरनी नदियां पश्चिमी घाट की लम्बी दूरियां पार कर इस कारखाने का जल देकर उपकृत करती हैं। जलयानों, रेल के डिब्बा, कारखानों, भवनों और देश के अनेक निर्माण स्थलों में काम आने वाली लोहे इस्पात की अलग अलग मोटाई की प्लेटें चद्दरें, पत्तियां और टिन की प्लेटें यही बनती हैं। इस प्रकार यह कारखाना अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

2 भिलाई का लोहा और इस्पात कारखाना—यह कारखाना मध्य प्रदेश राज्य के भिलाई नामक स्थान पर स्थापित किया गया है। यह उद्योग केन्द्र रूसी सरकार के सहयोग से बनाया गया है। इसका लोहे की कच्ची धातु दक्षिण में स्थित राजहरा की पहाड़ियों से प्राप्त होती है। कारखाने का जल तुदुला नहर से मिलता है जो इसी नाम की नदी पर बने बांध से निकाली गयी है। मैंगनीज, कोयला आदि वस्तुयें राज्य के भिन्न भिन्न भागों से मगाकर काम में लाई जाती है। यहां का लोहा इस्पात देश के विभिन्न छोटे-बड़े उद्योगों में उपयोग में आता है। देश के आर्थिक विकास में इस कारखाने का योग है। देश के केन्द्र भाग मध्यप्रदेश राज्य में स्थित यह ऐसा कारखाना है जो देश के विभिन्न राज्यों में संचालित कारखानों के लिये लोहा और इस्पात देता है। यह कारखाना जहां भारत और रूस की मैत्री सम्बन्धों को प्रगाढ़ करता है, वहीं देश में राष्ट्रीय भावात्मक एकता की स्थापना में भी योग प्रदान करता है।

3 दुर्गापुर का लोहा और इस्पात का कारखाना—यह कारखाना पश्चिमी बंगाल के दुर्गापुर नामक स्थान पर बनाया गया है। यह कारखाना यू० के० की एक फर्म के सहयोग से स्थापित हुआ है। रानीगंज, झरिया और सिंघभूमि क्षेत्र की खानें इस लोहे की परिपूर्ति करती है। यह रेल मार्गों का प्रमुख केन्द्र है। देश के विभिन्न भागों से इसका सम्बन्ध है। आवश्यकता के अनुसार यह कारखाना अपने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में स्थित राज्य में संचालित कारखानों के लोहे इस्पात की मागें पूरी करता है। अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण देश के विभिन्न भागों के प्रशिक्षित श्रमिक इसको

अपने श्रम का लाभ देते हैं। इस कारखाने की प्रगति पर आज देश के हर नागरिक को गर्व है।

4 बोकारो स्टील लिमिटेड—यह कारखाना भी रूसी सहायता से बोकारो में स्थापित किया गया है। यह कारखाना देश में सहकारी क्षेत्र का एक अनुपम प्रयोग है। इसके संचालन और व्यवस्था में देश में संचालित सहकारी आन्दोलन की भावना प्रधान है। सहकारी क्षेत्र में स्थापित होने से 'बोकारो कारखाना' राष्ट्रीय भावात्मक एकता और पारस्परिक सहयोग का एक उदाहरण बन गया है।

इंजिनियरिंग उद्योग

इंजिनियरिंग उद्योग एक आधारभूत उद्योग है। इसी उद्योग पर किसी भी देश की प्रगति, विकास, समृद्धि और सुरक्षा निर्भर करती है। इस उद्योग में छोटे छोटे यन्त्रों से लेकर बड़ी बड़ी मशीनों का निर्माण सम्मिलित होता है। हमारे घरों में नित्यप्रति काम में आने वाली सिलाई मशीनें, बिजली का सारा सामान, साइकिलें, पंखे, रेडियो से लेकर युद्ध सामग्री, रेल के इंजिन, रेल के डिब्बे, जलयान आदि का सब निर्माण इंजिनियरिंग उद्योग ही है। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से इन उद्योगों का बड़ा महत्व होता है। ये उद्योग चाहे देश के किसी भी भाग में स्थित हों, इनकी प्रगति में देश की प्रगति है और देश के जन जन का हित परोक्ष और अपरोक्ष रूप से जुड़ा हुआ होता है। देश के इन प्रमुख उद्योगों में से कुछ के बारे में यहाँ संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है—

1 जलयान निर्माण उद्योग—इस समय देश के लिये आधुनिक जलयानों के निर्माण का प्रमुख कारखाना विशाखापटनम में स्थित है। देश के लिये अब तक पचास से अधिक उत्तम जलयान इस कारखाने में तैयार किये हैं। इस कारखाने के विकास में जहाँ देश के नागरिकों से कर के रूप में प्राप्त राष्ट्रीय आय लगी है वहीं इसका संचालन भी देश के विभिन्न राज्यों के प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष सहयोग का फल है। जहाजों को बनाने के लिये लकड़ी इस कारखाने को मध्यप्रदेश के छोटा नागपुर क्षेत्र से तथा उड़ीसा से मिलती है। कोयले की पूर्ति पश्चिमी बंगाल और बिहार में स्थित कोयले की खानों से

होती है। हरखेना और जमशेदपुर(टाटा नगर) के सारा इस्पात के कारखाने इसके लिये आवश्यक लोहा इस्पात देते हैं। दक्षिण भारत के तमिलनाडु, केरल, मैसूर और आन्ध्र प्रदेश से अनेकों कुशल और अकुशल श्रमिक आकर यहाँ काम करते हैं। देश के प्रत्येक राज्य के इंजिनियर एवं प्रावधिक कार्यशील व्यक्ति यहाँ मिल जावेंगे। इस प्रकार भारत के पूर्वी तट पर स्थित यह उद्योग केन्द्र सदा लगने वाला एक राष्ट्रीय मेला बन गया है। ऐसा कौन भारतीय होगा जो इसकी प्रगति देख कर गर्व से फूला न समाये। कलकत्ता बन्दरगाह में निर्मित जलयान जन जन के हृदय में एकता की भावना भरते हुए स्वदेशी तटों का वैभव बढ़ाते हैं।

2 वायुयान निर्माण उद्योग—इस उद्योग का महत्व आज के युग में सुरक्षा और शीघ्र परिवहन की दृष्टि से भला कौन नहीं जानता? इस उद्योग के केन्द्र बंगलौर, नासिक, कोरापुत और हैदराबाद में हैं। इनमें बंगलौर का यह कारखाना सर्वोपरि है। यह भारत का प्रथम कारखाना है जो हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट लिमि०, द्वारा सन् 1940 में यहाँ स्थापित किया गया था। भारत सरकार ने इसका संचालन सन् 1952 में अपने हाथ में लिया है। भारत चीन और भारत पाक युद्धों में देश की सुरक्षा में इन उद्योग केन्द्रों ने अपना महत्वपूर्ण योग दिया। बंगलौर कारखाने ने नेट, किरण, पुष्पक आदि विमान अनेकों हेलीकोप्टर और एवरो 748 मिग 21 जैसे वायुयान तैयार कर देश की वायु शक्ति को दृढ़ किया है। आज हमारे राष्ट्र की वायु शक्ति संसार के किसी भी देश की स्पर्धा में अपना महत्वपूर्ण अस्तित्व बना चुकी है। भारत के निरभ्र आकाश को राष्ट्रीय गगन सीमा में भ्रमण करते हुये ये वायुयान अपनी गगनभेदी ध्वनि के साथ राष्ट्रीय एकता उद्घोष करते जान पड़ते हैं। हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम चाहे देश के किसी भी राज्य के निवासी हों, हम बंगलौर वायुयान उद्योग जैसे राष्ट्रीय एकता स्थलों की प्रगति में तन मन और धन से योग करना चाहिये।

3 रेल के इंजन तथा डिब्बे बनाने का उद्योग—रेल की राष्ट्रीय महत्ता किससे छिपी है? रेलों के संचालन के लिये हमें प्रतिवर्ष लगभग 10 हजार इंजनों की आवश्यकता होती है। इस समय रेल के इंजन बनाने का

सबसे बड़ा कारखाना पश्चिमी बंगाल में चितरंजन नाम स्थान पर है। यह कारखाना सन् 1950 में खोला गया था। यह कारखाना भाप और विद्युत से चलने वाले लगभग 260 इंजन तैयार करता है। टाटा नगर और वाराणसी में भी रेलवे इंजन बनाये जाते है किन्तु चितरंजन का कारखाना राष्ट्रीय महत्त्व का है। आपने नगर या गाँव के समीप रेल की पटरी पर दौड़ते भारतीय रेल इंजन इसी कारखाने में बनाये गये हैं। देश को उत्तरी दक्षिणी और पूर्वी पश्चिमी छोरों को जोड़ने वाली भारतीय रेलों के संचालन मे इस कारखाने का कितना बड़ा योग है ? रेलगाड़ियों को गति मिलती है उन इंजनों से जो चितरंजन कारखाने में बने हैं। राष्ट्रीय एकता की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप मे चितरंजन कारखाना हमारे राष्ट्रीय गौरव का सदा सदा अक्षुण्य बनाता रहे, यही प्रत्येक भारतीय की मनोकामना होनी चाहिये।

अन्य कारखाने

इसी प्रकार पेराम्बूर का रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, जमशेदपुर के मोटर निर्माण उद्योग, देश के साइकिल निर्माण करने वाले उद्योग तथा बंगलोर, पिंजोर, हैदराबाद आदि के मशीन टूल्स कारखाने, भोपाल, हरिद्वार, रामनाथ पुरम के विद्युत यन्त्रों के निर्माण करने वाले कारखाने, कोटा तथा पालघाट के इंस्ट्रूमेंटेशन लि० के कारखाने राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं।

